महामुनि आदिकवि श्री वाल्मीकिप्रणीत

श्रीरामायण महाकाव्य

[तृतीय भाग]

(३)

अयोध्याकाण्ड

(उत्तरार्ध)

(हिंदी अनुवाद तथा निरीक्षण)

संपादक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मंडळ, औंध (जि० सातारा)

प्रथम संस्करण

विक्रम-संवत् २००२, शालीवाहन शक १८६७, इ. स. १९४६

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, वाराणसी।

अयोध्याकाण्ड

(उत्तरार्ध)

युद्धजन्य परिस्थितिके कारण यह विभाग समयपर प्रकाशित न हो सका। कागज भी श्वेतरंगवाला न मिल सका। इसकी पाठकक्षमा करें। अगले भाग श्वेत कागजपर पूर्वके समान समयपर प्रकाशित होंगे।

औंध
१ फाल्गुन विक्रम-संवत २००२



—प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
पो० बा० नं० ८, वाराणसी।

मुद्रक तथा प्रकाशक— व० श्री० सातवळेकर, B. A.,
भारतमुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

श्री वाल्मीकि रामायणान्तर्गत

अयोध्याकांडके उत्तरार्धकी विषयानुक्रमणिका

*

रामायण चरित्रमाला

वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड उत्तरार्धका

——०——

महामुनि-वाल्मीकि-प्रणीतं

श्री रा मा य ण म् ।

अयोध्याकाण्डम् ।

(उत्तरार्धः)

षट्पञ्चाशः सर्गः ।

अथ रात्र्यां व्यतीतायामवसुप्तमनन्तरम् ।
प्रबोधयामास शनैर्लक्ष्मणं रघुपुङ्गवः ॥ १
सौमित्रे शृणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम् ।
संप्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परंतप ॥ २
प्रसुप्तस्तु ततो भ्रात्रा समये प्रतिबोधितः ।
जहौ निद्रां च तन्द्रां च प्रसक्तं च पथिश्रमम् ॥ ३
तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् ।
पन्थानमृषिभिर्जुष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ ४
ततः संप्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह ।
सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५

रात बीतने पर लक्ष्मण को रघुश्रेष्ठ रामने शनैः शनैः जगाया *। 'लक्ष्मण! वन में पक्षी मधुर शब्द बोल रहे हैं, अब चलने का समय आ गया, उठो, यहां से चलो।' राम द्वारा जगाये जाने पर लक्ष्मण का निद्राजनित आलस्य तथा मार्ग का थकान जाता रहा। ततः सब उठ यमुनाजल से हाथ मुख धो मुनिनिषेवित चित्रकूट के मार्ग में चले। लक्ष्मण के संग जाते राम सीता से कहने लगे (१-५)।

---

* इस से इतना स्पष्ट हुआ कि लक्ष्मण के १४ वर्षों तक न सोजाने की कल्पना निराधार है।

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पिताग्नगान्।
स्वैः पुष्पैः किंशुकान्पश्य मालिनः शिशिरात्यये ६
पश्य भल्लातकान्बिल्वान्नरैरनुपसेवितान्।
फलपुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ७
पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण।
मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ८
एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे ९
मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम्।
चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् १०
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते।
पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ११
ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया।
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम् १२
तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम्।

'हे वैदेहि ! देखो तो वसन्त ऋतु में चारों ओर कैसे पलास के वृक्ष फूल रहे हैं, मानों अपने अपने फूलों की माला धारण कर रहे हैं। फिर और वृक्ष व बेल के वृक्ष तो देखो, जिन के नीचे अति दुर्गम होने से कोई जन नहीं है और जो फल पुष्पों के भार से झुके पड़ते हैं। हे लक्ष्मण! देखो तो प्रत्येक वृक्ष में शहद के छत्ते लटक रहे हैं, जिन में सहस्रों मधुमक्खियां चिपट रही हैं। कोकिल कैसी बोल रही है, जिस के पीछे पीछे मोर भी बोलता है। इसी रमणीय वन में जहां कि नाना प्रकार के पुष्प फूले हैं, हाथियों के झुण्ड के झुण्ड घूम रहे हैं, नाना प्रकार के पुष्पों से युक्त वृक्षों से भूषित चित्रकूट दिखाई देता है। हम चित्रकूट के नीचे नीचे जो अति रमणीय वृक्षों का वन है, जिस की भूमि सर्वत्र समतल है, यहां रह कुछ दिन निवास करेंगे।' (६–११)

ऐसा कहते कहते पैदल चलते अति मनोहर चित्रकूट पर जा पहुंचे, जो

बहुमूलफलं रम्यं संपन्नसरसोदकम् १३
मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः ।
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे १४
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिञ्शिलोच्चये ।
अयं वासो भवेत्तात वयमत्र वसेमहि १५
इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् १६
तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ।
आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तं निवद्य च १७
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः १८

नाना प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ सब प्रकार के फल मूलादिकों से पूर्ण था, जहां ठौर ठौर मीठा जल विद्यमान था। ऐसे पर्वतको देख राम लक्ष्मणसे कहने लगे, 'हे सौम्य ! यह पर्वत नाना वृक्षों से शोभित बहुत फल मूलादि से युक्त है, यहां हम लोगों का निर्वाह अच्छी तरह से होगा । तात ! इस पर्वत पर बहुत से मुनि लोग भी रहते हैं, इस से यह वास करने के योग्य है, हम भी अब यहीं रहेंगे ।' (१२-१५)

यह कहते कहते लक्ष्मण तथा जानकीसहित रामने उस आश्रम पर पहुंच वाल्मीकि ! को प्रणाम किया । इन तीनों की धर्मज्ञ वाल्मीकि हर्षित

! कुछ टीकालेखकों की राय में, रामायणके निर्माता प्राचेतस् वाल्मीकि मुनि दूसरे ही थे और ये वाल्मीकि अन्य मुनि हैं। यह धारणा किन्हीं अंशों में ठीक जान पडती है । अकेला तिलक नामक टीकाकार बिना किसी प्रमाण के यों कहता है, अतः यह कथन त्याज्य है। गोविन्दराजके कथनानुसार, रामचंद्रजीसे मुलाकात होनेपर जब भरत वापस चले गये, तब अन्य ऋषियों के समान ही यह वाल्मीकि भी रामचंद्रजीके चित्रकूट से आगे बढनेपर तमसा नदी के तटपर निवास करने गया, यही मत प्रतीत होता है। अतः ऐसी कल्पनाके लिए कोई आधार नहीं कि दो वाल्मीकि थे ।

लक्ष्मणानय दारूणि दृढाणि च वराणि च ।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः १९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् ।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः २०
तां निष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम् ।
शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदं वचनमब्रवीत् २१
ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् २२
कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः ।
मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण २३
कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मर ।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय लक्ष्मणः परवीरहा २४
चकार च यथोक्तं हि तं रामः पुनरब्रवीत् ।
ऐणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम् २५

हो पूजा करने लगे, तथा बिठाकर स्वागत किया । तब ऋषि से अपने वन आनेका कारण बता राम लक्ष्मण से बोले– 'लक्ष्मण! दृढ व श्रेष्ठ काठ लाकर रहनेके लिये एक स्थान बनावो, यहां रहने को हमारा चित्त चाहता है।' यह सुन लक्ष्मण विविध भांति के वृक्षों से छोटी छोटी डालें काट लाये और अच्छी पर्णशाला बना दी (१९–२०)।

उस सुन्दर कुटिया को देखते ही श्रीरामचंद्रजी हमेशा अपनी सेवा बड़ी लगन एवं तत्परता से करने में निरत लक्ष्मण से कहने लगे, ' हे लक्ष्मण ! हम मृगमांस लाकर इस पर्णशालाकी वास्तुशान्ति करें, यही ठीक है; क्योंकि जो लोग चिरकाल तक जीवित रहने की इच्छा करते हों, उन्हे वास्तुशांति जरुर पूरी करनी चाहिए । इसीलिए हे सुनेत्र लक्ष्मण ! तू शीघ्रही एक हिरन मार ले आ; दूसरे यह बात शास्त्र में भी कही है, इसीलिए तू धर्म-शास्त्र का स्मरण कर । ' (२१–२४)

भाईका यों भाषण सुनकर शत्रुदल के वीरों के वध करनेवाले लक्ष्मणने सब कुछ वैसे ही कर डाला। अब रामचंद्रजी उनसे बोले– हे लक्ष्मण !

त्वरे सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम् ।
स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मध्यं प्रतापवान् ।
अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि २६
तत्तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम् २७
लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत् ।
अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगो मया २८
देवता देवसङ्काश यजस्व कुशलो ह्यसि ।
रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः २९
संग्रहेणाकरोत्सर्वान्मन्त्रान्सत्रावसानिकान् ।
इष्ट्वा देवगणान्सर्वान्विवेशावसथं शुचिः ३०
बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः ।

तनिक शीघ्रता तो कर और इस मृगमांस को जल्द पका ले, अभी वास्तुशान्ति पूरी कर ले तो बहुत ठीक; यह मुहूर्त बडा सौम्य और यह दिन भी ध्रुव नामवाला है। ' (२४-२६)

इसके पश्चात् प्रतापी, सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणने यज्ञकर्म के लिए योग्य ऐसे काले हिरनका वध करके धधकते हुए अग्निमें उसे फेक डाला और जब देखा कि वह मृग पक्व हो चुका, तथा उस में से बहुत गर्म होने के कारण खून का टपकना भी बंद हो गया, तब श्रेष्ठ पुरुष रामचंद्रजी से लक्ष्मण कहने लगा, ' हे देवतारूपी राम ! अविकल अवयवों से युक्त इस समूचे कृष्णसारको मैं भून चुका हूँ; अब आप देवताओं के नाम से याग कीजिए, क्योंकि ऐसे यागकर्म में आप ही कुशल हैं। ' (२६-२९)

इतना हो चुकनेपर, जपजाप्यादि कार्योंमें गुणयुक्त तथा जितेन्द्रिय रामचंद्रजीने स्नान किया और याग की पूर्णता के लिये जितने आवश्यक उतनेही मंत्रों से वहींपर संक्षेप में वास्तुशान्ति पूर्ण कर दी। समूचे देवगणों को लक्ष्य में रख यजन हो चुकनेपर शुचिर्भूत हो श्रीरामचंद्रजीने उस घरमें प्रवेश किया। उस समय उस अति तेजस्वी रामचंद्रजीके मन में अत्यन्त आनन्द हुआ। पश्चात् वास्तुदोष को हटाने के निमित्त मंगलकारक

वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ३१
वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन् ।
जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि ३२
पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ।
वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च ।
आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः ३३
तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञां यथाप्रदेशं सुकृतां निवाताम् ।
वासाय सर्वे विविशुः समेताः सभां यथा देवगणाः सुधर्माम् । ३४
सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ३५ [२२६८]
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः॥५६॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ।

कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह ।
रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः १
भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम् ।
आ गिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम् २

सूक्त आदि का पठन करने के लिए ब्राह्मणों से कहकर रामचंद्रजीने नदी में यथोचित ढंग से स्नान किया और ठीक तरह जप करके विश्वेदेव, रुद्र एवं विष्णु देवों के हेतु बलि दे चुकनेपर पापशमन हो जाए, इसलिये दूसरा भी एक बड़ा अच्छा बलिदान उसने कर डाला । तथा आश्रम के अनुरूप देवालय, आदिको भी उसने बलि दे दिये । (२५-३३)

उस सुन्दर मनोहर पर्णकुटी में सबने इस प्रकार प्रवेश किया, जैसे देवता सुधर्म सभा में प्रवेश करते हैं । अतिरमणीय चित्रकूट पर जिस के तट पर माल्यवती नदी बहती है और जहां मृग, पक्षी हर्षित कलरव करते हैं, राम सुखपूर्वक निवास करने लगे (३४-३५) ।

यहाँ छप्पनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

सुमन्त्र को समझा अति दुःखित हो राम के गंगा के दाक्षिण तट पर आने पर सुमन्त्र को साथ ले गुह घरको चला गया । जब तक राम प्रयाग

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान् ।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः   ३
स वनानि सुगन्धीनि सरितश्च सरांसि च ।
पश्यन्यत्तो ययौ शीघ्रं ग्रामाणि नगराणि च   ४
ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः ।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह   ५
स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः ।
सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः   ६
कच्चिन्न सगजा साश्वा सजना सजनाधिपा ।
रामसन्तापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी   ७
इति चिन्तापरः सूतो वाजिभिः शीघ्रयायिभिः ।
नगरद्वारमासाद्य त्वरितः प्रविवेश ह   ८
सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ।
क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः   ९
तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम् ।
अनुज्ञातो निवृत्तोऽस्मि धार्मिकेण महात्मना   १०

में भरद्वाज के आश्रम पर हो चित्रकूट तक पहुंचे । तब तक सुमन्त्र निषाद के यहां रहा । तत्पश्चात् गुह से आज्ञा ले सुमन्त्र रथ में घोड़े जोत अति उदासीन हो अयोध्या को चला । मार्ग में नाना सुगन्धमय वन, नदी, तड़ाग, ग्राम देखता, जल्दी से सुमन्त्र चला तथा अगले दिन सन्ध्या के समय उस आनन्दरहित अयोध्या में जा पहुंचा (१–५) ।

अयोध्या को निःशब्द देख शोकार्त हो सुमन्त्र चिन्ता करने लगा कि हाथी, अश्व, जन, राजा सहित अयोध्या राम की जुदाईरूपी शोकाग्नि से दग्ध तो नहीं हो गई ? इस तरह चिन्ता कर शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए रथ-सहित सुमन्त्रने नगर के बड़े फाटक की ओर से प्रवेश किया । सुमन्त्र को चले आते देख सैकड़ों मनुष्य 'राम कहां हैं ?' यह पूछनेके लिये उसके चारों ओर से दौड़े । उन सब को सुमन्त्रने यहा कहा कि मैं तो गङ्गातट पर से

ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः।
अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः ११
शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम्।
हताः स्म खलु येनेह पश्याम इति राघवम् १२
दानयज्ञविवाहेषु समाजेषु महत्सु च।
न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा १३
किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम्।
इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम् १४
वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम्।
राममेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनाम् १५
स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम् १६
सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च।
कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः १७

राम की आज्ञा से चला आया हूं।' (६–१०)

वे उस पार चले गये, यह सुन सब के सब रो रो कहने लगे कि- 'अहो! हम को धिक्कार है!' यह कह राम राम कह चिल्ला चिल्ला रोने लगे। इन मर्दों को रोदन करते सुन, अन्य भी रोने लगे और कहने लगे– 'जिस से राम को नहीं देखते, इस से निःसन्देह मर जायंगे। क्या अब हम यज्ञ, विवाह तथा बडे बडे समाजों के बीच में बैठे हुए राम को कभी न देखेंगे? जिन रामने इस नगर का पिता के समान पालन किया था, उनके विना इस पुरी में यहां के निवासी जनों का अब कौन प्रयोजन पालेगा?' तदनु झरोखों से झांकती हुई स्त्रियों के रोदनशब्द जो 'राम' कह कह रोदन करती थीं, सुमन्त्र सुनता चला जाता था। (११–१५)

वस्त्र से मुह ढके हुए राज-मार्ग से चल कर जिस मन्दिर में दशरथ थे, वहां सुमन्त्र पहुंचा। फाटक पर पहुचते ही रथ से उतर राज महल में प्रवेश कर गया और सात फाटक लांघ गया। सुमन्त्र को आया सुन कोठों,

हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्याथ समागतम्।
हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्शिताः १८
आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः।
अन्योन्यमभिवीक्षन्ते व्यक्तमार्ततरा स्त्रियः १९
ततो दशरथस्त्रीणां प्रासादेभ्यस्ततस्ततः।
रामशोकाभितप्तानां मन्दं शुश्राव जल्पितम् २०
सह रामेण निर्यातो विना राममिहागतः।
सूतः किं नाम कौसल्यां क्रोशन्तीं प्रतिवक्ष्यति २१
यथा च मन्ये दुर्जीवमेवं न सुकरं ध्रुवम्।
आच्छिद्य पुत्रे निर्याते कौसल्या यत्र जीवति २२
सत्यरूपं तु तद्वाक्यं राजस्त्रीणां निशामयन्।
प्रदीप्त इव शोकेन विवेश सहसा गृहम् २३
स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम्।
पुत्रशोकपरिद्यूनमपश्यत्पाण्डुरे गृहे २४
अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् २५

विमानों, तथा धवरहरों पर चढ़ीं राम के वियोग से कर्षित स्त्रियां राम को न देख हाहाकार करने लगीं। सब की सब नेत्रों से आंसुओं की धारा छोड़ती आपस में देखती थीं। दशरथ की स्त्रियों का रोदन धवरहरों पर से मन्द मन्द होता हुआ सुन पड़ता था। (१६-२०)

वे सब यह कहती थीं कि 'राम के साथ सुमन्त्र गये थे, पर अब बिना राम के यहां आये—भला रोदन करती हुई कौसल्या से क्या कहेंगे? जितना जीवन दुःखजनक है, उतना मरण नहीं, देखो! राम के वन जाने पर भी कौशल्या जीती रही।' इस प्रकार रानियों के वचन सुनते सुमन्त्र शोक से अधिक जलते हुए राममन्दिर में प्रविष्ट हुए। आठवें फाटक के भीतरवाले चन्द्रसमान मन्दिर में राजा दशरथ को देखा, जो पुत्रशोक से व्याकुल हो शय्या पर पड़े थे। राजा के सम्मुख जा, प्रणाम कर सुमन्त्रने राम के वचन यथावत् कहे। (२१-२५)

स तूर्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः ।
मूर्च्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकाभिपीडितः २६
ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छिते पृथिवीपतौ ।
उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ २७
सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम् ।
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् २८
इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः ।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे २९
अद्येममनयं कृत्वा व्यपत्रपसि राघव ।
उत्तिष्ठ सुकृतं तेऽस्तु शोकेन स्यात्सहायता ३०
देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम् ।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम् ३१
सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा ।
धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ३२
विलपन्तीं तथा दृष्ट्वा कौसल्यां पतितां भुवि ।
पतिं चावेक्ष्य ताः सर्वाः समन्ताद्रुरुदुः स्त्रियः ३३

महाराज दशरथ सुन चुप हो रहे, फिर घबडा कर मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पडे । तब भीतर के रहनेवाली रानी दास दासी आदि ऊपर को हाथ उठाकर रोने लगीं । तब सुमित्रा और कौसल्याने राजा का हाथ पकड उठाया और कहा– 'हे महाराज ! अति दुष्कर कर्म करनेवाले राम के यह दूत हैं, इन से राम को वनवास प्राप्त करानेपर आप क्यों नहीं बोलते ? वनवास देने के शोक से लज्जित न हो उठिये ! आप की सत्यप्रतिज्ञता सिद्ध हो गई, अब यदि मन्त्री से न बोलोगे, तो शोक के समय सहायता कौन करेगा ? (२६–३०)

'जिस कैकेयी के भय से राम के समाचार नहीं पूछते, वह यहांपर इस समय नहीं है, आप निःशङ्क हो पूछिये ।' इतना कह शोक में डूब कौशल्या मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पडी । विलाप करके गिरती हुई कौसल्या को

ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितं समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः पुरं तदासीत्पुनरेव सङ्कुलम् ३४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ [२३०२]

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः ।
तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् १
तदा सूतो महाराजं कृताञ्जलिरुपस्थितः ।
राममेवानुशोचन्तं दुःखशोकसमन्वितम् २
वृद्धं परमसन्तप्तं नवग्रहमिव द्विपम् ।
विनिःश्वसन्तं ध्यायन्तमस्वस्थमिव कुञ्जरम् ३
राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम् ।
अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत् ४
क नु वत्स्यति धर्मात्मा वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
सोऽत्यन्तसुखितः सूत किमशिष्यति राघवः ५

देख तथा उसी दशा में राजा को देख सब स्त्रियां रोने लगीं। तब उस अन्तःपुर से उद्भूत वह रोदनध्वनि सुनकर तरुण तथा वृद्ध पुरुष और सब स्त्रियाँ रोने लगीं और फिर वह अयोध्यानगरी शोकाकुल हुई। (३१-३४)

यहां सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

जब राजा की मूर्च्छा जागी और चित्त स्वस्थ हुआ, तो रामका हाल पूछने को सूत को बुलाया। सुमन्त्र हाथ जोड़ राजा के निकट खड़े हो गये, राजा राम ही का शोक कर रहे थे। वृद्ध, शोक से सन्तापित राजा की दशा उस समय उस हाथी के समान थी, जो तुरन्त वन से पकड़ा आवे और अपने साथियों में ध्यान लगाने के कारण व्याकुल हो रहा हो। राजाने देखा तो सुमन्त्र के सब अंगों में धूल लगी थी, आंसुओं की धारा बह रही थी, यह देख परम दुःखित हो राजाने पूछा। (१-४)

'हे सूत! अब रघुनन्दन वृक्ष के नीचे बसते होंगे, क्योंकर सुख भोगने

दु खस्यानुचितो दुःखं सुमन्त्र शयनोचितः।
भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथवत् ६
यं यान्तमनुयान्ति स्म पदातिरथकुञ्जराः।
स वत्स्यति कथं रामो विजनं वनमाश्रितः ७
व्यालैर्मृगैराचरितं कृष्णसर्पनिषेवितम्।
कथं कुमारौ वैदेह्या सार्धं वनमुपाश्रितौ ८
सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया।
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ ९
सिद्धार्थः खलु सूत त्वं येन दृष्टौ ममात्मजौ।
वनान्तं प्रविशन्तौ तावश्विनाविव मन्दरम् १०
किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः।
सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली ११
आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय।
जीविष्याम्यहमेतेन ययातिरिव साधुषु १२
इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया।

होंगे ? और क्या भोजन करेंगे ? सुमन्त्र ! वे तो दुःख भोगने के योग्य न थे, सुखशय्या पर ही शयन करने के योग्य थे, तब महाराजाधिराज के पुत्र हो अनाथों के समान भूमि में कैसे सोते होंगे ? जब कभी घर से बाहर निकलते थे, तो उनके पीछे पीछे पैदल, रथ, घोडे, हाथी आदि चलते थे, वे राम निर्जन वन में कैसे बसेंगे ? जिस वन में बडे बडे अजगरादि नाग और नाना वनजीव रहते हैं, उस में सुकुमार राम, लक्ष्मण, वैदेही कैसे बसते होंगे ? (५–८)

सुमन्त्र ! तपस्विनी सीता के साथ दोनों राजकुमार रथसे उतर कर वन में पैदल कैसे गये ? हे सूत ! तुम्हारे सब काम सिद्ध हो गये जोकि वन में प्रविष्ट हुए मेरे पुत्रों को तुमने देखा। हे सुमन्त्र ! राम, लक्ष्मण तथा सीताने क्या कहा ? हे सूत ! राम के आसन शयन और भोजनादि का वृत्तान्त कहो जिसको सुनकर मैं ययाति की तरह सुखी हो जीऊं।' (९–१२)

उवाच वाचा राजानं स बाष्पपरिबद्धया १३
अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् ।
अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च १४
सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः ।
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः १५
सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया ।
आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादनम् १६
माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् ।
अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः १७
धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपरा भव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय १८
अभिमानं च मानं च त्यक्त्वा वर्तस्व मातृषु ।
अनुराजानमार्यां च कैकेयीमम्ब कारय १९
कुमारे भरते वृत्तिर्वर्तितव्या च राजवत् ।
अप्यज्येष्ठा हि राजानो राजधर्ममनुस्मर २०

सुमन्त्रने राजा के ऐसे वचन सुन गद्गद् वाणी हो उत्तर दिया-'महाराज! धर्म ही की पालना करते हुए राम भली भांति प्रणाम कर हाथ जोड़ मुझ से बोले कि हे सूत! सब कुछ जाननेवाले व शिर से वन्दना करने के योग्य महात्मा मेरे पिता के चरणों की वन्दना मेरी ओरसे करना। तदनु अन्तःपुर में रहनेवाली मेरी सब माताओं से विशेष कर आरोग्य कहना और प्रणामादि जिसको जो योग्य हो कहना। (१३-१६)

'माता कौशल्या से प्रथम तो हमारे कुशलानन्दके समाचार कहना, फिर यह कहना जैसे सदा से तुम अपने धर्म में लगी रहती थीं, वैसे अब भी अग्निहोत्रादि करती हुई पिता के चरणों की सेवा करती रहना। माना-भिमान त्याग कर सब माताओं के बीच में रहना, राजा की सेवा करने के पीछे मेरी अप्रियकारिणी कैकेयी से मिलाप किये रहना। यद्यपि भरत आप से छोटे हैं, तथापि उन के साथ वैसे ही वर्ताव करना जैसे अन्य लोग

भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च ।
सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु २१
वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।
पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय २२
अतिक्रान्तवया राजा मा स्मैनं व्यपरोरुधः ।
कुमारराज्ये जीवस्व तस्यैवाज्ञाप्रवर्तनात् २३
अब्रवीच्चापि मां भूयो भृशमश्रूणि वर्तयन् ।
मातेव मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी २४
इत्येवं मां महाबाहुर्ब्रुवन्नेव महायशाः ।
रामो राजीवपत्राक्षो भृशमश्रूण्यवर्तयत् २५
लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत् ।
केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः २६
राज्ञा तु खलु कैकेय्या लघु चाश्रुत्य शासनम् ।
कृतं कार्यमकार्यं वा वयं येनाभिपीडिताः २७
यदि प्रव्राजितो रामो लोभकारणकारितम् ।

राजाओं के संग बर्ताव करते हैं। (१७—२०)

'भरत से कुशल के पश्चात् कहलाया है कि सब माताओं में यथायोग्य वृत्ति से बर्ताव करें। तथा युवराज पदवी को पाकर राजा की पालना ऐसी कर जिस से वे राज्य से बाहर न जायँ। यह भी कहा है कि राजा बहुत दिनों से राज्य कर रहे हैं, सब बातें जानते सुनते हैं, उन के मन को कभी न भंग करें, वरन् सब राजकाज उन्हीं की आज्ञा से करें। यह कह रामने भरत से कहने के लिये मुझ से कहा है कि पुत्र के विषय इच्छा किये हुई मेरी माता को स्वमाता के समान समझना। राम इस तरह से कह बहुत ही रोये। उस दशा का वर्णन मैं नहीं कर सकता। (२१—२५)

' तदन्तर ऊंची श्वास ले अति क्रोध से लक्ष्मण ने कहा कि इन राजकुमार राम को किस अपराध से बनवास दिया, यह भी उस से कह देना। राजाने कैकेयी के वचनों से ऐसा अकार्य किया, जिस से हम लोग वन में दुःखित

वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम् २८
इदं तावद्यथाकाममीश्वरस्य कृते कृतम्।
रामस्य तु परित्यागे न हेतुमुपलक्षये २९
असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात्।
जनयिष्यति सङ्कोशं राघवस्य विवासनम् ३०
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ३१
सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रते।
सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा ३२
सर्वप्रजाभिरामं हि रामं प्रव्राज्य धार्मिकम्।
सर्वलोकविरोधेन कथं राजा भविष्यति ३३
जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी।
भूतोपहतचित्तेव विष्ठिता विस्मृता स्थिता ३४
अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी।
तेन दुःखेन रुदती नैव मां किंचिदब्रवीत् ३५

फिरते हैं। यदि राम को लोभ के कारण परित्याग किया अथवा कैकेयी के वर को पूरा करने को किया, तो भी अनुचित ही किया। यदि ईश्वरके कराने से उन्होंने ऐसा किया है तो भी राम के परित्याग में ईश्वर-कृति का भी हेतु नहीं विदित होता। राजाने इस का दुःखद परिणाम न विचारा, केवल बुद्धिस्वल्पता से ही यह काम किया। (२६-३०)

'मैं पिता माता आदि के वियोग को न सहकर अयोध्या जाने के लिये ऐसा नहीं कहता, क्योंकि मेरे तो पिता, भाई, बन्धु, स्वामी सब राम ही हैं। सर्व लोक के हित करने में लगे हुए राम को उन्होंने वनवास दिया, तब इन के इस कर्म से सब लोक कैसे प्रसन्न होंगे? सब प्रजाओं के अभिराम राम को वनवास दे सर्व लोक से विरुद्ध कर राजा दशरथ आप ही कैसे राजा होंगे? परम तपस्विनी सीता बडी हतचित्त हो खडी लम्बी सांस लेती रही। उस यशस्विनी राजपुत्रीने कभी दुःख नहीं देखा था, अत. उस दुःख से

उद्वीक्षमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता।
मुमोच सहसा वाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्य सा ३६
तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः स्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी निरीक्षते राजरथं तथैव माम् ३७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे अष्टपञ्चाशः सर्गः॥५८॥

एकोनषष्टितमः सर्गः। [२३३९]

मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि।
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे संप्रस्थिते वनम् १
उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम्।
प्रस्थितो रथमास्थाय तद्दुःखमपि धारयन् २
गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्बहून्।
आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ३
विषये ते महाराज महाव्यसनकर्शिताः।
अपि वृक्षाः परिम्लानाः सुपुष्पाङ्कुरकोरकाः ४

दुःखी हो रोती ही रही। उसने मुझे कुछ भी नहीं कहा। कभी राम की ओर और कभी मेरी ओर देख देख नेत्रों से जल गिराती रही, शुष्क मुख कर सांसे लेती रही। जब मैं आगे बढने लगा, तब लक्ष्मणने रामचंद्रजीके हाथ पकड रखे थे, रामचन्द्रजी के आँखों से आँसुओंकी झडीसी लगी थी और हाथ जोडकर उन्होंने, जैसा कि मैंने आप से कह दिया, उसी तरह अपना कथन कह डाला, लेकिन बेचारी सीताजी कुछ भी न कहती हुई रोते रोते उस राजरथ की ओर और मेरी तरफ देख रही थीं। (३१-३७)

यहां अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

'राम के वन को चले जानेपर अश्व भी हिनहिना कर गर्म आंसुओं को छोडते उन्हीं की ओर वन को जाने लगे। राम लक्ष्मण के चलते समय हाथ जोड उन का दुःख हृदय में धर मैं चला आया। वहां से आ कई दिन गुह के यहां रहा कि, कदाचित् राम मुझे फिर न बुलावे। महाराज! आप के देश के वृक्ष भी राम के वनवास के दुःख से दुःखित हो कुम्हला गये हैं।

उपततोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च।
परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च ५
न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च।
रामशोकाभिभूतं तं निष्कूजमिव तद्वनम् ६
लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः।
सन्तप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः ७
जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि च।
नातिभान्त्यल्पगन्धीनि फलानि च यथापुरम् ८
अत्रोद्यानानि शून्यानि प्रलीनविहगानि च।
न चाभिरामानारामान्पश्यामि मनुजर्षभ ९
प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति।
नरा राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः १०

नदी, ताल व तलैयों का जल गर्म हो गया; वन, उपवनों के पत्ते सूख गये। (३–५)

'न सर्प रेंगते और न जीव चलते थे, राम के शोक से वन में शब्द ही नहीं होता था। नदियों का जल कलुषित हो गया, उन में कमलों के सडे गले पत्ते बहते हैं, तालाबों में कमल सन्तप्त हो रहे हैं। जलसे उत्पन्न कमल आदि के फूल व गुलाब चम्पादि वृक्षों के पुष्प, सभी में सुगन्ध कम हो गई है। राजन्! अयोध्या में जितनी वाटिकाएं थीं, सब शून्य पक्षीरहित हो गईं, कोई बागादि चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले नहीं दिखाई देते। मेरे

(पृष्ठ सोलह पर की टिप्पणी)

+ 'दिवसान्बहून्' याने लंबे अर्सेतक, नकि बहुतसे दिन। संस्कृत भाषा में दोसे ज्यादह कोई संख्या हो तो बहु शब्द का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर, सीता और लक्ष्मण के साथ राम गंगाके पार चला गया था, वह एक दिन, चित्रकूट पहुँचा, वह दूसरा दिन और गुहके पास गुप्तचर खबर लाये वह तीसरा दिन। तीसरे दिन पिछले दिन का कुछ अंश शेष रहते सुमंत्र अयोध्या जाने निकला, इस लिए 'बहून् दिवसान्' कहा है।

न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् २६
स तेन राजा दुःखेन भृशमर्पितचेतनः।
अवगाढः सुदुष्पारं शोकसागरमब्रवीत् २७
रामशोकमहावेगः सीताविरहपारगः।
श्वसितोर्मिमहावर्तो बाष्पवेगजलाविलः २८
बाहुविक्षेपमीनोऽसौ विक्रन्दितमहास्वनः।
प्रकीर्णकेशशैवालः कैकेयीवडवामुखः २९
ममाश्रुवेगप्रभवः कुब्जावाक्यमहाग्रहः।
वरवेलो नृशंसाया रामप्रव्राजनायतः ३०
यस्मिन्बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना।
दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः ३१
अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवं दिदृक्षमाणो न लभे सलक्ष्मणम्।
इतीव राजा विलपन्महायशाः पपात तूर्णं शयने स मूर्च्छितः ३२

इससे अधिक और कौन दुःख मिलेगा ? हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सीते ! मेरी वेदना को तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारे दुःख से एक अनाथ के समान प्राण त्याग रहा हूं ? (२१-२६)

एवं दुःखी हो राजा हतचेतन हो गये और प्रगाढ शोक में डूब कहने लगे कि ' राम के शोकरूपी महावेग और सीता की जुदाईरूपी परला तट, दीर्घ सासें ही जिस की लहरें है, अश्रुजल ही जिस में पानी है, हाथ फेंकना ही जिस में मत्स्य है, रोना ही शब्द है, कैकयीरूपी वडवानल है, मंथराके वचन ही जिस में नक्रादि ग्रह हैं, दुष्ट कैकेयी को दिया हुआ वर जिस की सीमा है, ऐसे शोकरूपी अथाह सागर में राम के विना मैं डूबता हूं। कौसल्ये ! इस शोकसागरसे मेरा जीना कठिन जान पडता है। (२७-३१)

' आज मेरे सामने एक बडा भारी पाप मुँहबाये खडा है जिससे मैं, लक्ष्मण के साथ रामचंद्रजी को नहीं देख पाता यद्यपि मेरे दिल में उसे देख लेनेकी तीव्र लालसा उठ खडी है।' इस भाँति बिलखते हुए वे अतियशस्वी नरेश दशरथ बेसुध होकर यकायक बिस्तरे पर गिर पडे और इसी तरह

इति विलपति पार्थिवे प्रनष्टे करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः ।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवी भयमगमत्पुनरेव राममाता　३३
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्ड एकोनषष्टितम: सर्गः॥५९

षष्टितमः सर्गः ।　[२३७२]

ततो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः ।
धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत्　१
नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः ।
तान्विना क्षणमप्यद्य जीवितुं नोत्सहे ह्यहम्　२
निवर्तय रथं शीघ्रं दण्डकान्नय मामपि ।
अथ तान्नानुगच्छामि गमिष्यामि यमक्षयम्　३
वाष्पवेगोपहतया स वाचा सज्जमानया ।
इदमाश्वासयन्देवीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्　४
त्यज शोकं च मोहं च संभ्रमं दुःखजं तथा ।
व्यवधूय च संतापं वने वत्स्यति राघवः　५
लक्ष्मणश्चापि रामस्य पादौ परिचरन्वने ।
आराधयति धर्मज्ञः परलोकं जितेन्द्रियः　६

रामके लिये रोते रोते सुधबुध भूलकर पडे हुए नरेश के उस अतिकरुणाजनक भाषण को सुनकर राममाता कौसल्यादेवी के मन में दुगुना डर पैदा हो गया, न जाने क्या इस दुःख में अब पति के बिछोह से होनेवाली पीडा भी जोडी जायगी ? (३२-३३)

यहाँ उनसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

कौसल्या बारबार कांपती हुई धरणी में गिर सुमन्त्र से कहने लगी। 'सूत ! जहां राम, जानकी व लक्ष्मण हैं, वहां मुझे ले चलो, उन के बिना क्षणभर भी नहीं जी सकती । शीघ्र रथ लौटाओ, मुझे दण्डकवन को ले चलो ।' यह सुन सुमन्त्र गद्‌गदवाणी से कौसल्या को समझाता हुआ हाथ जोड बोला– 'अब आप शोक व दुःखसे पैदा हुए सम्भ्रम को छोड दें, राम सुख से वन में रहेंगे । लक्ष्मण भी वन में रामचरणों की सेवा करते

तथापि सूतेन सुयुक्तवादिना निवार्यमाणा सुतशोककर्शिता ।
न चैव दर्वा विरराम कूजितात्प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च २३
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितम सर्ग । [२३९५]

वनं गते धर्मरते रामे रमयतां वरे ।
कौसल्या रुदती चार्ता भर्तारमिदमब्रवीत् १
यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः ।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः २
कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया ।
दुःखितौ सुखसंवृद्धा कथं दुःखं सहिष्यतः ३
सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता ।
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते ४
भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम् ।
वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ५
गीतवादित्रनिर्घोषं श्रुत्वा शुभसमन्विता ।

है और वन्य फल भक्षण करके वे पित्राज्ञा का परिपालन करते हैं।' इस प्रकार सुयोग्य वक्ता सुमंत्र "शोक मत करना" ऐसा कहता था, तो भी पुत्रशोक से कृश कौसल्या 'हे प्रिय पुत्र, राम!' ऐसा शोक कर रही थी। (१९-२३)

यहां साठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

जब राम वन को चले गये तो कष्ट से पीडित कौसल्या रोती हुई अपने पति महाराज दशरथ से कहने लगी– 'राजन्! यद्यपि तीनों लोकों में आप का यह यश फैल गया कि आप बडे दयालु, बडे दानी व प्रियवादी हैं, तो भी यह तो कहो कि जानकी व तुम्हारे दोनों पुत्र वन के दुःख कैसे सहेंगे? सुकुमारी जानकी वन की गर्मी व जाडा कैसे सहेगी? यहां और जनकपुरमें नानाभोजन करके सीता वन के खट्टे तीखे फल और मुनियों के निःस्वाद

कथं क्रव्यादसिंहानां शब्दं श्रोष्यत्यशोभनम् ६
महेन्द्रध्वजसङ्काशः क नु शेते महाभुजः ।
भुजं परिघसङ्काशमुपाधाय महाबलः ७
पद्मवर्ण सुकेशान्तं पद्मनिःश्वासमुत्तमम् ।
कदा द्रक्ष्यामि रामस्य वदनं पुष्करेक्षणम् ८
वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः ।
अपश्यन्त्या न तं यद्वै फलतीदं सहस्रधा ९
यत्त्वया करुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः ।
निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने १०
यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति ।
जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते ११
भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित्स्वानेव बान्धवान् ।
ततः पश्चात्समीक्षन्ते कृतकार्या द्विजोत्तमान् १२
तत्र ये गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः ।
न पश्चात्तेऽभिमन्यन्ते सुधामपि सुरोपमाः १३

भोजन कैसे करेगी ? यहां नाना गाने बजाने की ध्वनि सुन अब सिंहादिकों के भयङ्कर शब्द कैसे सुनेगी ? (१-६)

'सब को उत्सव करानेवाले राम भूषणरहित परिघ समान हस्त का तकिया बनाये कहीं शयन करते होंगे ? कमलाकार सुन्दर डाढी मूछयुक्त, कमलनयन राम का मुख अब फिर कब देखूंगी ? प्रिय राम को विना देखे हृदय के सहस्रों टूक नहीं हो जाते, जान पडता है कि हृदय वज्रसारवत् कठोर है। आपने दयाभाव को छोड राम, जानकी, लक्ष्मण को निकाल दिया। अब वे कृपणों के तुल्य वन में इतस्ततः फिरते हैं। (७-१०)

'यदि चौदह वर्ष के बाद राम वन से लौटे भी तौ भी राज्य, कोषादि भरत न छोडेंगे। क्योंकि जैसे कोई लोग श्राद्ध में अधिक मिलने के लिये पहिले अपने बान्धवों आदि को ही बुला खिलाते हैं, पीछे अन्य द्विजोत्तमों को भोजनादि को बुलाते हैं, पर उन में जो ब्राह्मणोत्तम होते हैं, उन को यदि पीछे से अमृत के समान भी भोजन करावें तो वे मान भङ्ग होने

ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः।
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः शृङ्गच्छेदमिवर्षभाः १४
एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशांपते।
भ्राता ज्येष्ठा वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते १५
न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मन्यते १६
हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे १७
तथा ह्यात्तमिदं राज्यं हृतसारां सुरामिव।
नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम् १८
नैवंविधमसत्कारं राघवो मर्षयिष्यति।
बलवानिव शार्दूलो वालधेरभिमर्शनम् १९
नैतस्य सहिता लोका भयं कुर्युर्महामृधे।
अधर्मं त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेण योजयेत् २०

से नहीं करते। ब्राह्मण जो पहिले भोजन कर जाते, तो पीछे उनको जो प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं, वे अवशिष्ट अन्न नहीं खाते, क्योंकि उस में उन का मान भंग होता है। इसी भांति भरत के भोगे हुए राज्य को राम कैसे अंगीकार करेंगे? (१३-१५)

'जैसे बाघ अन्य जीव का लाया मांसादि खाने की इच्छा नहीं करता, ऐसे ही नरव्याघ्र राम भरत के जूंठे राज्य को स्वीकार न करेंगे। क्योंकि यज्ञ से बची हुई सामग्री फिर दूसरे यज्ञ के योग्य नहीं रहती। अतः इस राज्य को जो बन से लौटने पर राम पावेंगे भी तो न ग्रहण करेंगे जैसे सारांश निकाला अमृत ग्रहण योग्य नहीं रहता। ऐसे अपमान को राम न सह सकेंगे, जैसे बलवान् सिंह पूंछ छू लेने के अनादर को नहीं सहता। राज्य न लेने पर भी उनकी अप्रतिष्ठा नहीं हो सकती, इस अधर्ममय संसार को धर्मात्मा करने के लिये ही ऐसा किया है। (१६-२०)

नन्वसौ काञ्चनैर्बाणैर्महावीर्यो महाभुजः ।
युगान्त इव भूतानि सागरानपि निर्दहेत् २१
स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा २२
द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रे दृष्टः सनातनैः ।
यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते २३
गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः ।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते २४
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः ।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया २५
हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च ।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ २६
इमां गिरं दारुणशब्दसंहितां निशम्य रामेति मुमोह दुःखितः ।

'महाबली राम सुवर्णबाणों से प्राणियों व समुद्रों का ऐसे भस्म कर सकते हैं जैसे प्रलय के समय सब भस्म होते हैं। ऐसे सिंहवत् बली वृषभस्कन्ध राम को पिता होकर आप ही ने मार डाला। देखिये! द्विजों का धर्म जो सदा से ऋषिलोग लिखते चले आते हैं और देखा सुना जाता है उस को ऐसे धर्मात्मा पुत्र को आपने वन निकाला दे नष्ट कर दिया। राजन्! स्त्री की एक गति तो पति है और दूसरी पुत्र तथा तीसरी ज्ञाति के लोग हैं, चौथी और कोई गति नहीं, इन के अभाव में उन का धर्म नहीं ठहरता। प्रथम गति पति है, सो आप तो मूर्छित ही पडे हैं, दूसरी गति पुत्र सो वन को चले गये, तीसरी गति परिवार सो भी रामके वियोग से मरे ही हैं। आप यहाँ रहने से मैं वनमें जाना नहीं चाहती। अतः सर्वथा तुमने मुझे मार डाला। आपके द्वारा राज्य के साथ राष्ट्, मंत्रियोंके साथ सब स्त्रियोंका, पुत्रों के साथ मेरा और प्रजाजनों का घात हुआ है। केवल आपका पुत्र भरत और कैकेयी प्रहृष्ट हुई हैं।' (२१-२६)

उपर्युक्त कठोर भाषण सुनकर दुःखी हुआ दशरथ राजा 'हे राम!'

ततः स शोकं प्रविवेश पार्थिवः स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तथास्मरत् २७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्ड एकषष्टितमः सर्गः॥६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः । [२४२२]

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया ।
श्रावितः परुषं वाक्यं चिन्तयामास दुःखितः १
चिन्तयित्वा स च नृपो मोहव्याकुलितेन्द्रियः ।
अथ दीर्घेण कालेन संज्ञामाप परंतपः २
स संज्ञामुपलभ्यैव दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ।
कौसल्यां पार्श्वतो दृष्ट्वा ततश्चिन्तामुपागमत् ३
तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात्कर्म दुष्कृतम् ।
यदनेन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना ४
अमनास्तेन शोकेन रामशोकेन च प्रभुः ।
द्वाभ्यामपि महाराजः शोकाभ्यामभितप्यते ५
दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः ।
वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः ६
प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः ।

ऐसा पुकार के मूर्च्छित हुआ और पश्चात् शोकाकुल उस को अपने दुष्कृत्य का पुनः स्मरण हुआ । (२७)

यहां एकसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

शोक और क्रोध से कौसल्या के दशरथ को ऐसे कठोर वचन कहनेपर राजा दुःखित हो चिन्ता करने लगे । व्याकुलेन्द्रिय चिन्तित राजा मोहित हो गया और बहुत काल में उनकी मूर्च्छा जागी । मूर्च्छा जागने पर दीर्घ गर्म सांस लेते हुए राजा बगल में कौसल्या को बैठी देख फिर चिन्ता करने लगे । उस समय में शब्दवेधी बाण द्वारा श्रवण को मारने और शाप प्राप्त होने की याद आई । तब उस शोक से व रामके शोक से महाराज अति संतप्त हुए । (१-५)

दोनों शोकों से भस्म होते महाराज कांपते हुए हाथ जोड़ कौसल्या से

वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ७
भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा ।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ८
सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा ।
नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम् ९
तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् ।
कौसल्या व्यसृजद्बाष्पं प्रणालीव नवोदकम् १०
सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम् ।
संभ्रमादब्रवीत्त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ११
प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते ।
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया १२
नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता ।
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या संप्रसाद्यते १३
जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् ।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् १४

बोले– 'हे प्रिये ! जिस मे तुम शत्रुओं के ऊपर भी दया करती और प्रसन्न रहती हो, सो मैं तुम्हारे हाथ जोडता हूं । देवि ! धर्मवती स्त्रियों के लिये पति ही धर्म है, चाहे वह सुशील हो वा कुशील, गुणी हो वा निर्गुणी, कुलीन हो वा अकुलीन । तुम धर्मनिष्ट लोगों को देखती हुई मुझ दुःखित को कष्ट न पहुंचाओ ।' अतिदीन राजाके ऐसे करुणामय वचन सुन कौसल्या आंसुओं की धार बहाने लगी । (६–१०)

हाथ जोड शिर पर धर रोदन करती हुई कौसल्या बडी नम्रता से बोली– 'देव ! प्रसन्न हूजिये, आप के आगे भूमि में गिर प्रणाम करती हूं, मैं पुत्र-शोक से मरी बैठी हूं, अब आप मेरे कडे वचनों से अप्रसन्न हो मुझे न मारिये । इस लोक परलोक में बडाई करने योग्य पति जिस स्त्री को मनावे, वह स्त्री सब स्त्रियों के तुल्य नहीं है । मैं स्त्रीधर्म को भली भांति जानती हूं कि उन्हें पति की प्रसन्नता ही के लिये काम करने चाहिये और यह भी जानती हूं कि आप सत्यवादी है, जो कुछ मैंने कटु वचन कहे वे पुत्रशोक से

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः	१५
शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः।
सोढुमापाततः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते	१६
वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम	१७
तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते।
नदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत्	१८
एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः।
मन्दरश्मिरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत	१९
अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्	२०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः।	[२४४२]

प्रतिबुद्धो मुहूर्तेन शोकोपहतचेतनः।
अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत	१

ही कहे हैं। शोक, धैर्य और श्रुत का नाश कर देता है, शोक समान अन्य शत्रु नहीं है। (११-१५)

'शत्रु का भीषण प्रहार सहा जा सकता है, पर शोक का नहीं, इस को रोकना दुष्कर है। राम को वनवास हुये पांच रात्रि हुईं। वे मुझे पांच वर्षों के तुल्य बीती हैं। चिन्ता से बढते हुए नदी वेग के समान शोक से मैं बहुत दुःखित हूं।' कौसल्या के इस प्रकार कहते रात्रि हो गई और राजा फिर शोकातुर हो गये। कौसल्या के वचनों से कुछ प्रसन्न भी हुए थे, किन्तु शोक ने फिर अधिकार जमा लिया और वह निद्रावश हो गये। (१६-२०)

यहाँ बासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

मुहूर्त भर के बाद राजा जागे और शोक से व्याकुलचित्त हो चिन्ता

रामलक्ष्मणयोश्चैव विवासाद्वासवोपमम्।
आपेदे उपसर्गस्तं तमः सूर्यमिवासुरम् २
सभार्ये हि गते रामे कौसल्यां कोसलेश्वरः।
विवक्षुरसितापाङ्गीं स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः ३
स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम्।
अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम् ४
स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ५
यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ६
गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम्।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते ७
कश्चिदाम्रवणं छित्वा पलाशांश्च निषिञ्चति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे ८
अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।

करने लगे। राम लक्ष्मण के वनवास के उपद्रव से बड़े शोकने दशरथ को ऐसा घेरा जैसे राहु सूर्य को। सपत्नीक राम के वनवास होने पर अपने किये हुए पाप को याद कर दशरथ कौसल्या से कुछ कहने लगे। वनवास के पीछे छठी रात्रि को अर्ध रात्रि के समय राजाने अपने किये पाप की याद की। पुत्रशोक से दुःखित हो अपने शाप को याद कर कौसल्या से कहने लगे। (१–५)

'भद्रे! पुरुष संसार में जो शुभ वा अशुभ कर्म करता है, उस से उत्पन्न फल को वह स्वयं ही पाता है। जब प्राणी कर्म करने लगे और उस की गुरुता, लघुता, दुःख आदि को प्रथम जान ले, तो वह बड़ा मूर्ख कहलाता है। जो पलाश वृक्ष के लाल लाल सुन्दर फूल देख यह अन्दाजा करता है कि इस के फूल अच्छे हैं, सो फल भी अच्छे होंगे, इसी अभिप्राय से उसे आम वृक्षों को सुन्दर न देख काटता है, वह पीछे पछताता है। ऐसे ही

स शोचेत्फलवेलायां यथा किंशुकसेवकः ९
सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च न्यषेचयम्।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः १०
लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता।
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम् ११
तदिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम्।
संमोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् १२
यथान्यः पुरुषः कश्चित्पलाशैर्मोहितो भवेत्।
एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम् १३
देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम्।
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मम कामविवर्धिनी १४
अपास्य हि रसान्भौमांस्तप्त्वा च जगदंशुभिः।
परेताचरितां भीमां रविराचरते दिशम् १५

जो जन कर्म करने लगता है और उस के परिणाम को नहीं सोचता वह फल-समयमें ऐसे ही पछताता है, जैसे ढाक को सेवनेवाला। सो मेरी भी वही अवस्था हुई कि आम का वन काट टाक को सींचा, जब फल पाने का समय आया तो राम को वन भेज अपनी दुष्ट मति को शोचता हूं। (९–१०)

'कौसल्ये' कुमारावस्था में एकदा शिकार खेलने गया और यह सोचा कि लोग मेरे विषय में में कहें कि 'यह बड़ा शब्दवेधी है' अतएव यह पाप किया। देवि! वही किया पापरूपी दुःख मुझ को प्राप्त हुआ। जैसे कोई जन ढाक के पुष्प देख उस से उत्तम फल प्राप्ति की इच्छा से सेवा करे, ऐसे ही मैने भी शब्दवेधी को उत्तम जान विना जाने बूझे ऐसा किया उस का फल पाया है। यह वृत्त तब का है जब कि तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था, मैं युवराज था। उन्हीं दिनों में वर्षा ऋतु आई जिसने मेरे काम की वृद्धि की। उस समय सूर्य किरणों से पृथ्वी का रस खींच दक्षिण दिशा को चला गया था। (११–१५)

उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशिरे घनाः ।
ततो जहृषिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः १६
क्लिन्नपक्षोत्तराः स्नाताः कृच्छ्रादिव पतत्रिणः ।
वृष्टिवातावधूताग्रान्पादपानभिपेदिरे १७
पतितेनाम्भसा च्छन्नः पतमानेन चासकृत् ।
आबभौ मत्तसारङ्गस्तोयराशिरिवाचलः १८
पाण्डुरारुणवर्णानि स्रोतांसि विमलान्यपि ।
सुस्रुवुर्गिरिधातुभ्यः सभस्मानि भुजङ्गवत् १९
तस्मिन्नतिसुखे काले धनुष्मानिषुमान्रथी ।
व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगां नदीम् २०
निपाने महिषं रात्रौ गजं वाभ्यागतं मृगम् ।
अन्यद्वा श्वापदं किंचिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः २१
अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः ।
अचक्षुर्विषये घोरं वारणस्येव नर्दतः २२

'उष्णता जाती रही थी, बादल चारों ओर दीख पड़ते थे, उस वर्षाकाल को देख मेंडक, हरिण, मयूर आदि जीव बड़े आनन्द को प्राप्त हुए। जब वर्षा होने लगी, तो सब पक्षी भीगे हुये पर इतस्ततः फटफटाने लगे, मानो बड़े कष्ट में हों, अतः पवन से कांपते वृक्षों पर जा जा बैठे। सतत बरसते हुए जलसे आच्छादित तथा मत्त चातकों से युक्त वह पर्वत शोभित होता था, जैसे स्थिर सागर यथावत् स्थिर रह शोभता है। पीले और लाल रङ्ग के विमल सोते पहाड़ों के गेरू आदि धातुओं से मिल कर बहने लगे और कहीं कहीं मिट्टी में लग लग बहते थे। ऐसे सुखद वर्षाकाल में धनुर्बाण ले रथ पर चढ़ शिकार खेलने तथा घूमने के लिये मैं सरयूतट पर पहुंचा। (१६-२०)

'वहां से उस स्थान पर गया जहां वनजीव जल पीने को जाते थे, ताकि वहां रात्रि में कोई भैंसे, हाथी, हरिण वा और कोई जीव आवे तो उसे मारूं। उसी समय वर्षा की अन्धेरी में कोई घड़ा भरने आया। जब बड़ा

ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् २३
शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम्।
अमुञ्चं निशितं बाणमहमाशीविषोपमम् २४
तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनौकसः।
हा हेति पततस्तोये बाणाद्व्यथितमर्मणः २५
तस्मिन्निपतिते भूमौ वागभूत्तत्र मानुषी।
कथमस्मद्विधे शस्त्रं निपतेच्च तपस्विनि २६
प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः।
इषुणाभिहतः केन कस्य वापकृतं मया २७
ऋषेर्हि न्यस्तदण्डस्य वने वन्येन जीवतः।
कथं नु शस्त्रेण वधो मद्विधस्य विधीयते २८
जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः।
को वधेन ममार्थी स्यात्किं वास्यापकृतं मया २९
एवं निष्फलमारब्धं केवलानर्थसंहितम्।
न कश्चित्साधु मन्येत यथैव गुरुतल्पगम् ३०
नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः।

पानी में डुबोने लगा, तो उस का ऐसा शब्द हुआ मानों हाथी है। तब मैंने हाथी मारने के लिये विष में बुझा हुआ बाण निकाल उस शब्द की सीध में छोड़ा। जैसे ही ऐसा बाण मैंने छोड़ा कि किसी वनवासी का शब्द सुनाई दिया और यह भी ज्ञात हुआ कि वह हा हा करता बाणसे व्याकुल हो जल में गिरा। वह कहने लगा। (२१–२६)

'हाय! मुझ जैसे तपस्वी पर क्यों बाण छोड़ा गया? मैं तो जल भरने के लिये अकेला इस वन में रात्रि को आया था। मुझे बाण से किसने मारा? मैंने किस का क्या अपकार किया? मैंने तो केवल जटा रखाये वल्कल और मृगचर्म ही धारण करता हूं। मेरे वध से न जाने किस का प्रयोजन सिद्ध होगा और उस का मैंने कौनसा अपकार किया? ऐसा कर्म तो अनर्थमूलक ही है। (२६–३०)

मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्वधे ३१
तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया ।
मयि पञ्चत्वमापन्ने कां वृत्तिं वर्तयिष्यति ३२
वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः ।
केन स्म निहताः सर्वे सुबलेनाकृतात्मना ३३
तां गिरं करुणं श्रुत्वा मम धर्मानुकाङ्क्षिणः ।
कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि ३४
तस्याहं करुणं श्रुत्वा ऋषेर्विलपतो निशि ।
संभ्रान्तः शोकवेगेन भृशमासं विचेतनः ।
तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः ३५
अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम् ३६
अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् ।
पांसुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम् ३७
स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतनम् ।

'जैसे कोई गुरुशय्या पर चढने को अच्छा नहीं मानता, वैसे ही मैं इस कर्म को अच्छा नहीं मानता। प्राणनाश का मुझे कुछ शोक नहीं। अपने वध से मैं स्वमाता पिता का शोक करता हूं, जिन वृद्धों को मैंने चिरकाल से पोषण किया। मेरे मरने पर दोनों किस तरह निर्वाह करेंगे? मेरे माता पिता तो वृद्ध हैं और मैं बाण से मारा गया। हम सबों को किस अकृतात्माने मारा।' (३०-३३)

'इस करुणावाणी को सुन धर्मानुकांक्षी मेरे हाथों से धनुषबाण भूमि पर गिर पड़े और मेरा शरीर कांपने लगा। रात्रि में उस ऋषि का करुण-विलाप सुन, शोकवेग से आत्मग्लानि में मूर्छित हो गया, फिर अति-दुर्मना हो उस स्थान पर पहुंचा। और देखा तो सरयूतट पर बाण से मरा हुआ, जटा धारण किये, जलभरा घड़ा हाथ में पकड़े, एक तपस्वी पड़ा है। अंगों में लोहू की सनी धूलि लगी है, बाणपीड़ा से व्यथित भूमि में पड़ा है। (३४-३७)

इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा ३८
किं तवापकृतं राजन्वने निवसता मया ।
जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया ३९
एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि ।
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे ४०
तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ ।
चिरमाशां कृतां कष्टां तृष्णां संधारयिष्यतः ४१
न नूनं तपसो वास्ति फलयोगः श्रुतस्य वा ।
पिता यन्मां न जानाति शयानं पतितं भुवि ४२
जानन्नपि च किं कुर्यादशक्तश्चापरिक्रमः ।
भिद्यमानमिवाशक्तस्त्रातुमन्यो नगो नगम् ४३
पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव ।
न त्वामनुदहेत्क्रुद्धो वनमग्निरिवैधितः ४४
इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः ।
तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत् ४५

'उसने मुझे घबड़ाया हुआ देख अपने तेज से मुझ को भस्म करता हुआ सा बोला– ' राजन् ! इस वन में बस के मैंने तुम्हारा कौन अपकार किया ? मैं तो स्वमाता पिता के लिये जल लेने आया था, तुमने मुझे मार डाला । बाणद्वारा मेरा मर्मस्थल वेध तुम ने और भी दो वृद्ध अन्धों को मारा, जो मेरे पिता माता हैं, वे प्यास के मारे मेरी राह देखते होंगे। बड़ी देर से तृषित होने से वे बहुत दुःख में होंगे। (३८–४१)

'मेरी इस दशा को न वे किसी तपोबल से जान सकते हैं और न शास्त्र-बल से। पिता यह नहीं जानते कि बाण से हत मैं पृथ्वी में सोता हूं। वे जान कर भी क्या कर सकते ? क्योंकि वह अपराक्रमी और अशक्त हैं। जैसे कटे वृक्ष की दूसरा वृक्ष रक्षा नहीं कर सकता, ऐसे ही मेरे पिता माता भी अन्धे और पंगु होने से असमर्थ हैं। हो राजन् ! मेरे पिता के पास जा तुम्हीं कहो, नहीं तो तुमको पिता भस्म कर देंगे। जहां मेरे पिता का

विशल्यं कुरु मां राजन्मर्म मे निशितः शरः।
रुणद्धि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा ४६
सशल्यः क्लिश्यते प्राणैर्विशल्यो विनशिष्यति।
इति मामविशच्चिन्ता तस्य शल्यापकर्षणे ४७
दुःखितस्य च दीनस्य मम शोकातुरस्य च।
लक्षयामास स ऋषिश्चिन्तां मुनिसुतस्तदा ४८
ताम्यमानं स मां कृच्छ्रादुवाच परमार्थवित्।
सीदमानो विवृत्ताङ्गो चेष्टमानो गतः क्षयम् ४९
संस्तभ्य शोकं धैर्येण स्थिरचित्तो भवाम्यहम्।
ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम् ५०
न द्विजातिरहं राजन्मा भूत्ते मनसो व्यथा।
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ५१
इतीव वदतः कृच्छ्राद्बाणाभिहतमर्मणः।
विघूर्णतो विचेष्टस्य वेपमानस्य भूतले ५२
तस्य त्वाताम्यमानस्य तं बाणमहमुद्धरम्।

स्थान है, वहां तक यह छोटी पगडण्डी गई है। वहां जा मेरे पिता को प्रसादित करो, जिस से तुम को शाप न देवें। मेरे मर्मस्थान में लगे बाण को भी निकाल दो। क्योंकि वह मुझे पीड़ा दे रहा है, जैसे जल-प्रवाह रेत के ऊँचे ढेर को काटता है।' (४२-४६)

'यह सुन मैंने सोचा कि बाण निकलते ही इसके प्राण भी निकल जायंगे। अतएव चिन्ता से व्याकुल हो तीर न निकाल सका। उस मुनि-पुत्रने मेरी दशा को लक्षित कर लिया और मुझ से बड़ी कृपा से बोला। यद्यपि उस में बोलने की शक्ति न थी, क्योंकि उस के सब अंग कांप रहे थे, प्राण निकला ही चाहते थे। तो भी दया कर बड़े धैर्य से स्थिर चित्त हो कहने लगा— 'राजन्! ब्रह्महत्या से डरते हो इस से तीर नहीं निकालते। न डरिये, क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं हूं, आप सङ्कोच न करें। मैं शूद्रा स्त्री में वैश्य से उत्पन्न हूं।' बाण निकालने के समय वह छटपटाने लगा, पर मैंने

स मामुद्वीक्ष्य संत्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः ५३
जलार्द्रगात्रं तु विलप्य कृच्छ्रं मर्मव्रणं संततमुच्छ्वसन्तम्।
ततः सरय्वां तमहं शयानं समीक्ष्य भद्रे सुभृशं विषण्णः ५४

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः॥६३॥ [२४९६]

चतुःषष्टितमः सर्गः।

वधमप्रतिरूपं तु महर्षेस्तस्य राघवः।
विलपन्नेव धर्मात्मा कौसल्यामिदमब्रवीत् १
तदज्ञानान्महत्पापं कृत्वा संकुलितेन्द्रियः।
एकस्त्वचिन्तयं बुद्ध्या कथं नु सुकृतं भवेत् २
ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा।
आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ३
तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ।
अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविव द्विजौ ४
तन्निमित्ताभिरासीनौ कथाभिरपरिश्रमौ।
तामाशां मत्कृते हीनावुपासीनावनाथवत् ५

बाण निकाल दिया। तीर निकालते ही उसने मेरी ओर देख भयभीत हो प्राण त्याग दिये। तब जल से भिगा हुआ तथा शरव्रणजनित दुःख से विलाप करते करते मरे उस तपस्वी को देखकर हे कौसल्या! मैं अतीव खिन्न हो गया।' (४७–५४)

यहाँ त्रेसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

इस प्रकार ऋषिपुत्र का अनुचित वध दशरथ रो रो कर कहते हुए कौसल्या से बोले, 'हे प्रिये! अज्ञान से वह पाप कर व्याकुलचित्त हो मैं उस शून्य स्थान में सोचने लगा कि अब कैसे इस के वध का पाप मिटे? बहुत सोच कर उस घडे में सरयूजल भर ऋषिपुत्रकी बताई हुई पगडण्डी से उस के स्थान पर गया। वहां जो देखा तो अति दुर्बल अन्धे वृद्ध उस के माता पिता पंख कटे पक्षियों के समान बैठे थे और पुत्र की बाट देख रहे थे। वह आशा मेरे कारण जाती रही, क्योंकि उस पुत्र का मैंने वध किया था। वे अत्यन्त अनाथ हो बैठे थे। उस पुत्रके सिवा और कोई उनकी खबर

शोकोपहतचित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः ।
तद्याश्रमपदं गत्वा भूयः शोकमहं गतः   ६
पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत ।
किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय   ७
यन्निमित्तमिदं तात सलीले क्रीडितं त्वया ।
उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम्   ८
यद्व्यलीकं कृतं पुत्र मात्रा ते यदि वा मया ।
न तन्मनसि कर्तव्यं त्वया तात तपस्विना   ९
त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् ।
समासक्तास्त्वयि प्राणाः कथं त्वं नाभिभाषसे   १०
मुनिमव्यक्तया वाचा तमहं सज्जमानया ।
हीनव्यञ्जनया प्रेक्ष्य भीतचित्त इवाब्रुवम्   ११
मनसः कर्म चेष्टाभिरभिसंस्तभ्य वाग्बलम् ।
आचचक्षे त्वहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम्   १२
क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः ।
सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम्   १३

लेनेवाला न था। (१-५)

'उसी समय शोक से हतचित्त और भयभीत मैं उस आश्रम पर पहुंचा। मेरे पैरों की आहट सुन वे मुनि बोले– 'पुत्र! अब देरी क्यों करते हो? जल्द हमको पानी पिलाओ। जलमें बहुत देर तक क्रीडा करते रहे, इससे तुम्हारी मां बडे प्यार से स्मरण करती हैं, जल्द ही स्वस्थान में प्रवेश करो। पुत्र! तुम्हारी माता ने और मैंने जो अपराध किया हो, तुम उस पर ध्यान न देना। इन असमर्थ, अन्धों के पालक तुम्हीं में हमारे प्राण लगे हैं, तुम क्यों नहीं बोलते?' (६-१०)

'वृद्धता के कारण वे बहुत धीरे धीरे बोलते थे, विकलता के कारण स्पष्ट शब्द सुनाई नहीं देता था। डरते डरते मैं उनसे बोला और धीरे से उनके कष्ट का हाल कहने लगा– 'मुनिराज! मैं दशरथ नाम क्षत्रिय हूं। आप का

भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः ।
जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने वागतं गजम् १४
ततः श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः ।
द्विपोऽयमिति मत्वाहं बाणेनाभिहतो मया १५
गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि ।
विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम् १६
ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परितप्यतः ।
स मया सहसा बाण उद्धृतो मर्मतस्तदा १७
स चोद्धृतेन बाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः ।
भगवन्तावुभौ शोचन्नन्धाविति विलप्य च १८
अज्ञानाद्भवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया ।
शेषमेवं गते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः १९
स तच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं मया तदघशंसिना ।
नाशकत्तीव्रमायासं स कर्तुं भगवानृषिः २०
स बाष्पपूर्णवदनो निःश्वसञ्शोकमूर्च्छितः ।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् २१

पुत्र अब नहीं है. आप बड़े सज्जन हैं, पर न मालूम आपने क्यों यह दुःख पाया है। भगवन्! मैं धनुर्बाण ले पनघट पर हाथी, सिंह आदि जङ्गली जीव मारने के लिये सरयू तट पर गया, वहां जल में घड़ा डूबने का शब्द सुन और यह जान कि हाथी पानी पी रहा है, बाण चलाया। (११–१५)

'सरयू के तटपर जा देखा, तो मेरे उसी बाण से भिन्नहृदय प्राण निकलते हुए एक तपस्वी पृथ्वीपर पड़ा है। मैं बाण नहीं निकालना चाहता था, पर उसी के कहने से उस के मर्मस्थल में लगा तीर मैंने निकाल दिया। बाण निकालते ही आप लोगों का शोक करते हुए उसने स्वर्ग की यात्रा की। इस तरह अनजाने में मैंने तुम्हारे पुत्र को मारा। अब आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये।' (१६–१९)

'जब मैंने अपना अपराध अपने मुख से मुनि से कहा, तो उस को सुन वे मुनिराज कुछ न बोल सके। केवल आंसू भर कर शोक से मूर्छित हो

यद्येतदशुभं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् ।
फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा २२
क्षत्रियेण वधो राजन्वानप्रस्थे विशेषतः ।
ज्ञानपूर्वं कृतः स्थानाच्च्यावयेदपि वज्रिणम् २३
सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति ।
ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि २४
अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे ।
अपि ह्यकुशलं न स्याद्राघवाणां कुतो भवान् २५
नय नौ नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत ।
अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनम् २६
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रकीर्णाजिनवाससम् ।
शयानं भुवि निःसंज्ञं धर्मराजवशं गतम् २७
अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ ।
अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया २८
तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ ।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह २९

हाथ जोड खडे हुए मुझ से बोले– 'राजन् ! जो यह अपना किया हुआ अशुभ कर्म आप स्वय हम से न कहते, तो तुम्हारे शिर के फटकर अनेरव्य टूक हो जाते। क्षत्रिय होकर जो तपस्वी का वध जानबूझ करे, तो इन्द्र तक भी पतित हो जावे। ऐसे ब्रह्मवादी तपस्वी का वध जो जानबूझ करे, तो वधकर्ता के शिर के टुकडे टुकडे हो जायं। तुमने अज्ञानता में हमारे पुत्र का वध किया, इस से जीते हो, अन्यथा ऐसा पाप जानबूझ कर करने से रघुवंश ही न रहता। हे राजन्! हम अपने पुत्रको देखना चाहते हैं, इस से हमें वहीं ले चलो, क्योंकि अब उस के अन्तिम दर्शन हैं। उसके अङ्गों में लोहू लगा होगा, मृगचर्म अलग पडा होगा, मूर्छित भूमि में सोता होगा, प्राण उस के यमराज के समीप पहुच गये होंगे।' (२०–२७)

'मैंने अकेले उन दोनों को कन्धे पर चढा लिया और उनके पुत्रको छुआ दिया। वे दोनों अपने पुत्र के शरीर को टटोल उसी के देह पर गिर पडे,

नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे ।
किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि ३०
नन्वहं तेऽप्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिकीम् ।
किं च नालिङ्गसे पुत्र सुकुमार वचो वदः ३१
कस्य वा पररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ३२
को मां संध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ३३
कन्दमूलफलं हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् ।
भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ३४
इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम् ।
कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम् ३५
तिष्ठ मा मागमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति ।
श्वो मया सह गन्तासि जनन्या च समेधितः ३६
उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने ।
क्षिप्रमेव गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ३७

उसका पिता– 'बोला । हे वत्स ! आज हमें प्रणाम नहीं करते ? हमसे बोलते नहीं हो ? पृथ्वी पर सो रहे हो, क्या हम से रुष्ट हो गये हो ? यदि मैं तुम को अप्रिय हूं तो धार्मिकी अपनी माता ही को देखो, क्यों नहीं उठके लिपट जाते ? अब हम अर्ध रात्रि के पीछे शास्त्र आदि पढते हुए मनोहर वचन किसके सुनेंगे ? अब स्नान सन्ध्या समाप्त करके पुत्र के शोक दुःखित हमारी कौन सेवा करेगा ? (२८–३३)

'और कन्द मूल लाकर जिस का हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं रहा, ऐसे अनाथ को कौन भोजन करावेगा ? अब हम इस वृद्धा व अन्धी तुम्हारी माताको कैसे पालें पोषेंगे ? क्योंकि वह रात्रि दिन पुत्र ही की आकांक्षा किया करेगी । हे पुत्र ! अभी ठहरो, यमराज के स्थान को न जाओ, प्रातः मेरे और अपनी माता के साथ जाना । क्योंकि हम दोनों भी तो शोकाहत

ततो वैवस्वतं दृष्ट्वा तं प्रवक्ष्यामि भारतीम् ।
क्षमतां धर्मराजो मे बिभृयात्पितरावयम् ३८
दातुमर्हति धर्मात्मा लोकपालो महायशाः ।
ईदृशस्य ममाक्षय्यामेकामभयदक्षिणाम् ३९
अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा ।
तेन सत्येन गच्छाशु ये लोकास्त्वस्त्रयोधिनाम् ४०
यां हि शूरा गतिं यान्ति सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
हतास्त्वभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ४१
यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः ।
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ४२
या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या ।
भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च ४३
गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि ।
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ४४

अनाथ तुम्हारे बिना शीघ्र ही यमालय को जायेंगे । वहां चल यमसे कहेंगे, कि हमने जो अपराध किया हो क्षमा कीजिये, हमारा पुत्र हम वृद्धों का पालन करे, ऐसी आज्ञा दीजिये । (३४-३८)

'हमारे ऐसा कहने पर वे धर्मराज लोकपाल यह अभय क्षयरहित दक्षिणा दे देंगे । हे पुत्र ! तुम तो पापी नहीं हो, पर कोई तो पूर्व जन्म में पाप था जिस से मारे गये । तुमने कोई भी पाप नहीं किया, इसी सत्यसे उन लोकों को चल जाओ, जो युद्ध सन्मुख मरे हुए लोगों को होते हैं । पुत्र ! जिस गति को शूरवीर लोग जो संग्राम से लौटते नहीं, रण में मर पाते हैं, उसी गति को तुम भी प्राप्त होओ । जिस गतिको सगर, शैब्य, दिलीप जनमेजय, नहुष व धुन्धुमार राजा प्राप्त हुए, तुम भी उसी गति को पाओ । और जो गति प्राणियों को वेदशास्त्र आदि पढने, यज्ञ करने, प्रतिदिन अग्निहोत्रादि करने, एकपत्नीव्रत, सहस्र गौ देने, गुरुसेवा करने व [*प्रयाग अयोध्या काश्यादि तीर्थों में*] इच्छापूर्वक शरीर त्याग करनेसे होती है, हे पुत्र ! उसी

न हि त्वस्मिन्कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम्।
स तु यास्यति येन त्वं निहतो मम बान्धवः ४५
एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत्।
तथोक्त्वा कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सह भार्यया ४६
स तु दिव्येन रूपेण मुनिपुत्रः स्वकर्मभिः।
स्वर्गमध्यारुहत्क्षिप्रं शक्रेण सह धर्मवित् ४७
आबभाषे च तौ वृद्धौ शक्रेण सह तापसः।
आश्वस्य च मुहूर्तं तु पितरौ वाक्यमब्रवीत् ४८
स्थानमस्मि महत्प्राप्तो भवतोः परिचारणात्।
भवन्तावपि च क्षिप्रं मम मूलमुपैष्यतः ४९
एवमुक्त्वा तु दिव्येन विमानेन वपुष्मता।
आरुरोह दिवं क्षिप्रं मुनिपुत्रो जितेन्द्रियः ५०
स कृत्वाथोदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया।
मामुवाच महातेजा कृताञ्जलिमुपस्थितम् ५१
अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा।
यः शरेणैकपुत्रं मां त्वमकार्षीरपुत्रकम् ५२

गति को पाओ। इस हमारे कुल में उत्पन्न मनुष्य कुगति को नहीं पाता, सो मारे जाने पर भी तुम सुगति को ही पाओ।' (३९–४५)

'इस प्रकार वह नाना भांति रोदन कर और ऐसी बातें करता हुआ स्त्री सहित उस को जल देने में उद्यत हुआ। जब उन दोनोंने जल दानादि किया, तो वह तपस्वी पुत्र दिव्य शरीर पा इन्द्र के साथ स्वर्ग को चला गया और चलने के समय इन्द्र के साथ विमान पर चढ माता पिता को समझा उन से यह बोला कि 'आप लोगों की सेवा करने से मुझ को बडा उत्तम स्थान मिला, आप लोग भी बहुत ही शीघ्र उसी मेरे स्थान को प्राप्त होंगे।' इस तरह मुनि से कह विमान पर मुनिपुत्र चढा। (४६–५०)

'उस के पीछे सस्त्रीक वह मुनि, पुत्र को तिलोदक दे हाथ जोड खडा हो मुझ से बोला– 'राजन्! तुमने हमारे पुत्र को मारा, अब हम को भी

त्वयापि च यदज्ञानान्निहतो मे स बालकः ।
तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम् ॥ ५३
पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम सांप्रतम् ।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥ ५४
अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः ।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥ ५५
त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति ।
जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणाम् ॥ ५६
एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु ।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥ ५७
तदेतच्चिन्तयानेन स्मृतं पापं मया स्वयम् ।
तदा बाल्यात्कृतं देवि शब्दवेध्यनुकर्षिणा ॥ ५८
तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः ।
अपथ्यैः सह संभुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा ॥ ५९
तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः ।
इत्युक्त्वा स रुदंस्त्रस्तो भार्यामाह तु भूमिपः ॥ ६०

मार डाले, हमें मरने में कुछ दुःख नहीं है । तुमने अज्ञान से हमारे पुत्र को मार डाला, तथापि हम तुमको शाप देते हैं जिस से तुम्हे अति दारुण कष्ट मिलेगा । राजन् ! जैसे हम को इस समय यह पुत्र का शोक है जिस से हम शीघ्र ही मरेंगे, वैसे ही तुम भी पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ दोगे । तुमने अज्ञान से हमारे पुत्र को मारा है, इसी से तुम को ब्रह्महत्या नहीं हुई । पर तुम भी बहुत शीघ्र इसी पुत्र शोक की दशा में मरोगे । ' (५०-५६)

'इस तरह से मुझे शाप दे काष्ठ से वहां चिता बना कर अग्नि लगा वे दोनों जल कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये । देवि ! चिन्ता करते करते इस पाप की याद आ गई जो मैंने अज्ञान से शब्दवेधी बाणद्वारा किया है । देवि ! यह उसी पाप का फल है जैसे अपथ्य रस खाने से व्याधि होती है । अतएव उस महात्मा ऋषि के वचन आज मुझ को प्राप्त हुए । ' यह कह रोता हुआ राजा कौसल्या से बोले- (५७-६०)

यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम् ।
चक्षुर्भ्यां त्वां न पश्यामि कौसल्ये त्वं हि मां स्पृश ।
यमक्षयमनुप्राप्ता द्रक्ष्यन्ति नहि मानवाः ६१
यदि मां संस्पृशेद्रामः सकृदन्वारभेत वा ।
धनं वा यौवराज्यं वा जीवेयमिति मे मतिः ६२
न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् ।
सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि ६३
दुर्वृत्तमपि कः पुत्रं त्यजेद्भुवि विचक्षणः ।
कश्च प्रव्राज्यमानो वा नासूयेत्पितरं सुतः ६४
चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते ।
दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम् ६५
अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये ।
न हि पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम् ६६
तस्यादर्शनजः शोकः सुतस्याप्रतिकर्मणः ।
उच्छोषयति वै प्राणान्वारि स्तोकमिवातपः ६७

'अब मैं पुत्र शोक से मरता हूं, अब मुझ को दीख नहीं पडता, तुम मुझे पकडे रहो ! न दीख पडने का कारण यही है कि जो लोग यमपुर के जानेवाले होते हैं, वे मनुष्य फिर किसी को नहीं देखते । हाय ! यदि राम मुझ को आकर छुए व पीछे से कुछ सहारा करें । अर्थात् धन ग्रहण करें वा युवराजपद ही को ग्रहण करें, तो अवश्य मैं जी सकता हूं, पर जो कर्म मैंने राम के साथ किया है वह मेरे योग्य नहीं था । जो कुछ उनके योग्य था सो तो उन्होंने किया । विचारवान् जन दुराचारी पुत्र को भी नहीं त्यागते । ऐसा कोई पुत्र न होगा जिसे पिता घर से निकाल दे, पर वह कुछ न कहे। प्रिये ! अब मैं तुम्हें नहीं देख पाता, स्मरण भी जाता रहा, किसी बात की याद नहीं आती । हे प्रिये ! ये यम के दूत आगे खडे हैं, मेरे ले चलने में जल्दी कराते हैं । (६१–६५)

'इस से भी अधिक कष्ट और कौन होगा कि मरते समय मैं धर्मज्ञ राम को नहीं देखता ? अब जिस के समान दूसरा पुत्र कर्म न कर सकेगा,

न ते मनुष्या देवास्ते ये चारुशुभकुण्डलम्।
मुखं द्रक्ष्यन्ति रामस्य वर्षे पञ्चदशे पुनः ६८
पद्मपत्रेक्षणं सुभ्रु सुदंष्ट्रं चारुनासिकम्।
धन्या द्रक्ष्यन्ति रामस्य ताराधिपसमं मुखम् ६९
सदृशं शारदस्येन्दोः फुल्लस्य कमलस्य च।
सुगन्धि मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम् ७०
निवृत्तवनवासं तमयोध्यां पुनरागतम्।
द्रक्ष्यन्ति सुखिनो रामं शुक्रं मार्गगतं यथा ७१
कौसल्ये चित्तमोहेन हृदयं सीदतीतराम्।
वेदये न च संयुक्ताञ्शब्दस्पर्शरसानहम् ७२
चित्तनाशाद्विपद्यन्ते सर्वाण्येवेन्द्रियाणि हि।
क्षीणस्नेहस्य दीपस्य संरक्ता रश्मयो यथा ७३
अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतनम्।
संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ७४
हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन।
हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतः सुत ७५
हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि।

ऐसे पुत्र के न देखने का शोक मेरे प्राणों को सोखे लेता है। वे लोग मनुष्य नहीं हैं, किन्तु देवता हैं, जो रमणीय कुण्डल धारे, पन्द्रह वर्षके बाद रामका पद्मपत्रेक्षण सुन्दर मुखारविन्द देखेंगे। जो लोग प्रफुल्लित कमल के समान प्रकाशित चन्द्राकार राम का मुख देखेंगे, वे लोग धन्य हैं। (६६–७०)

'वनवास से निवृत्त हो फिर अयोध्या में आये हुए राम का कमलसम सुगन्धित मुख जो देखेंगे, वे लोग धन्य हैं। जो लोग नक्षत्रसमरूप राघव को देखेंगे, वे धन्य हैं। हे प्रिये ! अब चित्तमोह से मन बहुत घबराता है, जिन से शब्द, स्पर्श रसादि ज्ञान पड़ते हैं, वे सब चित्त के नाश से नाश हो जाते हैं। हे कौसल्ये ! यह मेरे हृदय से उठा शोक अचेतन अनाथ की भांति मुझको वेग से गिराये देता है जैसे नदी की धारा उस के किनारों को गिराती है। हा महाबाहो राघव ! हा पिताके प्यारे पुत्र ! हा कौसल्ये !

हा नृशंस ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि ७६
इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ७७
तथा तु दीनः कथयन्नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः।
गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ७८

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुःषष्टितम. सर्गः ॥६४॥ [२५७४]

पञ्चषष्टितम. सर्गः।

अथ रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरेवापरेऽहनि।
वन्दिनः पर्युपातिष्ठंस्तत्पार्थिवनिवेशनम् १
सूताः परमसंस्कारा मागधाश्चोत्तमश्रुताः।
गायकाः श्रुतिशीलाश्च निगदन्तः पृथक्पृथक् २
राजानं स्तुवतां तेषामुदात्ताभिहिताशिषाम्।
प्रासादाभोगविस्तीर्णः स्तुतिशब्दो ह्यवर्तत ३
ततस्तु स्तुवतां तेषां सूतानां पाणिवादकाः।
अपदानान्युदाहृत्य पाणिवादान्यवादयन् ४

तुम दिखाई नहीं पडती। हा तपस्विनी सुमित्रा! तुम्हे मैं नहीं दीख पाता। हा नृशंसिन, अमित्रा. कुलपांसिनी कैकेयी!' यह कहते कहते दशरथ कौसल्या और सुमित्रा के सम्मुख रोने लगे और इसी प्रकार शोचते हुए जीवन की अन्तिम गति को प्राप्त हुए। मध्यरात्री हो जानेपर, प्रिय पुत्रको वन में निकाल देने से आतुर, दीन तथा अति दुःख से पीडित हुए दशरथ पंचत्व को प्राप्त हुए। (७१–७८)

यहाँ चौंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

जब वह रात्रि बीत गई और प्रातः हुआ, तो सब वन्दीगण राजमन्दिरके द्वार पर पहुंचे। सूत लोग भी अच्छे वस्त्रादि धारण किये तथा मंगलवाचक व गायक लोग आ आकर अलग अलग बैठे। वे लोग बडे ऊंचे स्वर से राजा को आशीर्वाद देने और उन की स्तुति करने लगे। उनका शब्द जिस घरहर पर राजा पडे थे, वहां तक पहुंचा। जब वे लोग स्तुति करने लगे

तेन शब्देन विहगाः प्रतिबुद्धाश्च सस्वनुः।
शाखास्थाः पञ्जरस्थाश्च ये राजकुलगोचराः ५
व्याहृताः पुण्यशब्दाश्च वीणानां चापि निःस्वनाः।
आशीर्गेयं च गाथानां पूरयामास वेश्म तत् ६
ततः शुचिसमाचाराः पर्युपस्थानकोविदाः।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठा उपतस्थुर्यथा पुरा ७
हरिचन्दनसंपृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः।
आनिन्युः स्नानशिक्षाज्ञा यथाकालं यथाविधि ८
मङ्गलालम्भनीयानि प्राशनीयान्युपस्करान्।
उपानिन्युस्तथा पुण्याः कुमारीबहुलाः स्त्रियः ९
सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वं विधिवदर्चितम्।
सर्वं सगुणलक्ष्मीवत्तद्बभूवाभिहारिकम् १०
ततः सूर्योदयं यावत्सर्वं परिसमुत्सुकम्।
तस्थावनुपसंप्राप्तं किंस्विदित्युपशङ्कितम् ११
अथ याः कोशलेन्द्रस्य शयनं प्रत्यनन्तराः।

तो तालियां बजानेवाले लोग ताली बजाकर राजवंश की परंपरा आदि गाने लगे। उस शब्दको सुन राजा के यहांके पाले हुए पक्षी, जो पिञ्जरोंमें रहते थे और वृक्षोंकी डालोंपर रहते थे जाग उठे और बोलियां बोलने लगे। (१-५)

इन सबों के शब्द, वीणा आदि का शब्द, आशीर्वादों की ध्वनि से वह मन्दिर गूंज उठा। तब सदाचारी सेवाकर्म में निपुण लोग तथा स्त्रियां और नपुंसकगण यथापूर्वस्तुति करने लगे। चन्दनमिश्रित जल सोने के घडों में भर कर स्नान कराने में चतुर लोग अपने समय पर लाये। मंगलदायक भोजन करने, चखने, देखने आदि को शुभ वस्तुएँ, कुमारिकाएँ और जिनमें अधिक हैं ऐसी स्त्रियाँ लाकर इकट्ठी कीं। जो जो चीजें आईं सब सब लक्षणसम्पन्न विधिवत् पूजित एवं लक्ष्मीयुक्त थीं। (५-१०)

जबतक सूर्योदय नहीं हुआ तबतक सब लोग राजा के आने की प्रतीक्षा करते हुए खडे रहे, जब राजा न आये तो शङ्का करने लगे। वहां भीतर जो

ताः स्त्रियस्तु समागम्य भर्तारं प्रत्यबोधयन् १२
अथाप्युचितवृत्तास्ता विनयेन नयेन च ।
नह्यस्य शयनं स्पृष्ट्वा किंचिदप्युपलेभिरे १३
ताः स्त्रियः स्वप्नशीलज्ञाश्चेष्टां संचलनादिषु ।
ता वेपथुपरीताश्च राज्ञः प्राणेषु शङ्किताः १४
प्रतिस्रोतस्तृणाग्राणां सदृशं संचकाशिरे १५
अथ संदेहमानानां स्त्रीणां दृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
यत्तदाशङ्कितं पापं तदा जज्ञे विनिश्चयः १६
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकपराजिते ।
प्रसुप्ते न प्रबुध्येते यथाकालसमन्विते १७
निष्प्रभा सा विवर्णा च सन्ना शोकेन संनता ।
न व्यराजत कौसल्या तारेव तिमिरावृता १८
कौसल्यानन्तरं राज्ञः सुमित्रा तदन्तरम् ।
न स्म विभ्राजते देवी शोकाश्रुलुलितानना । १९
ते च दृष्ट्वा तदा सुप्ते उभे देव्यौ च तं नृपम् ।

स्त्रियां महाराज से कुछ ही अन्तर पर थीं और रात्रि में महाराजकी स्वर्ग यात्रा नहीं जानती थीं वे आकर जगाने लगीं । उन्होंने सब प्रकार विन और नम्रतासे तथा वस्त्रादि हटाकर राजा को जगाने की चेष्टा की, पर सफ मनोरथ न हो सकीं । वे स्त्रियां जब सब चेष्टा कर चुकीं और राजा न ज तो उन को राजा के प्राणों की शंका हुई । राजा की ऐसी दशा देख स स्त्रियां सन्देह से कांपने लगीं । (११-१५)

जो कुछ पाप उनके मन में आया था उस का उन को निश्चय हो गय कौसल्या, सुमित्रा, पुत्रों के शोक से अत्यन्त विह्वल हो रही थीं । अतः ऐसी सोई कि उन्होंने राजा का मरण नहीं जाना, वे तो शोक से प्रभाहीन हो गई थीं । जैसे बादल की चांदनी से छिपे नक्षत्र शोभित नहीं हो वैसे ही राजा के समीप बैठी कौसल्या व सुमित्रा शोभित नहीं होती थीं अन्य स्त्रियां भी शोक से अश्रुपात करती हुई नहीं शोभती थीं, उन स

सुप्तमेवोद्गतप्राणमन्तःपुरमदृश्यत २०
ततः प्रचुक्रुशुर्दीनाः सुस्वरं ता वराङ्गनाः ।
करेणव इवारण्ये स्थानप्रच्युतयूथपाः २१
तासामाक्रन्दशब्देन सहसोद्गतचेतने ।
कौसल्या च सुमित्रा च त्यक्तनिद्रे बभूवतुः २२
कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
हा भर्तेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले २३
सा कोशलेन्द्रदुहिता चेष्टमाना महीतले ।
न भ्राजते रजोध्वस्ता तारेव गगनच्युता २४
नृपे शान्तगुणे जाते कौसल्यां पतितां भुवि ।
अपश्यंस्ताः स्त्रियः सर्वा हतां नागवधूमिव २५
ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियः ।
रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः २६
ताभिः स बलवान्नादः क्रोशन्तीभिरनुद्रुतः ।
येन स्फीतीकृतो भूयस्तद्गृहं समनादयत् २७

स्त्रियोंने उसी स्थान पर सोती कौसल्या और सुमित्रा को व राजा को देखा। यह जान कि ये तीनों मर गये, अतएव शोक से दीन हो सब की सब ऊँचे स्वर से रोने लगीं। (१९–२०)

इन सबका रोना सुन एकाएकी चैतन्यशील हो कौसल्या तथा सुमित्रा भी जाग उठीं और झटपट दोनों राजा को देख तथा उनके अंग टटोल "हा भर्ता" कह पृथिवी में गिर पड़ीं और लोटने लगीं, देह भर में धूल लगने से ऐसी शोभित नहीं होतीं जैसे आकाश से पृथिवी में तारा गिरने पर नहीं शोभता। जब राजा मृतक हो गये और कौसल्या भूमि में गिर पड़ीं, तो सब स्त्रियां मरी हुई नागवधू के समान कौसल्या को देखने लगीं। (२१-२५)

कैकेयी आदि सब रानियां शोकसंतप्त तथा चेतनाहीन हो रोने लगीं, उन सब स्त्रियों के रोने से बड़ा भारी शब्द हुआ, जिस से राज घर गूंज

व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः १३
तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् १४
न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः।
सर्वज्ञाः कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् १५
तैलद्रोण्यां शायितं तं सचिवैस्तु नराधिपम्।
हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ताः पर्यदेवयन् १६
बाहूनुच्छ्रित्य कृपणा नेत्रप्रस्रवणैर्मुखैः।
रुदत्यः शोकसंतप्ताः कृपणं पर्यदेवयन् १७
हा महाराज रामेण संततं प्रियवादिना।
विहीनाः सत्यसंधेन किमर्थं विजहासि नः १८
कैकेय्या दुष्टभावाया राघवेण विवर्जिताः।
कथं सपत्न्या वत्स्यामः समीपे विधवा वयम् १९
स हि नाथः स चास्माकं तव च प्रभुरात्मवान्।
वनं रामो गतः श्रीमान्विहाय नृपतिश्रियम् २०
त्वया तेन च वीरेण विना व्यसनमोहिताः।

एवं विलाप करती कौसल्या को सब दासी आदिकों ने राजा की लाश से अलग किया। तब मंत्रियों ने एक तेल भरे द्रोण में राजा का शरीर रख दिया। उस समय राजा का कोई भी पुत्र वहां न था, बहुदर्शी अमात्यों ने विना पुत्र दाहादिक्रिया न की, अतएव तेल की द्रोण में रखकर राजा के शरीर की रक्षा करते रहे। जब अमात्यों ने राजा के शरीर को तेल में रख दिया तब स्त्रियां फिर रोदन करने लगीं। (१३–१६)

उस दुःखके समय वे नेत्रोंसे आंसुओं की धारा बहाती शोकसे संतप्त हो विलाप करतीं व कहती थीं, कि हा राजन्! राम से रहित हम को क्यों त्यागते हो? हम राम के और आपके विना इस दुष्टा कैकेयीके पास विधवा हो कैसे रहेंगी। जो राम सबके सब कुछ करनेवाले स्वामी थे, वे राज्यश्री को छोड़ वन चले गए। राजन्! आप व राम विना कैकेयी से सन्तापित

कथं वयं निवत्स्यामः कैकेय्या च विदूषिताः २१
यया च राजा रामश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।
सीतया सह संत्यक्ताः सा कमन्यं न हास्यति २२
ता बाष्पेण च संवीताः शोकेन विपुलेन च।
व्यचेष्टन्त निरानन्दा राघवस्य वरस्त्रियः २३
निशा नक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता।
पुरी नाराजतायोध्या हीना राज्ञा महात्मना २४
बाष्पपर्याकुलजना हाहाभूतकुलाङ्गना।
शून्यचत्वरवेश्मान्ता न बभ्राज यथापुरम् २५
गते तु शोकात्त्रिदिवे नराधिपे महीतलस्थासु नृपाङ्गनासु च।
निवृत्तचारः सहसा गतो रविः प्रवृत्तचारा रजनी ह्युपस्थिता २६
ऋते तु पुत्राद्दहनं महीपतेर्नारोचयंस्ते सुहृदः समागताः।
इतीव तस्मिञ्छयने न्यवेशयन्विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् २७
गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विना व्यपेतनक्षत्रगणेव शर्वरी।

कैसे रह सकेंगे ? कैकयी ने राजा, राम, लक्ष्मण और सीता को त्याग दिया, अब वह और किस को न छोडेगी ? वे स्त्रियां बडे शोक से दुःखित आसुओं की धार छोडती हुई निश्चेष्ट हो गईं। दशरथ बिना अयोध्या शोभा नहीं देती थी। जहां देखो आसू बहाते हुए मनुष्य खडे थे, स्त्रियां हाहाकार मचा रही थीं।(१७-२५) पुत्र वियोगजन्य शोकके मारे नरेशके स्वर्ग सिधारनेपर और राजमहिलाओंके भूमिपर ही पडी रहनेपर यकायक अपना घूमना समाप्त कर सूर्य आँखों से ओझल हो गया तथा रात का समय उपस्थित हो अँधेरा फैलने लगा। वहाँपर इकट्ठे हुए मित्रदल को यह ठीक नहीं जँचा कि बिना पुत्र की उपस्थिति के नरेश का दाह संस्कार निभाया जाय, इसलिए उन्होंने अचिन्तनीय ज्ञानशक्तिवाले नरेश को तेलसे भरी हुई कडाहीरूपी शय्यापर सुला दिया। इस भाँति उस महान् नरपाल से बिछुडनेपर वह नगरी ऐसी दिखाई देने लगी मानों नक्षत्ररहित रात्रि या सूर्यरहित आकाश निस्तेज प्रतीत हो, और उस की सडकों पर तथा चौराहोंपर उन लोगोंकी भीड

पुरी बभासे रहिता महात्मना कण्ठास्रकण्ठाकुलमार्गचत्वरा २८
नराश्च नार्यश्च समेत्य संघशो विगर्हमाणा भरतस्य मातरम् ।
तदा नगर्यां नरदेवसंक्षये बभूवुरार्ता न च शर्म लेभिरे २९
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः । [२६३३]

आक्रन्दिता निरानन्दा सास्रकण्ठजनाविला ।
अयोध्यायामवतता सा व्यतीयाय शर्वरी १
व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः ।
समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः २
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः ।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ३
एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन् ।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ४
अतीता शर्वरी दुःखं या नो वर्षशतोपमा ।
अस्मिन्पञ्चत्वमापन्ने पुत्रशोकेन पार्थिवे ५

होने लगी जिन के कंठ आँसुओं की झडी के कारण रुँध से गए थे। उस हालत में नगरी के राजमहल में नरनारियोंके झुंडके झुंड आकर इकट्ठे हो गए और दुःख भरे दिल से कैकेयी को उलहने देते हुए वे लोग सुख के बजाय दुःख के बोझ से दब गये। (२७–२९)

यहाँ सैसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

रोदनयुक्त, निरानन्द अयोध्यामें रात येनकेन प्रकारसे बीती। सूर्य उदय होने पर राजकाज करनेवाले द्विजातिगण राजसभामें आए। मार्कंडेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन व जाबालि ये ब्राह्मण अपने अपने अनुचरों सहित आ राजपुरोहित वशिष्ट के आगे बैठ अपना अभिप्राय प्रकट करने लगे। (१–४)

महाराज तो स्वर्ग में स्थित हुए और श्रीराम वन में जा बसे, लक्ष्मण भी उन्हीं के साथ चले गए और भरत शत्रुघ्न अपनी ननसार में विराज-

स्वर्गस्थश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः।
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह ६
उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने ७
इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम्।
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ८
नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः।
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ९
नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे १०
अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके।
इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके ११
नाराजक जनपदे कारयन्ति सभां नराः।
उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च १२
नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः।
सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः १३
नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः।

मान है। इसलिये इक्ष्वाकुवंशियों में से किसी को आज ही राजा बनाना चाहिये, क्योंकि विना राजा के यह राज्य नष्ट हो जायगा। अराजक देश में गर्जते मेघ भूमि पर जल की वर्षा नहीं करते। अराजक देश में किसान लोग बीज की मुट्ठी बोने के लिये नहीं खोलते, न पुत्र पिता की आज्ञा मानता, न स्त्री पति के वश में रहती। (५-१०)

अराजक देश में द्रव्य नहीं रहता फिर अराजक देश में सत्यादि धर्म कहां से रहेंगे ? अराजक देश में धर्मादि के निर्णय के लिये लोग सभा नहीं करते और न प्रसन्न हो फूलवाडी वाटकादि लगाते। अराजक देश में यज्ञ करनेवाले यज्ञ नहीं करते, न जितेंद्रिय ब्राह्मण यज्ञ कराते हैं। राजरहित देश में ब्राह्मण लोग बडे बडे यज्ञ नहीं करते और शास्त्रविहित दक्षिणा

ब्राह्मणा वसुसंपूर्णा विसृजन्त्याप्तदक्षिणाः १४
नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः १५
नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः।
कथाभिरभिरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः १६
नाराजके जनपदे तूद्यानानि समागताः।
सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः १७
नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः।
शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः १८
नाराजके जनपदे वाहनैः शीघ्रवाहिभिः।
नरा निर्यान्त्यरण्यानि नारीभिः सह कामिनः १९
नाराजके जनपदे बद्धघण्टा विषाणिनः।
अटान्ति राजमार्गेषु कुञ्जराः षष्टिहायनाः २०
नाराजके जनपदे शरान्संततमस्यताम्।
श्रूयते तलनिर्घोष इष्वस्त्राणामुपासने २१
नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः।

भी नहीं देते। राजा से शून्य देश में नट व नृत्य आदि करनेवाले लोग और अनेक विषयों के समाज नहीं होते। (११-१५)

अराजक देश में देश में उद्यमी लोग कई व्यवहार नहीं करते, न ब्राह्मणों को बुला कथा ही सुनते। राजारहित देश में कुमारी कन्यायें खेलने के लिये वाटिका आदि में नहीं जातीं। अराजक देश में धनवान् लोगों की रक्षा नहीं होती, न खेती करनेवाले व पशुपालकगण निर्भय सोने पाते हैं। अराजक देश में घोडे रथ आदि यानों पर सवार हो कामी जन स्त्रियों के साथ विहार करने को वनों में नहीं जाते। राजशून्य देश में साठ साठ वर्ष की उम्र के हाथी सडकों पर नहीं घूमते। (१६-२०)

अराजक देश में बाणविद्या सीखने वाले वीरों का ताल ठोंकना नहीं सुनाई देता। अराजक देश में वणिकजन उद्यम करने के लिये चोरों के भय

गच्छन्ति क्षेममध्वानं वहुपण्यसमाचिताः २२
नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी ।
भावयन्नात्मनात्मानं यत्र सायंगृहो मुनिः २३
नाराजके जनपदे योगक्षेमः प्रवर्तते ।
न चाप्यराजके सेना शत्रून्विषहते युधि २४
नाराजके जनपदे हृष्टैः परमवाजिभिः ।
नराः संयान्ति सहसा रथैश्च प्रतिमण्डिताः २५
नाराजके जनपदे नराः शास्त्रविशारदाः ।
संवदन्ताऽवतिष्ठन्ते वनेषूपवनेषु वा २६
नाराजके जनपदे माल्यमोदकदक्षिणाः ।
देवताभ्यर्चनार्थाय कल्प्यन्ते नियतैर्जनैः २७
नाराजके जनपदे चन्दनागुरुरूषिताः ।
राजपुत्रा विराजन्ते वसन्ते इव शाखिनः २८
यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम् ।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् । २९
ध्वजो रथस्य प्रज्ञानं धूमो ज्ञानं विभावसोः ।

से दूर दूर तक नहीं जा सकते । अराजक देश में मुनिगण परमेश्वर का भजन करते दिन भर घूम सायं किसी के द्वार पर नहीं टिकते । अराजक देश में किसी का योगक्षेम नहीं रहता । और सेना शत्रु को नहीं सहन कर सकती। अराजक जनपद में घोड़ों और रथों पर सवार होकर लोग नहीं चलते । (२१-२५)

अराजक जनपद में जन परस्पर संवाद करते उपवनादिकों में भयरहित हो नहीं बसते । अराजक जनपद में देवताओं के पूजनार्थ दक्षिणा आदि कोई एकत्र नहीं करते । अराजक देश में सुगंधित वस्तु लगा राजकुमारगण विराजमान नहीं होते । जैसे विना जल की नदी और विना गोपाल की गाय होती है ऐसे ही विना राजा का जनपद होता है । रथ का ज्ञान ध्वजा से होता है, हमारे ध्वजरूप राजा थे सो स्वर्गवासी हो गये । (२६-३०)

तेषां यो नो ध्वजो राजा स देवत्वमितो गतः　३०
नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्　३१
ये हि संभिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशयाः ।
तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिताः　३२
यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते ।
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः　३३
राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्　३४
यमो वैश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः ।
विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता ततः　३५
अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन ।
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी　३६
जीवत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम् ।
नातिक्रमामहे सर्वे वेलां प्राप्येव सागरः　३७
स नः समीक्ष्य द्विजवर्य वृत्तं नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम् ।

अराजक देश में कोई किसी का नहीं होता, लोग एक दूसरे को मार खा जाते हैं। नास्तिक लोग भी विना राजदण्ड के भयरहित हो अपने मन माने मार्ग फैला देते है । दृष्टि जैसे शरीर के लिये तैसे ही राजा राज्य के धर्म के सत्य प्रकट कराने में समर्थ होता है । मनुष्यों का सत्य व धर्म राजा ही तथा सब का माता पिता राजा ही है, सब का हित करनेवाला भी राजा ही हैं, अतः राजा सर्वश्रेष्ट होता है। जो लोक में साधु-असाधुकर्मों की राजा शिक्षा न करे तो प्रजाओं में अज्ञान छा जाये । यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण इन से भी आचरण से बडा रहता है । हम लोग महाराज के जीते हुए भी आपके वचन अतिक्रमण नहीं करते थे जैसे समुद्र तट को छोड आगे नहीं बढता। हे द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ मुने ! आप हमारा वचन सुनिये तथा आज ही इक्ष्वाकु-कुल का राजपुत्र या अन्य किसी को अभिषेक कीजिये ।

कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं त्वमेव राजानमिहाभिषेचय ३८
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः॥६७॥

अष्टषष्टितम सर्गः।   [२६७१]

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
मित्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदं वचः   १
यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी ।
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः   २
तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः ।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम्   ३
गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन् ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्   ४
एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन ।
श्रूयतामिति कर्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः   ५
पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः ।
त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम   ६
पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया   ७

क्योंकि राजाके बिना यह राज्य अरण्यवास हुआ है। (३१-३८)
यहाँ सँसठवां सर्ग समाप्त हुआ।

उन लोगों के ऐसे वचन सुन वसिष्ठ बोले कि, जो भरत व शत्रुघ्न सुखपूर्वक अपने मामाके यहां वसते हैं। उन दोनों भाइयों के लाने के लिये शीघ्रगामी अश्वों पर चढ दूत जाएं। सब मुनियोंने कहा बहुत अच्छा। दूत जायँ, यह सुन वसिष्ठ बोले कि, हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त, व अशोकनन्दन ! तुम सुनो ! वेगवान घोडों पर सवार हो केकय देशके राजाके यहां जाओ, वहां पहुंच कर सब तरह के शोक को छोड भरत से कहना, कि तुम्हारे कुलपुरोहित वसिष्ठ तथा सब अमात्यों ने आप की कुशल पूछी और बुलाया है कि शीघ्र चलो। तुम राम का वनवास और राजा का मरण उन

मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम्।
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम् ८
कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च।
क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत ९
दत्तपथ्यशना दूता जग्मुः स्वं स्वं निवेशनम्।
केकयांस्ते गमिष्यन्तो हयानारुह्य संमतान् १०
ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम्।
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः संत्वरितं ययुः ११
न्यन्ते नापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति।
निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम् १२
ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः।
पाञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम् १३
सरांसि च सुफुल्लानि नदीश्च विमलोदकाः।
निरीक्षमाणा जग्मुस्ते दूताः कार्यवशाद् द्रुतम् १४
ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नानाविहगसेविताम्।
उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जलाकुलाम् १५
निकूलवृक्षमासाद्य दिव्यं सत्योपयाचनम्।

मे न कहना। अच्छे अच्छे भूषण वस्त्र भरत के लिये लेते जाना, अब देर न करो जल्दी जाओ। (१-९)

इतना कह रास्ते के लिये भोजन पा वे सब दूत अपने अपने घरको गये, वहां से घोड़ों पर चढ केकय देश को चल दिये। मार्ग के लिये यथायोग्य सामान लेकर वशिष्ठ की आज्ञानुसार दूत लोग जल्दीसे चले अपरताल देशके दक्षिण और प्रलम्ब देश के उत्तर अर्थात् इन्हीं देशों की मध्यवर्ती मालिनी नदी के किनारे वे दूत पश्चिम दिशा को चले। हस्तिनापुर के पास गङ्गा को पारकर पांचाल देश तथा कुरुजांगल देश के बीच में पहुंचे। मार्ग में तालाब व नदियां देखीं, पर दूतों को शीघ्र जाने का प्रयोजन था, अतः चले ही चले गये। वे शरदण्ड नामक नदी के किनारे पहुंचे। (१०-१५)

अभिगम्याभिवाद्य तं कुलिङ्गां प्राविशन्पुरीम् १६
अभिकालं ततः प्राप्य तेजोऽभिभवनाच्च्युताः ।
पितृपैतामहीं पुण्यां तेरुरिक्षुमतीं नदीम् १७
अवेक्ष्याञ्जलिपानांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
ययुर्मध्येन बाल्हीकान्सुदामानं च पर्वतम् १८
विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्
नदीर्वापीतटाकानि पल्वलानि सरांसि च १९
पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान् ।
ययुः पथातिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः २०
ते श्रान्तवाहना दूता विकृष्टेन सता पथा ।
गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा २१
भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थं भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम् ।
अहेडमानास्त्वरया स्म दूता रात्र्यां तु ते तत्पुरमेव याताः २२
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः । [२६९३]

यामेव रात्रिं ते दूता प्रविशन्ति स्म तां पुरीम् ।

उस नदी के तीर पर एक पेड था, जिस से वर मिलता था, उस के नीचे जा प्रणाम किया, तथा फिर आगे बडे, आगे बढने पर कुलिंग नगरी मिली, और आगे बढ तेजाभिभवन नामक ग्राम मिला, यहां से बढ अभिकाल नाम नगर में पहुचे, तदनन्तर इक्षुमती नदी उतरे। उस के पीछे बाल्हीक देश में पहुंचे, बीच में सुदामानाम पर्वत मिला। उस के पीछे विपाशा नदी मिली, फिर शाल्मली नदी और बहुत सी नदी, वापी आदि देखते चले गए। चलते चलते उन के अश्व थक गए, सो गिरिव्रज नगर में जा कुछ देर आराम किया फिर जल्दी चल दिये। अपने स्वामी के प्रिय के लिये तथा रघुकुल की रक्षा के लिये अनादररहित सब दूत रात को नगर में पहुंचे। (१६-२२)

यहां वां सर्ग समाप्त हुआ।

भरतेनापि तां रात्रिं स्वप्नो दृष्टोऽयमप्रियः १
व्युष्टामेव तु तां रात्रिं दृष्ट्वा तं स्वप्नमप्रियम्।
पुत्रो राजाधिराजस्य सुभृशं पर्यतप्यत २
तप्यमानं तमाज्ञाय वयस्याः प्रियवादिनः।
आयासं विनयिष्यन्तः सभायां चक्रिरे कथाः ३
वादयन्ति तदा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे स्माहुर्हास्यानि विविधानि च ४
स तैर्महात्मा भरतः सखिभिः प्रियवादिभिः।
गोष्ठीहास्यानि कुर्वद्भिर्न प्राहृष्यत राघवः ५
तमब्रवीत्प्रियसखो भरतं सखिभिर्वृतम्।
सुहृद्भिः पर्युपासीनः किं सखे नानुमोदसे ६
एवं ब्रुवाणं सुहृदं भरतः प्रत्युवाच ह।
शृणु त्वं यन्निमित्तं मे दैन्यमेतदुपागतम् ७
स्वप्ने पितरमद्राक्षं मलिनं मुक्तमूर्धजम्।
पतन्तमद्रिशिखरात्कलुषे गोमये ह्रदे ८
प्लवमानश्च मे दृष्टः स तस्मिन्गोमये ह्रदे।

जिस रात को वे दूत उस नगरी में पहुंचे उसी रात को भरत ने बड़ा भयावह स्वप्न देखा। जब प्रातः हुआ तो भरत ने बड़ा परिताप किया। उन को दुःखित देख, उन के मित्रगण प्रिय वचन कह खेद मिटाने को रोचक कथायें कहने लगे। कोई विषाद मिटाने के लिये बाजा बजाने लगे, कोई शांति पढ़ने लगे, कोई नाचने लगे, कोई हास्य करने लगे। भरत का बोध सब मित्रोंने अपनी अपनी युक्ति से किया और उससे सारी सभा हंसी, पर भरत प्रसन्न न हुए। (१–५)

उन में भरत का एक अति प्रिय मित्र था, वह भरतसे बोला, हे सखे! हम लोगों ने बड़ी चेष्टा की पर आप प्रसन्न क्यों नहीं होते? भरत उस से बोले कि, हे मित्र! जिस कारण मुझ को यह विषाद हुआ उसे सुनो। आज रात को स्वप्न में मलिन वस्त्र धार, बाल खुले पिता को मैले गोबर के कुण्ड

पिबन्नञ्जलिना तैलं हसन्निव मुहुर्मुहुः ९
ततस्तिलोदनं भुक्त्वा पुनः पुनरधः शिराः ।
तैलेनाभ्यक्तसर्वाङ्गस्तैलमेवान्वगाहत १०
स्वप्नेऽपि सागरं शुष्कं चन्द्रं च पतितं भुवि ।
उपरुद्धां च जगतीं तमसेव समावृताम् ११
औपवाह्यस्य नागस्य विषाणं शकलीकृतम् ।
सहसा चापि संशान्ता ज्वलिता जातवेदसः १२
अवदीर्णां च पृथिवीं शुष्कांश्च विविधान्द्रुमान् ।
अहं पश्यामि विध्वस्तान्सधूमांश्चैव पर्वतान् १३
पीठे कार्ष्णायसे चैव निषण्णं कृष्णवाससम् ।
प्रहरन्ति स्म राजानं प्रमदाः कृष्णपिङ्गलाः १४
त्वरमाणश्च धर्मात्मा रक्तमाल्यानुलेपनः ।
रथेन खरयुक्तेन प्रयातो दक्षिणामुखः १५
प्रहसन्तीव राजानं प्रमदा रक्तवासिनी ।
प्रकर्षन्ती मया दृष्टा राक्षसी विकृतानना १६
एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम् ।
अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति १७

में गिरते देखा । उसी गोबर के कुण्ड में तैरते व तेल पीते, तिलयुक्त भात भोजन करते मैंने सर्वांग में तैल लगाये तेल ही में डुबकी मारते पिता को देखा । मैंने स्वप्न में देखा कि सागर सूख गया है, चन्द्र पृथिवी में गिर पडा है, संसार अन्धकार से छा गया है । (९–११)

सवारी वाले हाथी के दांत टूट गये हैं, प्रज्वलित अग्नि शान्त हो गया है, नाना प्रकार के पेड सूख गये हैं, पर्वत टूट फूट गये हैं, लोहे की चौकी पर बैठे कृष्णवस्त्रधारी मेरे पिता को काले पीले वस्त्र पहनी हुई स्त्रियां मार रही हैं । और पिता लाल वस्त्र धारे गदहों के रथपर चढे दक्षिणदिशा को चले जा रहे हैं । एक राक्षसी विकरालमुख किये राजाको खींचे लिये जाती है । इस तरह यह भयावह स्वप्न मैंने देखा । इस का परिणाम यह होगा

नरो यानेन यः स्वप्ने खरयुक्तेन याति हि ।
अचिरात्तस्य धूमाग्रं चितायां संप्रदृश्यते १८
एतन्निमित्तं दीनोऽहं न वचः प्रतिपूजये ।
शुष्यतीव च मे कण्ठो न स्वस्थमिव मे मनः १९
न पश्यामि भयस्थानं भयं चैवोपधारये ।
भ्रष्टश्च स्वरयोगो मे छाया चापगता मम ।
जुगुप्स इव चात्मानं न च पश्यामि कारणम् २०
इमां च दुःस्वप्नगतिं निशम्य हि त्वनेकरूपामवितर्कितां पुरा ।
भयं महत्तद्धृदयान्न याति मे विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् २१

इत्यार्षे श्री॰वा॰आदिकाव्येऽयोध्याकाण्ड एकोनसप्ततितमः सर्गः॥६९॥ [२७१४]

सप्ततितमः सर्गः ।

भरते ब्रुवति स्वप्नं दूतास्ते क्लान्तवाहनाः ।
प्रविश्यासह्यपरिखं रम्यं राजगृहं पुरम् १
समागम्य च राज्ञा ते राजपुत्रेण चार्चिताः ।
राज्ञः पादौ गृहित्वा च तमूचुर्भरतं वचः २

कि मैं, नरेश, राम लक्ष्मण में से कोई मृत्यु को प्राप्त होगा । (१२-१७)

जो मनुष्य स्वप्नमें गदहे जुते रथपर चढकर देखा यात्री बना जाता है, बहुत शीघ्र वह पञ्चत्व को प्राप्त होता है । इसी से मैं दुःखी हूं, मेरा गला सूखा जाता है और मेरा मन स्थिर नहीं है । मैं भय का कारण नहीं देखता, पर भय पाता हूं, जिस से मेरा स्वर भी कुछ विचलित हो गया है । केवल अपनी निन्दा ही करता हूं पर भय की निवृत्ति नहीं देखता । स्वप्न की ऐसी रीति सुनी तो है, किन्तु कभी उस पर विचार नहीं किया । इस दुःस्वप्न से हृदय में महाराज के विषय में बड़ा भय उत्पन्न हुआ है । (१८-२१)

यहाँ उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत स्वप्न की बात कह ही रहे थे कि थोड़ों पर सवार दूत राजगृह नामक उस पुरमें आ पहुंचे । उन्होंने राजासे मिल राजपुत्रद्वारा सत्कारित हो भरत से कहा– प्रतिष्ठ तथा अमात्यगणने कुशल पूछी है.

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ३
इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च।
प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय ४
अत्र विंशतिकोट्यस्तु नृपतेर्मातुलस्य ते।
दशकोट्यस्तु संपूर्णास्तथैव च नृपात्मज ५
प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
दूतानुवाच भरतः कामैः संप्रतिपूज्य तान् ६
कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम।
कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि ७
आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी।
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः ८
कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या।
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा ९
आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी।
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह [१] १०

आपको शीघ्र बुलाया है। जो देर करोगे तो कार्य भ्रष्ट हो जायगा। हे विशालनयन! ये बहुमूल्य वस्त्रभूषण लेकर अपने मामा को दो। इन में बीस करोड तुम्हारे नाना के लिये हैं और दश करोड तुम्हारे मामा के लिए हैं। सब वस्त्रभूषणादि सुहृदों को दे दूतों को सत्कारित कर भरत उन से बोले। (१-६)

पिता दशरथ कुशलपूर्वक हैं? राम लक्ष्मण आरोग्य हैं। धर्मवादिनी

१ दूत यानी सेवा करनेवाले सेवक या नौकर ही तो हैं। अतः यह संभव ही नहीं कि भरत जैसा एक राजकुमार अपनी जन्मदात्री माता के बारे में इस ढंग से पूछताछ करने लगे। यह अच्छा नहीं प्रतीत होता है। मूलग्रंथ में शायद श्लोक का उत्तरार्ध ही मिलता हो, लेकिन किसी ने अपनी ओर से पूर्वार्ध स्वरूप श्लोक की पूर्तता की होगी।

एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना ।
ऊचुः संप्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा ११
कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि ।
श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः १२
भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत ।
आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः संत्वरयन्ति माम् १३
एवमुक्त्वा तु तान्दूतान्भरतः पार्थिवात्मजः ।
दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह १४
राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः ।
पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि १५
भरतेनैव मुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा ।
तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम् १६
गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया ।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप १७
पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः ।

श्रीराम की माता कौसल्या आरोग्य है ? लक्ष्मण व वीर शत्रुघ्न की माता सुमित्रा आरोग्य है ? आत्मकामा, सदाचण्डी तथा अपने को पण्डित माननेवाली मेरी माता कैकेयी तो निरोग है ? उन्होंने कुछ कहा है ? (७-१०)

महात्मा भरत के ऐसा कहने पर वे दूत बडी नम्रता के साथ बोले कि हे नरश्रेष्ठ ! जिनकी कुशल तुम चाहते हो, वे सब कुशल से हैं । आप शीघ्र रथ तयार कराइये और चलिये । भरत ने दूतों से कहा कि अपने नाना से पूछ लूं कि दूत चलने के लिये जल्दी कराते हैं । दूतों से ऐसा कहकर भरत अपने नाना से बोले । (११-१४)

राजन् ! दूतों की प्रेरणासे मैं अब पिताके समीप जाऊंगा। जब फिर याद करोगे तो आजाऊंगा । भरत के ऐसा कहने पर उन के नाना उनका शिर सूंघ बोले- तात ! जाओ तुम को प्राप्त कर कैकेयी सुपुत्रवती है । अपने माता पिता से यहां की कुशल कह देना। अपने पुरोहित तथा अन्य द्विजोत्तमों

तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ १८
तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलानजिनानि च ।
सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् १९
अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्यबलोपमान् ।
दंष्ट्रायुक्तान्महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ २०
रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च ।
सत्कृत्य कैकयीपुत्रं केकयो धनमादिशत् २१
तदामात्यानभिप्रेतान्विश्वास्यांश्च गुणान्वितान् ।
ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः २२
ऐरावतानैन्द्रशिरान्नागान्वै प्रियदर्शनान् ।
खराञ्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽस्मै धनं ददौ २३
स दत्तं केकयेन्द्रेण धनं तन्नाभ्यनन्दत ।
भरतः कैकयीपुत्रो गमनत्वरया तदा २४
बभूव ह्यस्य हृदये चिन्ता सुमहती तदा ।
त्वरया चापि दूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात् २५
स स्ववेश्माभ्यतिक्रम्य नरनागाश्वसंकुलम् ।

से और अपने भाई राम लक्ष्मण से भी कुशल कहना। राजा ने भरत को एक उत्तम हाथी और उत्तम चित्र, बहुमूल्य शाल दुशाले, नाना मृगचर्म और बहुतसा धन दे विदा किया। जो कुत्ते बहुत दिनों से रनवास में बंधे रहते थे और जिन का बल बाघों के समान था, राजा ने चलते वक्त उन्हें दिये। (१५-२०)

और दो सहस्र सुवर्ण के निष्क, एक सौ सोलह उत्तम घोडे दिये। साथ के लिये बहुत से विश्वासी मन्त्री आदि करदिये। इरावान् पहाड के ऐरावत हाथी और इन्द्रशिर देश के हाथी दिये। पर भरत ने चलने की जल्दी में इन दी हुई वस्तुओं में से कोई पसन्द न की। दूतों की जल्दी और स्वप्न के कारण भरत को बडी चिन्ता हो रही थी। (२१-२५)

भरत के साथ जानेवाले मनुष्य घोडे इत्यादि सब सडक पर खडे किये

वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः ११
तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ ।
उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः १२
स तांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः ।
अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ १३
वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम् ।
अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरङ्गमैः १४
हस्तिपृष्ठकमासाद्य कुटिकामप्यवर्तत १५
ततार च नरव्याघ्रो लौहित्ये च कपीवतीम् ।
एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीं नदीम् १६
कलिङ्गनगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा ।
भरतः क्षिप्रमागच्छत्सुपरिश्रान्तवाहनः १७
वनं च समतीत्याशु शर्वर्यामरुणोदये ।
अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह १८
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि ।
अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत् १९

ग्राम में प्रवेश किया । वहां से पूर्व की ओर चले । वहां भरत ने सेना को विश्राम लेने की आज्ञा दे और उसे वहीं छोड स्वयं चल दिये । आगे सर्वतीर्थ ग्राम में एक रात्रि बसे, वहां से बढ उत्तानिका नदी तथा अन्य भी नदियां मिलीं, उन सब को पहाडी घोडों पर सवार हो उतर कुछ दूर चल हस्तिपृष्ठक ग्राम मिला, आगे बढ कुटिका नदी मिली । फिर लौहित्य ग्राम के पास कपीवती नदी उतरे (११-१६)

फिर स्थाणुमती नदी मिली, आगे बढ विनतग्राम के पास गोमती को पार किया। वहां से आगे बढने पर घोडे हाथी आदि जो साथ रह गये थे, थक गये, रास्ते के सालवन को पार कर रात बीतते ही अयोध्या भरत ने देखी । केकय देशसे चल बीच में सात रात बसने पर अयोध्याको देखते ही सारथि से बोले। (१६-१८)

हे सारथे ! यह अयोध्यापुरी जिस में फुलवाडी आदि विराजमान थीं,

एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी ।
अयोध्या दृश्यते दूरात्सारथे पाण्डुमृत्तिका　२०
यज्विभिर्गुणसंपन्नैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
भूयिष्ठमृद्धैराकीर्णा राजर्षिवरपालिता　२१
अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान् ।
समंतान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम्　२२
उद्यानानि हि सायाह्ने क्रीडित्वोपरतैर्नरैः ।
समंताद्विप्रधावद्भिः प्रकाशन्ते ममान्यथा　२३
नान्यद्यानुरुदन्तीव परित्यक्तानि कामिभिः ।
अरण्यभूतेव पुरी सारथे प्रतिभाति माम्　२४
नह्यत्र यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः ।
निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा　२५
उद्यानानि पुरा भान्ति मत्तप्रमुदितानि च ।
जनानां रतिसंयोगेष्वत्यन्तगुणवन्ति च　२६
नान्येतान्यद्य पश्यामि निरानन्दानि सर्वशः ।
स्रस्तपर्णैरनुपथं विक्रोशद्भिरिव द्रुमैः　२७

यह उत्साहहीन होनेके कारण पीली पीली लगती है और इसमें बडे पूर्वकाल में बडे बडे ब्राह्मण यज्ञ किया करते थे । और राजर्षिगण नाना प्रकार से इसका पालन किया करते थे, जहां देखो, धनधान्ययुक्त लोग आया जाया करते थे, जिस से अयोध्या में कोलाहल सुनाई दिया करता था, वह नहीं सुन पडता। इसके उद्यानोंमें संध्या समय जो मनुष्य क्रीडा करते आते थे, सो आज उन वाटिकाओं में कोई दीख ही नहीं पडता, वे उद्यान मानो रो रहे हैं । सो मुझे नगरी वनके तुल्य दिखाई देती है, क्योंकि जैसे पूर्व इस पुरी में रथ पालकी, आदि पर सवार हो लोग घूमने को निकलते थे, वे कोई नहीं दिखाई पडते । जनों के संयोग से इस के उद्यानादि अति हर्षित ज्ञात होते थे, अब नहीं होते । (१९-२६)

वे पुष्पवाटिकाएं आज आनन्दरहित देख पडती हैं । मार्गोंमें जगह जगह

नाद्यापि श्रूयते शब्दो मत्तानां मृगपक्षिणाम्।
सरक्तां मधुरां वाणीं कलं व्याहरतां बहु २८
चन्दनागुरुसंपृक्तधूपसंमूर्च्छितोऽमलः।
प्रवाति पवनः श्रीमान्कि नु नाद्य यथा पुरा २९
भेरीमृदङ्गवीणानां कोणसंघट्टितः पुनः।
किमद्य शब्दो विरतः सदादीनगतिः पुरा ३०
अनिष्टानि च पापानि पश्यामि विविधानि च।
निमित्तान्यमनोज्ञानि तेन सीदति मे मनः ३१
सर्वथा कुशलं सूत दुर्लभं मम बन्धुषु।
तथा ह्यसति संमोहे हृदयं सीदतीव मे ३२
विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः।
भरतः प्रविवेशाशु पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ३३
द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः।
द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्टस्तैः सहितो ययौ ३४
स त्वनेकाग्रहृदयो द्वारस्थं प्रत्यर्च्य तं जनम्।
सूतमश्वपतेः क्लान्तमब्रवीत्तत्र राघवः ३५

पत्ते पडे हैं। समीप पहुंचने पर मत्त मृग पक्षियों के शब्द अब नहीं सुनाई देते। और चन्दनसे मिला अन्य सुगन्ध से धूपित शोभायमान वायु भी पहलेकासा नहीं बहता। बाजे और उनकी ध्वनि दूर ही से सुनाई दिया करती थी, वह अब क्यों बन्द हो गई? सब प्रकार अनिष्टकारक निमित्त दिखाई देते हैं इसी से मेरा हृदय कांपता है। (२६-३१)

हे सूत! जान पडता है कि मेरे प्यारे भाई बंधुओं में कुछ अमंगल ही है। इस से मेरा मन कांपता है। एवं उदासीन मन व्याकुलशरीर और क्षुब्धेन्द्रिय भरत ने अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। वैजयन्त फाटक पर पहुंच थके हुए वाहनों पर चढे द्वारपालगण उन्हें देख उठ खडे हुए और उन्हीं के संग चले। पर भरत ने चित्त अस्वस्थ होने से उन द्वारपालों से कुशल पूछ लौट जाने की आज्ञा दी और सारथि से बोले कि मैं जो बहुत शीघ्र बुलाया गया हूं, इस का कुछ कारण अवश्य है। क्योंकि दिल बारबार

किमहं त्वरयानीतः कारणेन विनानघ ।
अशुभाशङ्कि हृदयं शीलं च पततीव मे ३६
श्रुता नु यादृशाः पूर्वं नृपतीनां विनाशने ।
आकारांस्तानहं सर्वानिह पश्यामि सारथे ३७
संमार्जनविहीनानि परुषाण्युपलक्षये ।
असंयतकवाटानि श्रीविहीनानि सर्वशः ३८
बलिकर्मविहीनानि धूपसंमोदनेन च ।
अनाशितकुटुम्बानि प्रभाहीनजनानि च ३९
अलक्ष्मीकानि पश्यामि कुटुम्बिभवनान्यहम् ।
अपेतमाल्यशोभानि असंमृष्टाजिराणि च ४०
देवागाराणि शून्यानि न भान्तीह यथा पुरा ।
देवतार्चाः प्रविद्धाश्च यज्ञगोष्ठ्यस्तथैव च ४१
माल्यापणेषु राजन्ते नाद्य पण्यानि वा तथा ।
दृश्यन्ते वणिजोऽप्यद्य न यथापूर्वमत्र वै ४२
ध्यानसंविग्नहृदया नष्टव्यापारयन्त्रिताः ।
देवायतनचैत्येषु दीनाः पक्षिमृगास्तथा ४३
मलिनं चाश्रुपूर्णाक्षं दीनं ध्यानपरं कृशम् ।
सस्त्रीपुंसं च पश्यामि जनमुत्कण्ठितं पुरे ४४

कांपता है । हे सूत ! राजाओं के मरने पर जो आकार पुरग्रमादि के होते हैं, वे सब आकार मैं देखता हूं । (३२–३७)

सब फाटक बिना झाड़े पड़े हैं, किवाड़ ठीक नहीं है, सब कुछ अस्त-व्यस्त है । मन्दिरों के द्वार पर पूजा की सामग्री दिखाई नहीं देती, धूपदीप का नाम ही नहीं, सब जन प्रभाहीन हो गये हैं । सब भवन श्रीरहित हो गये हैं, माला आदि किसीके दरवाजे नहीं दीख पड़ती, किसीके भी दरवाजे नहीं बुहारे गये हैं । देवमन्दिर मानो सब शून्य हो गये हैं, यज्ञशालाओं की भी यही दशा है । वणिक्गण जैसे उत्साहसे अपनी दुकाने खोलते थे, वैसी आज नहीं खोली है । वे जहां के तहां संकोच किये बैठे हैं । देवालयादि में

इत्येवमुक्त्वा भरतः सूतं तं दीनमानसः।
तान्यनिष्टान्ययोध्यायां प्रेक्ष्य राजगृहं ययौ ४५
तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्यां रजोरुणद्वारकवाटयन्त्राम्।
दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरीप्रकाशां दुःखेन संपूर्णतरो बभूव ४६
बभूव पश्यन्मनसोऽप्रियाणि यान्यन्यदा नास्य पुरे बभूवुः।
अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म ४७

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥ [२७९१]

द्विसप्ततितमः सर्गः।

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये।
जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये १
अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी प्रोषितं सुतम्।
उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम् २
स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्।
भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ३

भी पक्षी नहीं बोलते। जहां देखो स्त्री पुरुष सब के सब मलिन वस्त्र धारे अति दीनमन दुर्बल जान पडते है। (३८-४४)

एवं अशुभ अयोध्या में देखते सूत से कहते उदासीन हो भरतने राजमन्दिर में प्रवेश किया। जो अयोध्यानगरी पहले इन्द्र की अमरावती के तुल्य थी, वही आज सूने घर, चोराह एवं सडकों से भरी दीख पडती थी, और अन्दर के दरवाजे भी मैल जमने के कारण धुंधले से दिखाई देते थे, यह देखकर भरत के दिल में दु:ख उमड पडा। पहले कभी न देखे हुए अप्रिय ढग जब उस नगरी में उस की आँखों के आगे होने लगे, तो भरतने अपना सिर झुका लिया और मन में बडा दु:खी होकर वह महात्मा अपने पिताके घर में भारी अप्रसन्नता के साथ प्रविष्ट हुआ। (४५-४७)

यहाँ बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

वहां जाकर भरत अपने पिता को न देख माता को देखने के लिये माता के मन्दिर में पहुंचे। आए हुए अपने पुत्र भरत को देख कैकयी आसन को छोड उठ खडी हुई। भरत ने भी अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया।

तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम् ।
अङ्के भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ४
अद्य ते कतिचिद्रात्र्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ।
अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव ५
आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव ।
प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि ६
एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः ।
आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः । ७
अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ।
अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे ८
यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परन्तपः ।
परिश्रान्तं पथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः ९
राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः ।
यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बा वक्तुमर्हति १०
शून्योऽयं शयनीयस्ते पर्यङ्को हेमभूषितः ।
न चायमिक्ष्वाकुजनः प्रहृष्टः प्रतिभाति मे ११

कैकेयी भी भरत को छाती से लगा गोद में ले स्वपिता और भाई आदि के वृत्तान्त पूछने लगीं कि तुम को नाना के मन्दिर से चले कितनी रातें हुई ? शीघ्रता के कारण मार्ग में बड़ा परिश्रम पड़ा होगा । तुम्हारे नाना और मामा कुशलपूर्वक तो हैं ? हे पुत्र! उन लोगों और अपने सुख का वृत्तान्त कहो । (१-६)

माता के पूछने पर भरत कहने लगे कि आज आप के पिता के गृह से चले सातवीं रात है। मेरे नाना और मामा कुशल से हैं । राजा ने जो कुछ मुझे दिया था, उस सब को थक जाने के कारण मार्ग में छोड़ आया हूं । मुझे बड़ी जल्दी थी, क्योंकि महाराज का सन्देश ले जो दूत यहां से गये थे, वे बड़ी जल्दी करते थे। उस का क्या कारण था, सो बताइये। (७-१०)

आपका सुवर्णभूषित पर्यङ्क शून्य क्यों है ? इक्ष्वाकुवंशियों में कोई

धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतः स्वयम् २९
न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान् ।
उपजिघ्रेत्तु मां मूर्ध्नि तातः सन्नाम्य सत्वरम् ३०
क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः ।
यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ३१
यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ३२
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ३३
धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः ।
आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ३४
पश्चिमं साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः ।
इति पृष्टा यथा तत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ३५
रामेति राजा विलपन्हा सीते लक्ष्मणेति च ।
स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः ३६
इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव ।
कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः ३७
सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया ।

पिता को ऐसी कौन व्याधि हुई जिस से झटपट विना मेरे आये ही वे इस लोक को छोड चले गये ? अब महाराज नहीं जानते कि मैं नाना के यहां से आया हूं, नहीं तो मेरा शिर सूंघते । (२६-३०)

अब छूते ही सुख देनेवाला पिता का वह हाथ कहां है ? जो मेरे भ्राता पिता बन्धु राम हैं, वे कहां हैं, शीघ्र मेरा आना उनसे कहो । ज्येष्ठ भ्राता पिता ही के समान होता है, इस से उनके ही चरणों को ग्रहण करूं। महाराजाधिराज चलनेके समय रामसे क्या कह गये थे ? पिताजी चलनेके समय कुछ मुझे भी आज्ञा दे गये हों तो उनका सन्देश सुनाओ। (३१-३५)

भरत के इस भांति पूछने पर कैकेयी बोली कि राम सीता व लक्ष्मणके लिये विलाप करते हुए महाराज परलोक को चले गये। काल धर्म के वश

लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ३८
तच्छ्रुत्वा विषसादैवं द्वितीयाप्रियशंसनात् ।
विषण्णवदनो भूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम् ३९
क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः ४०
तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ।
मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंसया ४१
स हि राजसुतः पुत्रचीरवासा महावनम् ।
दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ४२
तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया
स्वयं वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे ४३
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित् ।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ४४
कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते ।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः ४५
अथास्य चपला माता तत्स्वकर्म यथातथम् ।

मरते समय तुम्हारे पिता ने यही कहा। और यह भी कहा कि लक्ष्मण, सीता व राम को पुनः लौटा हुआ देखनेवाले जन सिद्धार्थ हो जायंगे। यह दूसरा अप्रिय वचन सुन भरत ने फिर माता से पूछा। कि कौसल्या को सुख देनेवाले राम, सीता व लक्ष्मण इस समय कहां हैं ? (३५-४०)

ऐसा पूछने पर कैकेयी सब अप्रिय कथा के तुल्य सुनाने लगी। हे पुत्र ! राम, लक्ष्मण व सीता के साथ चीर वल्कल पहनकर वन को चले गये। यह सुन भरत अति भयभीत हुए, पर धैर्य से पूछने लगे कि न तो रामने किसी ब्राह्मण का धन ही हरा, न किसी का निष्पाप वध किया, न किसी पराई स्त्री को राम ने गमन किया ? फिर किस कारण राम को दण्डकारण्य का वास दिया गया ? (४१-४५)

तेनैव स्त्रीस्वभावेन व्याहर्तुमुपचक्रमे ४६
एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना।
उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी ४७
न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित्।
कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः।
न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ४८
मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम्।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम् ४९
स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत्।
रामस्तु सहसौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया ५०
तमपश्यन्प्रियं पुत्रं महीपालो महायशाः।
पुत्रशोकपरिद्यूनः पञ्चत्वमुपपेदिवान् ५१
त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्।
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम् ५२
मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक।
त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम् ५३
तत्पुत्र शीघ्रं विधिना विधिज्ञैर्वसिष्ठमुख्यैः सहितो द्विजेन्द्रैः।
संकाल्य राजानमदीनसत्त्वमात्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व ५४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः॥ ७२॥

भरत की यह बात सुन कैकेयी ने जो कुछ किया था, वह वर्णन करने लगी। और पण्डितमानिनी कैकेयी प्रसन्न हो बोली कि रामने न तो किसी का धन ही लिया, न किसी का वध किया। राम पराई स्त्री को तो नेत्रों से भी नहीं देखते। हे पुत्र! मैंने राम का अभिषेक सुन तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिये राज्य व राम के लिये वनवास मांगा। (४६-४९)

लक्ष्मण सीता व राम को राजा ने वन को भेज दिया। पर पुत्रशोक से उन्होंने शरीर छोड दिया। अब तुम राज्य को स्वीकार करो। तुम्हारे ही वास्ते ऐसा किया गया, अब तुम सन्ताप को छोड धैर्य धरो। तुम्हारे ही

श्रुत्वा च स पितुर्वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ।
भरतो दुःखसंतप्त इदं वचनमब्रवीत् १
किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च २
दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ३
कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।
अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ४
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।
सुखं परिहृतं मोहात्कुलेऽस्मिन्कुलपांसनि ५
त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महायशाः।
तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः ६
विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सलः।
कस्मात्प्रव्राजितो रामः कस्मादेव वनं गतः ७
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीडिते।

अधीन यह पुरी और राज्य है। अतः हे पुत्र ! द्विजेन्द्रों को बुला शीघ्र ही इस पृथिवी के राजा बनो। (५०-५४)

यहाँ बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

भरत यह वृत्त सुन रामके वनवाससे सन्तप्त हो कहने लगे कि पिता और श्रीराम के बिना राज्य से क्या प्रयोजन ? अरे दुष्टे ! तूने मुझे दुःखमें दूसरा दुःख दिया। तूने राजा को मार राम को तपस्वी बनाकर वनको भेज दिया। इस कुल के नाश करने के लिये तू कालरात्रि के समान हुई। हा, अंगाररूप तुझ को पा पिता स्वर्ग को चले गये। हे पापदर्शिनी ! तूने पिता को मार डाला और कुल भर का नाश किया। (१-५)

सत्यसन्ध वृद्ध मेरे पिता तुझी को प्राप्त हो मरे। उन्हे तूने ही मार डाला। राम को उन्होंने क्यों निकाला और वे वन क्यों गये ? यदि कौसल्या और

एवं त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे ।
निवर्तयिष्यामि वनाद्भ्रातरं स्वजनप्रियम् २६
निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः ।
दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना २७
इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्मा प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम् ।
शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः २८

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥७३॥ [२८७२]

चतुःसप्ततितमः सर्गः ।

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा ।
रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः १
राज्याद्भ्रंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि ।
परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव २
किं नु तेऽदूषयद्रामो राजा वा भृशधार्मिकः ।
ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ ३
भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात् ।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम् ४

गये । मैं तेरा अप्रिय करने के लिये अभी जा श्रीराम को वन से लौटा लाऊंगा । और श्रीराम को वन से लौटा उनका दास बन रहूंगा । इस प्रकार अप्रिय शब्दों से कैकेयी को दुःख देनेवाला और शोकाकुल भरत उक्त प्रकार कैकेयी से कहकर मंदरपर्वत की गुहामें स्थित सिंहके समान गर्जना करने लगा । (२१-२८)

यहाँ तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

माता की ऐसी निन्दा कर भरत बड़े क्रोध में भर फिर बोले- हे नृशंसे! राज्य से तू भी भ्रष्ट हुई, क्योंकि धर्म ने तुझे परित्यक्त कर दिया, अतः मेरे लिये भी तू रोवेगी । राम तथा राजा ने तेरा क्या बिगाड़ा था जिससे राजा को मार राम को वनवास दिया ? हे कैकेयि ? इस कुल के विनाश से भ्रूणहत्या का पाप तुझे है, इससे नरक को प्राप्त हो तू पिताके लोक को नहीं

यत्त्वया हीदृशं पापं कृतं घोरेण कर्मणा।
सर्वलोकप्रियं हित्वा ममाप्यापादितं भयम् ५
त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः।
अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः ६
मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके।
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि ७
कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या मम मातरः।
दुःखेन महताविष्टास्त्वां प्राप्य कुलदूषिणीम् ८
न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः।
राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः † ९
यत्त्वया धार्मिको रामो नित्यं सत्यपरायणः।
वनं प्रस्थापितो वीरः पितापि त्रिदिवं गतः १०
यत्प्रधानासि तत्पापं मयि पित्रा विना कृते।

जा सकती। क्योंकि तूने राम को वनवास दिया है, जिससे मुझे भी महाभय प्राप्त हुआ है। (१–५)

हा! तेरे ही हेतु पिता मरण को प्राप्त हुए और राम वनमें वसते हैं। अतः तेरे कारण लोक में मेरा भी अपयश हुआ। तू माता के रूप शत्रु है, क्योंकि निर्लज्ज हो राज्य की चाह करती है। हे पतिघातिनि! अब मुझसे शब्द के लिए न कहना। हा! कौसल्या और सुमित्रा आदि तुझ कुलपांसनी को पाकर महा दुःखित हैं। तू धर्मराज केकयराज की कन्या नहीं है, मेरे पिताके कुल का नाश करने के लिये उन के घर में राक्षसी उत्पन्न हुई है। तूने परम-धार्मिक राम को वनवास दिया जिससे पिता स्वर्ग को चले गये। (६-१०)

---

† ९ वे श्लोक में टीकाकार 'कुलप्रध्वंसिनी पितुः' में 'मम' शब्द अध्याहृत लेकर अर्थ करते हैं कि 'मेरे पिताके कुल को मटियामेट करनेवाली' तथा सूचित करते हैं 'अपने पिताके (पीहर) कुल का' ऐसा अर्थ लिया जा सकता है। मेरी राय में 'मम' अध्याहृत मानकर 'मेरे पिताजी के अर्थात् दशरथ के कुल का विनाश' यही अर्थ युक्तियुक्त दीख पडता है।

भ्रातृभ्यां च परित्यक्ते सर्वलोकस्य चाप्रिये ११
कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये।
कृत्वा कं प्राप्स्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनी १२
किं नाववुध्यसे क्रूरे नियतं बन्धुसंश्रयम्।
ज्येष्ठं पितृसमं रामं कौसल्यायात्मसंभवम् १३
अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते।
तस्मात्प्रियतरो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः १४
अन्यदा किल धर्मज्ञा सुरभिः सुरसंमता।
वहमानौ ददर्शोर्व्यां पुत्रौ विगतचेतसौ १५
तावर्धदिवसं श्रान्तौ दृष्ट्वा पुत्रौ महीतले।
रुरोद पुत्रशोकेन बाष्पपर्याकुलेक्षणम् १६
अधस्ताद्व्रजतस्तस्याः सुरराज्ञो महात्मनः।
बिन्दवः पतिता गात्रे सूक्ष्माः सुरभिगन्धिनः १७
निरीक्षमाणस्तां शक्रो ददर्श सुरभिं स्थिताम्।
आकाशे विष्ठितां दीनां रुदतीं भृशदुःखिताम् १८
तां दृष्ट्वा शोकसंतप्तां वज्रपाणिर्यशस्विनीम्।

जैसे तू राक्षसी थी वैसा ही कर्म किया कि मुझे पिता और भाइयों से रहित कर सब लोकों में मुझे व आप को अप्रिय किया। कौसल्या को विना पुत्र की कर इस घोर पाप से न जाने तू किस लोक को प्राप्त होगी। क्रूरे! परमबन्धु ज्येष्ठ भ्राता कौसल्यानन्दन राम को क्या तू नहीं जानती? पुत्र माता के अंग प्रत्यङ्ग और हृदय से उत्पन्न होता है, इसी से माता को पुत्र प्रियबान्धवों से भी अधिक प्रिय होता है। (११-१४)

किसी समय देवरूपिणी कामधेनु अपने दो पुत्र बैलों को पृथिवी में हल में जुते व्याकुल श्रान्त दोपहर से भी काम में लगे देख आंसू गिराने लगी। जहां कामधेनु थी, इन्द्र उसी के नीचे होकर जा रहे थे कि उस के आंसुओं की बूंद उनके ऊपर पडी। इन्द्र के ऊपर देखने पर उन्हें रोती दीनचित्त सुरभि आकाशमें दीख पडी। उसको शोकाकुल देख, इन्द्र उदास हो बोले—

इन्द्रः प्राञ्जलिरुद्विग्नः सुरराजोऽब्रवीद्वचः १९
भयं कच्चिन्न चास्मासु कुतश्चिद्विद्यते महत्।
कुतोऽनिमित्तः शोकस्ते ब्रूहि सर्वहितैषिणि २०
एवमुक्ता तु सुरभिः सुरराजेन धीमता।
प्रत्युवाच ततो धीरा वाक्यं वाक्यविशारदा २१
शान्तं पापं न वः किंचित्कुतश्चिदमराधिप।
अहं तु मग्नौ शोचामि स्वपुत्रौ विषमे स्थितौ २२
एतौ दृष्ट्वा कृशौ दीनौ सूर्यरश्मिप्रतापितौ।
वध्यमानौ बलीवर्दौ कर्षकेण दुरात्मना २३
मम कायात्प्रसूतौ हि दुःखितौ भारपीडितौ।
यौ दृष्ट्वा परितप्येऽहं नास्ति पुत्रसमः प्रियः २४
यस्याः पुत्रसहस्रैस्तु कृत्स्नं व्याप्तमिदं जगत्।
तां दृष्ट्वा रुदतीं शक्रो न सुतान्मन्यते परम् २५
इन्द्रो ह्यश्रुनिपातं तं स्वगात्रे पुण्यगन्धिनम्।
सुरभिं मन्यते दृष्ट्वा भूयसीं तामिहेश्वरः २६
समाप्रतिमवृत्तायाः लोकधारणकाम्यया।
श्रीमत्या गुणमुख्यायाः स्वभावपरिचेष्टया २७

हे सुरभि! आजकल किसी ओर से कोई भय नहीं है, फिर तुम्हें यह शोक क्यों प्राप्त हुआ है? (१५-२०)

देवराज के सुरभि से ऐसा कहने पर कामधेनु बोली– हे इन्द्र! आजकल राक्षसादिकों का पाप तो शान्त हो गया, पर मैं अपने पुत्रों का शोक करती हूं जो विषम स्थिति में पड़े हैं। इन दोनों को देखो कैसे दुर्बल हैं। सूर्य की धूप से दु.खी हैं, पर किसान ने दोपहर होने पर भी नहीं छोड़ा। ये मेरी काया से उत्पन्न हैं तथा बोझ से दु.खित हो रहे हैं। इन्हें देख मैं शोक मे जली जाती हूं। इन्द्र ने सहस्रों पुत्रोंवाली सुरभि को दो पुत्रों के कष्टसे कष्टित देख सोचा कि पुत्र के समान अन्य कोई भी पदार्थ प्रिय नहीं है। इन्द्र ने सुरभि के आंसुओं की बूंदों को पुण्य समझा। (२१-२६)

लोकधारण की कामना, सरलस्वभावता तथा पुत्र प्रेम से अनेक पुत्रों

एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा।
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना ७
स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा।
प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम् ८
ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ।
पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम् ९
रुदन्तौ रुदतीं दुःखात्समेत्यार्या मनस्विनी।
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता १०
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
संप्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ११
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी १२
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति।
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः १३
अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः १४
कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि।
यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्यते मे सुतस्ततः १५

ऐसा कह अति दुर्बलशरीर कांपती हुई कौसल्या भरत के पास चली। भरत भी शत्रुघ्न को साथ ले कौसल्या के मन्दिर को चले। शत्रुघ्न व भरत कौसल्या को देख दुःखित हुए, कौसल्या भी उन्हें देख मूर्छित हो गई। फिर रोते हुए दोनों भाइयों में रोदन करती भरत से बोली। (७–१०)

कैकेयी ने बडा क्रूर कर्म कर यह राज्य, राज्यकांक्षी तुम्हारे लिये पाया है। तुम्हें अब निष्कण्टक राज्य मिल गया है। क्रूरकर्मा कैकेयी चीर वल्कल पहिना मेरे पुत्र को वनवास देने में कौन लाभ देखती है? मेरे परम यशस्वी पुत्र राम जहां हैं, वहीं कैकेयी शीघ्र मुझे भी भेज दे। अन्यथा मैं स्वयं सुमित्रा को साथ ले राम के पास राजा की दाह-क्रिया कर चली जाऊंगी।

इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् ।
हस्त्यश्वरथसंपूर्णं राज्यं निर्यातितं तया १६
इत्यादिबहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः संभर्त्सितोऽनघः ।
विव्यथे भरतो तीव्रव्रणे तुद्येव सूचिना १७
पपात चरणौ तस्यास्तदा संभ्रान्तचेतनः ।
विलप्य बहुधासंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत् १८
एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा ।
कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् १९
आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् ।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे २०
कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत्तस्य कदाचन ।
सत्यसंधः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः २१
प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु ।
हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः २२
कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् ।

अथवा तुम्हीं मुझ को श्रीराम के पास पहुंचा दो। यह धनधान्ययुक्त राज्य तुम को सौंपती हूं, सो भोगो। (११-१६)

एवं बडे क्रूर वचन कौसल्या ने भरत से कहे, जिन्हें सुन भरत अति दुःखित हुए। भरत शोकातुर हो कौसल्या के पैरों पर गिर पडे, भ्रान्तचित हो रोते रोते मूर्छित हो गये, फिर चैतन्य हो रोती माता कौसल्या से हाथ जोड बोले- आर्ये! राम से मेरी कैसी अधिक प्रीति है, वह तुम अच्छी प्रकार जानती हो। मैं इस विषय में अनजान और निष्पाप हूं, फिर मेरी निन्दा क्यों करती हो ? (१७-२०)

सत्यसन्ध श्रीराम जिसकी अनुमति से वन गये हों, वह शास्त्र भी पढे तो उस को न आवे। जिस की सम्मति से श्रीराम वन गये हों, वह नीच पापी आदिकों का सेवक हो और सूर्य के सम्मुख हो दिशा पेशाब करे, सोती हुई गाय को लात मारे। जिस के मत से श्रीराम वन गये हों,

अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः २३
परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् ।
ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः २४
बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः २५
संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञदक्षिणाम् ।
तां चापलपतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः २६
हस्त्यश्वरथसंबाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले ।
मा स्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्यार्योऽनुमते गतः २७
उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता ।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः २८
मा च तं व्यूढबाहंसं चन्द्रभास्करतेजसम् ।
द्राक्षीद्राजस्थमासीनं यस्यार्योऽनुमते गतः २९
पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः ।
गुरूंश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः ३०

उसको वह पाप हो जो कि बड़ा काम करा लेने पर भी सेवकों को नौकरी न देने से होता है। जिस के मत से श्रीराम वन गये हों, उस को वह पाप हो जो राजा को प्रजाओं के घात से होता है। जिस की अनुमति से श्रीराम वन गये हों, उस को वह पाप होवे जो प्रजा से बलिषड्भाग ग्रहण करके उनकी रक्षा न करनेवाले राजा को होता है। (२१–२५)

जिस की अनुमति से आर्य वन चले गये हों, उस को वह पाप हो जो ब्राह्मणों से यज्ञादि करा प्रतिज्ञात दक्षिणा न देने पर प्रापित होने से होता है। जिस की सम्मति से श्रीराम वन में गये हों, उस को वह पाप हो जो युद्ध में भागने से होता है। जिस के मत से श्रीराम वनको गये हों, उसको वह पाप हो जो शास्त्र से सूक्ष्म अर्थों को पढ भुला देने से होता है। जिस की मति से श्रीराम निर्वासित हुए हों, वह दुष्ट, तेजस्वी श्रीरामको सिंहासन पर बैठे न देखे। जिस की मति से श्रीराम वन को गये हों, उस को वह पाप हो जो बिना देवता के अर्पण की हुई खीर आदि खाने व गुरु का अपमान

गवां स्पृशतु पादेन गुरून्परिवदेत च।
मित्रे द्रुह्येत सोऽत्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः　　३१
विश्वासात्कथितं किंचित्परिवादं मिथः क्वचित्।
विवृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः　　३२
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्च निरपत्रपः।
लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः　　३३
पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः।
स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः　　३४
अप्राप्य सदृशान्दारानन्पत्यः प्रमीयताम्।
अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः　　३५
मात्मनः संततिं द्राक्षीत्स्वेषु दारेषु दुःखितः।
आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः　　३६
राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते।
भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्　　३७

करने से होता है। (२६-३०)

जिस की अनुमति से राम वन को गये हों, उस को वह पाप हो जो गायों को पैर से छूने व बड़े लोगों के सामने ढिठाई के साथ बोलने और मित्रद्रोह से होता है। जिस की मति से राम वन को गये हों, उसे वह पाप हो जो विश्वासघात व प्रतिज्ञाभंग से होता है। जिस की अनुमति से आर्य वन में गये हो, उसको उपकार न करनेवाले अकृतज्ञ होने और संसार भर से वैर करने का पाप हो। जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उस को वह पाप लगे जो पुत्र स्त्री सेवक आदि के होते अकेले मिष्टान्न खानेसे होता है। जिस की मति से आर्य वन को गये हों उस को योग्य स्त्री पुत्र न मिले। (३१-३५)

जिस की मति से राम वन को गये हों वह अपनी स्त्रियों में सन्तति का सुख न देखे, उस की अल्पायु हो। जिस की सम्मति से राम वन को गये हों, उसको वह पाप जो राजा, स्त्री बालक व वृद्ध के मार डालने से होता

लाक्षया मधुमांसेन लोहेन च विषेण च।
सदैव बिभृयाद्भृत्यान्यस्यार्योऽनुमते गतः ३८
सङ्ग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्षभयंकरे।
पलायमानो वध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ३९
कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृतः।
भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः ४०
मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः।
कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ४१
मास्य धर्मे मनो भूयादधर्मं स निषेवताम्।
अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः ४२
संचितान्यस्य वित्तानि विविधानि सहस्रशः।
दस्युभिर्विप्रलुप्यन्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ४३
उभे संध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः ४४
यदग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे।
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ४५

है। जिसकी राय से राम वन को गये हों, उसको वह दोष लगे जो निषिद्ध चीजों को बेच कुटम्बियों के भरण से होता है। जिसकी मति से आर्य वन गये हों, वह संग्राम से भागे व वैरी उसका वध करे। जिस की सहमति से राम वन को गये हों, वह हाथमें मुर्दों की खोपडी लिये भीख मांगता पृथिवी में धूमा करे। (३६-४०)

जिस के मत से राम वन को गये हों, वह मदिरा पान करने व मैथुन करने तथा जुआ में आसक्त रहे। जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उस का मन कभी धर्म में न लगे और अपात्र ही को दान दिया करे। जिसकी अनुमति से आर्य वन को गये हों, उसका बटोरा हुआ धन चोर चुरा ले जावें। जिसकी मति से राम वन को गये हों, उसको प्रातः व सायं की सन्ध्या में शयन करने का पाप लगे। जिसकी मतिसे आर्य को वनवास हुआ हो, उसको वह पाप लगे जो अग्नि लगाने, गुरुशय्या पर बैठने व मित्र

देवतानां पितॄणां च मातापित्रोस्तथैव च ।
मा स कार्षीत्स शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः ४६
सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात्कर्मणस्तथा ।
भ्रश्यतु क्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमते गतः ४७
अपास्य मातृशुश्रूषामनर्थे सोऽवतिष्ठताम् ।
दीर्घबाहुर्महावक्षा यस्यार्योऽनुमते गतः ४८
बहुभृत्यो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः ।
समायात्सततं क्लेशं यस्यार्योऽनुमते गतः ४९
आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम् ।
अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ५०
मायया रमतां नित्यं पुरुषः पिशुनोऽशुचिः ।
राज्ञो भीतस्त्वधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ५१
ऋतुस्नातां सतीं भार्यामृतुकालानुरोधिनीम् ।
अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ५२
विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत् ।
तदेतत्प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ५३

को मारने से होता है। (४१–४५)

जिस की मतिसे आर्य वनको गये हों, उसको पितर और माता पिता की सेवा करने को न मिले। जिस की मतिसे आर्य वनको गये हों, वह सज्जनों के लोक व कीर्ति और कर्मों से भ्रष्ट हो। जिस की सहमति से आर्य वनको गये हों, वह कुमार्ग में चले। जिस की मति से आर्य वन को गये हों, वह दरिद्री हो और ज्वर से सदा पीडित रहे। जिसकी मति से आर्य वन को गये हों, वह याचक लोगों की आशा पूरी न कर सके। (४६–५०)

जिसके कहने से आर्य वनको गये हों, वह राजा से डरता नित्य जहां तहां फिरा करे। जिसकी मति से आर्य वन को गये हों, वह अपनी ऋतुस्नात स्त्री के साथ भोग न कर सके। जिसकी मतिसे आर्य वन को गये हों, उस को पुत्रादिका पालन न करनेवाले ब्राह्मणकासा पाप लगे। जिस

ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः ।
बालवत्सां च गां दोग्धुर्यस्यार्योऽनुमते गतः ५४
धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम् ।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ५५
पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके ।
यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ५६
तृषार्ते सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन् ।
यत्पापं लभते तत्स्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ५७
भक्त्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः ।
तेन पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ५८
एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह ।
विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ५९
तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् ।
भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ६०
मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ६१

को मति से आर्य वन को गये हों, वह पापात्मा ब्राह्मण के लिए होती पूजा को मिटा दे । जिस की सहमति से आर्य वन को गये हों, वह विवाहिता स्त्री को छोड अन्य स्त्रियों के सहवास में रहे । (५१-५५)

जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उसको जल भ्रष्ट करनेवाले व विष भोजन करानेवालेकासा पाप लगे । जिसकी मति से आर्य वन को गये हों, उसको वह पाप लगे जो प्यासे मनुष्यको पानी न पिलाने से लगता है । जिस की मति से आर्य वन को गये हों, उसको वह पाप लगे जो उन मध्यस्थों को लगता है जो न्याययुक्त विचार नहीं करते। एवं शपथ से पतिपुत्रहीन कौसल्या को समझाते भरत दुःखी हो गिर पडे । तब मूर्च्छित व शोकसन्तप्त भरत से कौसल्या बोली । (५६-६०)

हे पुत्र ! यद्यपि तुम इन शपथों से मेरे प्राणोंको रोकते हो, तो भी तुम

दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः * ।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि　६२
इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता　६३
एवं विलपमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः ।
मोहाच्च शोकसंरम्भाद्बभूव लुलितं मनः　६४
लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रनष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ ।
मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ६५
इत्यार्षे श्री०वा०आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥ [२९७४]

षट्सप्ततितमः सर्गः ।

तमेवं शोकसंतप्तं भरतं कैकयीसुतम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः　१
अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।

को कष्टित देख मुझे अधिक कष्ट होता है । हे वत्स ! भाग्य की बात है कि तुम्हारा आत्मा धर्म से चलायमान नहीं हुआ, इस से तुम सत्यमति हो । यह कह भरत को गोदमें बिठा और छाती से लगा कौसल्या रोने लगी । भरत का मन भी दुःख के मारे पीडित हो व्यथित हो गया । और विचारहीन तथा भानरहित होकर भूमिपर गिरे हुए और दीर्घ निःश्वास करते हुए भरतके शोकमें ही वह रात्रि बीत गई । (६१-६५)

यहां पचहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

शोकसन्तप्त भरत से वसिष्ठ बोले– हे राजपुत्र ! अब इस शोकको छोडो,

* ६२ वे श्लोक में निर्णयसागर एवं गुजराथी मुद्रित प्रतियों में 'सहलक्षणः' पाठ मिलता है और भाष्यकार भी 'शुभलक्षणैः सहितः' ऐसा ही अर्थ देते हैं । गोविन्दराजीय एवं मद्रास की प्रतियों में 'सहलक्ष्मणः' पद मिलता है, जिसका अर्थ यूं दिया है कि 'सहलक्ष्मण लक्ष्मणवत्' याने 'लक्ष्मणवत् सत्यप्रतिज्ञोऽसि ।' मेरी राय में तो 'सहलक्षण' पाठही ठीक जँचता है ।

प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम् २
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः ।
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित् ३
उद्धृत्य तैलसंसेकात्स तु भूमौ निवेशितम् ।
आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम् ४
संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते ।
ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः ५
किं ते व्यवसितं राजन्प्रोषिते मय्यनागते ।
विवास्य रामं धर्मज्ञं लक्ष्मणं च महाबलम् ६
क्व यास्यसे महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् ।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ७
योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं कोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे ।
त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामे च वनमाश्रिते ८
विधवा पृथिवी राजंस्त्वया हीना न राजते ।
हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभाति माम् ९
एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् ।

स्वर्गगत दशरथजी की क्रिया करो, वसिष्ट की बात सुन पृथिवीमें पडे भरत ने उठ प्रेतकार्य करनेके लिये आज्ञा दी। राजा का शरीर तेलसे निकलवा भूमिमें रक्खा गया। उस समय राजा का शरीर पीला होगया था। तदनु रत्नजडित पलंग पर उत्तम बिछौने बिछा उसपर राजा को लिटा दुःखित हो भरत विलाप करने लगे। (१-५)

राजन्! आपने मुझे विदेश को भेज आने भी न दिया और बीच ही में राम लक्ष्मणको वनवास दे दिया! हे पुरुषसिंह! अलौकिक कर्म करनेवाले रामरहित दुःखित हमें छोड कहां जाते हो? तात! तुम तो स्वर्ग को चले, राम वनको चले गये, अब इस पुरी में योगक्षेम कौन करेगा? राजन्! तुम बिना यह वसुन्धरा बिधवा हो गई, यह नगरी चन्द्ररहित रात्रिके समान शोभाशून्य जान पडती है। (६-९)

अब्रवीद्वचनं भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः १०
प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशांपतेः ।
तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम् ११
तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् ।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यांस्त्वरयामास सर्वशः १२
ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यागाराद्बहिष्कृताः ।
ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव ते ह्रयन्ते यथाविधि १३
शिबिकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् ।
बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूचुः परिचारकाः १४
हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च ।
प्रकिरन्तो जना मार्गं नृपतेरग्रतो ययुः १५
चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा ।
देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे १६
गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम् ।
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः १७
तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः ।
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः १८
शिबिकाभिश्च यानैश्च यथार्हं तस्य योषितः ।

एवं दीन रोते भरत से वसिष्ट फिर बोले— महाबाहो ! अब महाराज के जो जो प्रेतकार्य हैं, उनको विना विचार जैसे मैं बताऊं करो । वसिष्ट की बात सुन भरतने पितृमेध के लिये ऋत्विज आदि को बहुत शीघ्र बुलवाया। ऋत्विज से अग्नि को प्रज्वलित करवा उसमें आहुतियां करवाईं । तदनु राजा के शव को पालकी में रख रोदन करते परिचारकोंने उठाया । आगे आगे चांदी सोना और नाना उत्तम वस्त्र लुटाते हजारों मनुष्य चले । (१०–१५)

एवं सरयू तट पर पहुंचा तथा चन्दन, अगरु, गुग्गुल आदि उत्तम काष्ठ ला कर चिता बनाई । उस चिता में अन्य नाना सुगन्धित वस्तु डाल ऋत्विजोंने राजा को उठा उसपर लिटाया । भरत से चिता में आग लगवा कर ऋत्विज मन्त्र पढने लगे, सामवेदपाठी साम गाने लगे । तदनु सवारियों

नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा १९
प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम् ।
स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा २०
क्रौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे ।
आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः २१
ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः ।
यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः २२
कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गनामन्त्रिपुरोहिताश्च ।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् २३

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥[२९९७]

सप्तसप्ततितमः सर्गः ।

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः ।
द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् १
ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम् ।
वास्तिकं बहु शुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा २
दासीदासांश्च यानानि वेश्मानि सुमहान्ति च ।

पर सवार दशरथ की रानियां वृद्ध लोगों के साथ नगर से निकलीं। वहां आ चिताग्निमें प्राप्त राजाकी प्रदक्षिणा भरत व कौसल्यादि के साथ ऋत्विजोंने की। (१६–२०)

तब महाराज की कौसल्यादि सहस्रों स्त्रियों का रोदन चिल्लाती हुई कुररी क्रौञ्चिओं के समान सुनाई देता था। एवं महाराज की स्त्रियां रोदन करती हुई सरयू के समीप आईं। उन सबोंने भरत और पुरोहितके साथ राजाको जलांजलि दी तथा पुरोहित राजमहिषी ऋत्विजों सहित सब लोग नगर को लौट आये और दश दिन तक दुःखित हो ब्रह्मचर्यादि नियम से व्यतीत किये। (२१–२३)

यहां छहत्तरवां सर्ग समाप्त हुआ।

भरतने दशाहादि कर बारहवें दिन श्राद्ध किया। ब्राह्मणों को धन, रत्न, अन्न, छाग, चांदी, सुवर्ण, गाय, आदि दान दिये। दासदासियों, रथ, उंट,

ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुत्रो राज्ञस्तस्यौर्ध्वदेहिकम् ३
ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे ।
विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्च्छितः ४
शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः ।
चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः ५
तात यस्मिन्निसृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे ।
तस्मिन्वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ६
यस्या गतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तामम्बां तात कौसल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप ७
दृष्ट्वा भस्मारुणं तच्च दग्धास्थिस्थानमण्डलम् ।
पितुः शरीरनिर्वाणं निष्टनन्विषसाद ह ८
स तु दृष्ट्वा रुदन्दीनः पपात धरणीतले ।
उत्थाप्यमानः शक्रस्य यन्त्रध्वज इवोच्छ्रितः ९
अभिपेतुस्ततः सर्वे तस्यामात्याः शुचिव्रतम् ।
अन्तकाले निपतितं ययातिमृषयो यथा १०
शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम्
विसंज्ञो न्यपतद्भूमौ भूमिपालमनुस्मरन् ११

तथा सामग्रीसे भरे गृह भरतने ब्राह्मणों को दिये । तेरहवें दिन भरत शोक से मूर्च्छित हो रोदन करने लगे । और रोते हुए वहां गये, जहां राजा का दाह किया था, गद्गद हो कहने लगे । (१—५)

तात ! जिन भाई राम को हमें आपने सौंपा था, वे तो वन को चले गये । अब हमारा रक्षक कोई नहीं रहा । तात ! कौसल्या-पुत्र राम को वन भेज कौसल्या को अनाथ कर आप कहां चले गये ? यह कह जहां दशरथ के हाड जले थे, सफेद भस्म पडी थी, पिता की याद कर रोते रोते वहीं बैठ गये तथा रोते रोते मूर्च्छित हो भूमि में गिर पडे । उस समय भरत के मंत्री आदि सब शोकातुर हो गये । (६—१०)

शत्रुघ्न भी भरत को शोक में डूबा देख राजा को याद कर गिर पडे ।

उन्मत्त इव निश्चित्तो विललाप सुदुःखितः ।
स्मृत्वा पितुर्गुणाङ्गानि तानि तानि तदा तदा १२
मन्थराप्रभवस्तीव्रः कैकेयीग्राहसंकुलः ।
वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमज्जयच्छोकसागरः १३
सुकुमारं च बालं च सततं लालितं त्वया ।
क्व तात भरतं हित्वा विलपन्तं गतो भवान् १४
ननु भोज्येषु पानेषु वस्त्रेष्वाभरणेषु च ।
प्रवारयति सर्वान्नस्तन्नः कोऽद्य करिष्यति १५
अवदारणकाले तु पृथिवी नावदीर्यते ।
विहीना या त्वया राज्ञा धर्मज्ञेन महात्मना १६
पितरि स्वर्गमापन्ने रामे चारण्यमाश्रिते ।
किं मे जीवितसामर्थ्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् १७
हीनो भ्रात्रा च पित्रा च शून्यामिक्ष्वाकुपालिताम् ।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि तपोवनम् १८
तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्य तत् ।
भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवानुगामिनः १९
ततो विषण्णौ श्रान्तौ च शत्रुघ्नभरतावुभौ ।

अति दुःखित वे उन्मत्त मनुष्य समान विलाप करने लगे । मन्थरा की उक्ति से उत्पन्न शोकसागर, कैकेयी के वचन ही घडियाल, राजा का वरदान ही जिस में अथाह जल ऐसे सागर में रोते रोते शत्रुघ्न ने भरतादिकों को डुबा दिया । वे बोले– हे तात ! अति सुकुमार भरत को रोते छोड आप किधर चले गये ? आज तक तो भोजन वस्त्र भूषणादि के लिये हम सब को आप प्रेरणा करते थे, अब कौन करेगा ? (११–१५)

हा ! आप ऐसे धर्मज्ञ व महात्मा राजा बिना यह पृथिवी अवदारण के समय फट नहीं गई । पिता स्वर्ग को चले गये, अब हमें जीने से क्या प्रयोजन ? यह पुरी अब बिना राजा की पडी है, इस में अब न जा तपोवन को हम भी चले जायेंगे । दोनो भाइयों का ऐसा विलाप देख सब मन्त्री

धरायां स व्यचेष्टेतां भग्नशृङ्गाविवर्षभौ २०
ततः प्रकृतिमान्वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः।
वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह २१
त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो।
सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे २२
त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि २३
सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च।
श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ २४
उत्थितौ तौ नरव्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ।
वर्षातपपरिग्लानौ पृथगिन्द्रध्वजाविव २५
अश्रूणि परिमृन्दन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ।
अमात्यास्त्वरयन्ति स्म तनयौ चापराः क्रियाः २६

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥७७॥ [३०२३]

पुरोहितादि बहुत दुःखित हुए। भरत शत्रुघ्न दोनों विह्वल हो भूमि में गिर पड़े। (१६-२०)

यह दशा देख वसिष्ठ अपने हाथों से भरत को उठा कहने लगे कि-'तात! तुम्हारे पिता के दाह का यह तेरहवां दिन है व अस्थिसंचयन अभी शेष है, अतः इसके करने में क्यों देरी करते हो? संसार में तीन द्वन्द्व हैं, प्रथम भूख प्यास, दूसरा शोक मोह, तीसरा जरा मृत्यु। ये व्यापक द्वन्द्व हैं जन्म मरण व लाभ अलाभ, सुख दुःख। ये बातें सब प्राकृत मनुष्योंको होतीं हैं, तुम सरीखे लोगों को इन में न फंसना चाहिये। वसिष्ठने ऐसा कह भरत को समझाया और सुमन्त्रने शत्रुघ्न को समझाया। समझाने से भरत शत्रुघ्न उठके बैठे। वे दोनों आंसू पोछते हुए जो कुछ क्रिया करने को शेष थी, शीघ्र करने लगे। (२१-२६)

यहां सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

स बली बलवत्क्रोधाद्गृहीत्वा पुरुषर्षभः।
कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य बभाषे परुषं वचः १९
तैर्वाक्यैः परुषैर्दुःखैः कैकेयी भृशदुःखिता।
शत्रुघ्नभयसंत्रस्ता पुत्रं शरणमागता २०
तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति २१
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् २२
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् २३
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः।
न्यवर्तत ततो दोषात्तां मुमोच च मूर्च्छिताम् २४
सा पादमूले कैकेय्या मन्थरा निपपात ह।
निःश्वसन्ती सुदुःखार्ता कृपणं विललाप ह २५
शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञां समीक्ष्य कुब्जां भरतस्य माता।
शनैः समाश्वासयदार्तरूपां क्रौञ्चीं विलग्नामिव वीक्षमाणाम् २६

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽष्टसप्ततितमः सर्गः ॥७८॥ [३०४९]

गहनों से वह मन्दिर बड़ा शोभित हुआ। कैकेयी यह देख मन्थराके छुड़ाने को आई, पर शत्रुघ्न ने उसे अलग कर अति कठोर वाक्य कहे। उन कठोर वचनों को सुन कैकेयी बड़ी दुःखी हुई और भरत के पास गई। (१६-२०)

शत्रुघ्न से भरत बोले, हे शत्रुघ्न! स्त्रियां अवध्य हैं, सो अब क्षमा करो। यदि मुझे यह ज्ञात होता कि राम मुझको मातृघातक समझ मेरी निन्दा न करेंगे तो इस पापिनी कैकेयी को मैं मार डालता। इस मन्थरा को मारा सुन राम निश्चय से हम से बात भी न करेंगे। भरत के ऐसे वचन सुन शत्रुघ्न ने मन्थरा को मूर्च्छित अवस्था में छोड़ दिया। मन्थरा कैकेयी के चरणों पर गिर विलाप करने लगी। तब उस शत्रुघ्न से भयभीत हुई मन्थराका सान्त्वन कैकेयी ने किया। (२१-२६)

यहां अठहत्तरवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

एकोनाशीतितमः सर्गः ।

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे ।
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् १
गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः ।
रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् २
त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः ।
संगत्या नापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ३
आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव ।
प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ४
राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं ध्रुवम् ।
अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान्नरर्षभ ५
आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम् ।
भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ६
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः ।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ७
रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः ।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ८
युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला ।
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ९

ततः चौदहवें दिन प्रातः राजकारभारी लोग इकट्ठे हो भरत से बोले कि, राम लक्ष्मण को वन भेज राजा दशरथ स्वर्ग को चले गये । अब यह राज्य राजारहित है, सो हम लोगों के राजा आप होवें । हे राजपुत्र ! अभिषेक की सामग्री लिये ये मन्त्री पुरोहितादि खड़े हैं । अतः हे भरत ! अपना अभिषेक कराइये व हम लोगों की रक्षा कीजिये । (१–५)

यह सुन परम व्रतधारी भरत बोले– हमारे कुल में आज तक ज्येष्ठ ही राजा होता चला आया है, इससे आप लोग ऐसा न कहें । हम में ज्येष्ठ श्रीराम हैं, वही राजा होंगे । अतः सेना तैयार करो, मैं ज्येष्ठ भाई को वन

आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम्।
पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति १०
तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम्।
आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ११
न सकामां करिष्यामि स्वामिमां पुत्रगृद्धिनीम्।
वने वत्स्याम्यहं दुर्गं रामो राजा भविष्यति १२
क्रियतां शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च।
रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः १३
एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम्।
प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् १४
एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम्।
यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि १५
अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजः प्रभाषितं संश्रवणे निशम्य च।
प्रहर्षजास्तं प्रतिवाष्पबिन्दवो निपेतुरार्याननेत्रसंभवाः १६
ऊचुस्ते वचनमिदं निशम्यहृष्टाः सामात्याः सपरिषदो वियातशोकाः
पन्थानं नरवर भक्तिमाञ्जनश्च व्यादिष्टस्तव वचनाच्च शिल्पिवर्गः
इत्यार्षे श्रीम०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोनाशीतितमः सर्गः॥७९॥[३०६६]

से बुला लाऊंगा। अभिषेक-सामग्री भी राम के लिये साथ ही चले। वहीं श्रीराम का अभिषेक करके उन्हें यहां लावेंगे। कैकेयी की इच्छा के विरुद्ध राम ही राजा होंगे और मैं वनमें निवास करूंगा। बेलदार आदि लोग मार्ग समान करें, बहुत चतुर लोग मार्गकी रक्षाके लिये भी जायँ। (६-१३)

जब भरतने यह कहा, तो सब लोग यूं बोले- जिस से आप राम को यह राज्य देने का विचार करते हैं, इस से आप को लक्ष्मी व शोभा मिले। भरत का वचन सुन सब प्रसन्न हुए, सब आनन्द के आंसू बहाने लगे। भरत का भाषण सुनकर सभा और अमात्योंके साथ सब लोग आनंदित हो कहने लगे– हे पुरुषोत्तम! तुम्हारी आज्ञानुसार मार्ग करनेवाले और रक्षकों को आज्ञा दी है। (१४-१७)

यहां उनासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अशीतितमः सर्गः।

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः।
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा १
कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः।
तथावर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः २
सूपकाराः सुधाकारा वंशचर्मकृतस्तथा।
समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे ३
स तु हर्षात्तमुद्देशं जनौघो विपुलः प्रयान्।
अशोभत महावेगः सागरस्येव पर्वणि ४
ते स्ववारं समास्थाय वर्त्मकर्मणि कोविदाः।
करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ५
लता वल्लीश्च गुल्मांश्च स्थाणूनश्मन एव च।
जनास्ते चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान् ६
अवृक्षेषु च देशेषु केचिद्वृक्षानरोपयन्।
केचित्कुठारैष्टङ्कैश्च दात्रैश्छिन्दन्क्वचित् क्वचित् ७
अपरे वीरणस्तम्बान्बलिनो फलवत्तराः।
विधमन्ति स्म दुर्गाणि स्थलानि च ततस्ततः ८

तदनन्तर भूमिप्रदेशज्ञ सूत्रकर्मविशारद तथा नदी आदि के तरने के लिये शीघ्र नाव आदि यन्त्र प्रस्तुत करनेवाले लोग चले। श्रमजीवी, यन्त्रकोविद, मार्गरक्षक व वृक्षतक्षक लोग चले। सूपकार, सुधाकार, बांस का वकला छीलनेवाले तथा उन मार्गों में कभी न कभी जानेवाले लोग रवाना हुए। उन लोगों के झुण्ड का वेग ऐसी शोभा देता था जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्र। वे लोग अपनी अपनी जाति के झुण्डों को व सामग्री साथ ले आगे को चले। और मार्ग के अवरोधक जितने लता, वल्ली, झाड़ वृक्ष आदि थे उन सब को काट काट मार्ग ठीक करने लगे। (१-६)

किन्हीं ने अवृक्षक देशों में नये वृक्ष लगा दिये, कहीं वृक्षों की बड़ी शाखाओं को छांट डाला, कोई कोई बलवान् ठूँठोंको उखाड़ फेंक देते और

अपरेऽपूरयन्कूपान्पांसुभिः श्वभ्रमायतम्।
निम्नभागाँस्तथैवाशु समांश्चक्रुः समन्ततः ९
बबन्धुर्बन्धनीयांश्च क्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा।
बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान्देशान्नरास्तदा १०
अचिरेण तु कालेन परिवाहान्बहूदकान्।
चक्रुर्बहुविधाकारान्सागरप्रतिमान्बहून् ११
निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान्।
उदपानान्बहुविधान्वेदिकापरिमण्डितान् १२
ससुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः।
मत्तोद्घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः १३
चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः।
बह्वशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः १४
आज्ञाप्याथ यथाज्ञप्ति युक्तास्तेऽधिकृता नराः।
रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादुफलेषु च १५
यो निवेशस्त्वभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः।
भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् १६

विषम स्थलों को बराबर करते थे। मार्ग के अवरोधक वृक्षों और गड़हों को मिट्टी आदि से पाट समान कर देते थे। नदियों आदि में पुल बांध देते, ईंट कङ्कड़ों को अलग फेंक देते, जल आने की रुकावट को दूर कर देते थे। अल्प काल में अनेक धारा वाली नदी की धारा को एक ही स्थानपर लाकर पुल बांधकर समुद्रों के आकार में कर दिया। (७–११)

निर्जल स्थानों में वापी कूपादि खोद सुन्दर घाट आदि बना दिये, तथा फूलदार पेड़ भी युक्ति से लगा दिये। स्थान स्थानपर पताकायें बांध दी गईं। उस सड़क पर जल से छिड़काव कराया गया। सेना जाने का मार्ग ऐसा शोभित हुआ जैसे अमरावती का मार्ग। उन लोगों ने सुन्दर रमणीक देशों में नाना स्वाद युक्त फलवाले पेड़ लगा दिये। जैसा स्थान अभीष्ट था, वैसा ही उन लोगों ने बना दिया। (११–१६)

नक्षत्रेषु प्रशस्तेषु मुहूर्तेषु च तद्विदः ।
निवेशान्स्थापयामासुर्भरतस्य महात्मनः १७
बहुपांसुचयाश्चापि परिखाः परिवारिताः ।
तत्रेन्द्रनीलप्रतिमाः प्रतोलीवरशोभिताः १८
प्रासादमालासंयुक्ताः सौधप्राकारसंवृताः ।
पताकाशोभिताः सर्वे सुनिर्मितमहापथाः १९
वितर्दिभिरिवाकाशे विटङ्काग्रविमानकैः ।
समुच्छ्रितैर्निवेशास्ते बभुः शक्रपुरोपमाः २०
जाह्नवीं तु समासाद्य विविधद्रुमकाननाम् ।
शीतलामलपानीयां महामीनसमाकुलाम् २१
सचन्द्रतारागणमण्डितं यथा नभः क्षपायाममलं विराजते।
नरेन्द्रमार्गः स तदा व्यराजत क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः२२
इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥८०॥ [३०८८]

पश्चात् अच्छे नक्षत्र एवं मुहूर्त देखकर उन्होंने महात्मा भरतजीके डेरोंको हर जगह खड़ा किया । उस शिविरके इर्दगिर्द खाइयोंके साथ बँधे हुए दुर्ग इन्द्रनील पहाड़की नाईं ऊँचे ऊँचे थे और सुहावने सड़कोंकी वजह सुन्दर दीख पड़ते थे । मिट्टीके अनगिनती गोले एकके ऊपर एक रखकर इनका निर्माण हुआ था । वे सभी शिविर महलोंके झुरमुटसे युक्त थे, राजमहल जैसे आकारसे भरे थे, झंडियोंसे सुहाने थे और उनमें जानेके लिए बड़े बड़े मार्ग बड़ी अच्छी तरह तैयार कर रखे थे । कबूतरोंके गृहोंसे युक्त एवं आस्मानकी वेदियोंकी तरह दिखाई देनेवाले सात सात मँजिलवाले वे शिविर इन्द्रकी नगरियोंके तुल्य दीख पड़ते थे । ठंडे एवं निर्मल जलसे पूर्ण, पानीमें घूमनेवाले बड़े बड़े जन्तुओंसे भरीपड़ी एवं भाँति भाँतिके वृक्ष वनोंसे समृद्ध जन्हुकन्या गंगाके ऊपरसे भी चला गया और आगे आगे तो ज्यादा सुहावना मालूम पड़नेवाला वह राजपथ जिसे कुशल कारीगरोंने बनाया था, ठीक उसी भाँति जगमगाने लगा जैसे रात्रीके समय चन्द्र एवं सितारोंसे विभूषित निर्मल आकाश सुन्दर दिखाई देने

एकाशीतितमः सर्गः।

ततो नान्दीमुखीं रात्रिं भरतं सूतमागधाः।
तुष्टुवुः सविशेषज्ञाः स्तवैर्मङ्गलसंस्तवैः १
सुवर्णकोणाभिहतः प्राणदद्यामदुन्दुभिः।
दध्मुः शङ्खांश्च शतशो वाद्यांश्चोच्चावचस्वरान् २
स तूर्यघोषः सुमहान्दिवमापूरयन्निव।
भरतं शोकसंतप्तं भूयः शोकैररन्ध्रयत् ३
ततः प्रबुद्धो भरतस्तं घोषं संनिवर्त्य च।
नाहं राजेति चोक्त्वा तं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ४
पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोकस्यापकृतं महत्।
विसृज्य मयि दुःखानि राजा दशरथो गतः ५
तस्यैषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः।
परिभ्रमति राजश्रीर्नौरिवाकर्णिका जले ६
यो हि नः सुमहान्नाथः सोऽपि प्रव्राजितो वने।
अनया धर्ममुत्सृज्य मात्रा मे राघवः स्वयम् ७
इत्येवं भरतं वीक्ष्य विलपन्तमचेतनम्।

लगता है। (१७–२२)

यहाँ अस्सीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

जब वह रात्रि बीती तो प्रातः बन्दीजन नाना स्तोत्रोंसे, भरत की स्तुति करने लगे। सुवर्ण के दण्ड से दुन्दुभि और अनेक शंखादि बजाये गये। वह बाजोंका शब्द आकाश में व्याप्त हो गया। उसने शोकसन्तप्त भरत को और व्यथित कर डाला। उन शब्दोंको सुन भरत जागे और वे बाजे उन्होंने बन्द करवा कहा कि 'मैं राजा नहीं हूं।' इतना कह शत्रुघ्नसे बोले, 'हे शत्रुघ्न! देखो, कैकेयीने संसार भरका अपकार किया, जिस से राजा मुझको दुःखों में डाल स्वर्गको चले गये। उस महात्मा धर्मराजकी राज्यश्री समुद्रमें बिना केवटकी नाव तुल्य इधर उधर भ्रमण करती है। हा! राजाकी तो यह दशा हुई और रामको कैकेयी ने वनको भेज दिया।' (१–७)

कृपणा रुरुदुः सर्वाः सुस्वरं योषितस्तदा ८
तथा तस्मिन्विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित् ।
सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः ९
शातकुम्भमयीं रम्यां मणिहेमसमाकुलाम् ।
सुधर्मामिव धर्मात्मा सगणः प्रत्यपद्यत १०
स काञ्चनमयं पीठं स्वस्त्यास्तरणसंवृतम्
अध्यास्त सर्ववेदज्ञो दूताननुशशास च ११
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्योधानमात्यान् गणवल्लभान् ।
क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्ययिकं हि नः १२
सराजपुत्रं शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ।
युधाजितं सुमन्त्रं च ये च तत्र हिता जनाः १३
ततो हलहलाशब्दो महान्समुदपद्यत ।
रथैरश्वैर्गजैश्चापि जनानामुपगच्छताम् १४
ततो भरतमायान्तं शतक्रतुमिवामराः ।
प्रत्यनन्दन्प्रकृतयो यथा दशरथं तथा १५
ह्रद इव तिमिनागसंवृतः स्तिमितजलो मणिशङ्खशर्करः ।

भरत को एवं रोदन करते देख सब स्त्रियां दुःखित हो रोने लगीं। इस प्रकार भरत विलाप कर रहे थे कि वसिष्ठ सभा में आये। उस रमणीय सभा में वसिष्ठ अपने साथियों के साथ आये। सभामें गोलाकार एक सुवर्णमय स्थान पर बैठ गये और दूतों को आज्ञा देने लगे कि, 'बहुत ही जल्दी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व अन्य अमात्यों को बुलाओ। भरत, शत्रुघ्न तथा उनके मामा युधाजित् और सुमन्त्रादि सब सभासदोंको बुलाओ।' (८-१३)

ततः रथ घोडे हाथी आदि पर चढ आते हुये लोगों का शब्द सुनाई दिया। उसी समय भरत भी आये, सभासद्गण राजा दशरथकी न्याई भरत को देख आनन्दित हुए। दशरथपुत्र भरत से सुशोभित वह सभा तिमिमत्स्य और जलगज पूर्ण समुद्र के समान दीखने लगी और भरत भी

दशरथसुतशोभिता सभा सदशरथेव बभूव सा पुरा १६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकाशीतितमः सर्गः॥८१॥

द्व्यशीतितमः सर्गः। [३१०४]

तामार्यगणसंपूर्णां भरतः प्रग्रहां सभाम्।
ददर्श बुद्धिसंपन्नः पूर्णचन्द्रां निशामिव १
आसनानि यथान्यायमार्याणां विशतां तदा।
वस्त्राङ्गरागप्रभया द्योतिता सा सभोत्तमा २
सा विद्वज्जनसंपूर्णा सभासु रुचिरा तथा।
अदृश्यत घनापाये पूर्णचन्द्रेव शर्वरी ३
राज्ञस्तु प्रकृतीः सर्वाः स संप्रेक्ष्य च धर्मवित्।
इदं पुरोहितो वाक्यं भरतं मृदु चाब्रवीत् ४
तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन्।
धनधान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव ५
रामस्तथा सत्यवृत्तिः सतां धर्ममनुस्मरन्।
नाजहात्पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः ६
पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम्।
तद्भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय ७
उदीच्याश्च प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च केवलाः।

पिताके समानही होनेसे वह सभा दशरथ की सभा के समानही भासमान हुई। (१४-१६) यहाँ इक्यासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

भरत ने आर्यगण से भरी उस सभाको पूर्णमासी के चन्द्रमाके तुल्य शोभित देखा। जितने श्रेष्ठ जन आये उन सबों के वस्त्राभरण चन्दनाद्यानुलेपनो से वह सभा प्रकाशित हो रही थी। सभा सब विद्वज्जनों से पूर्ण थी, सो ऐसी शोभायमान होती थी, जैसे शरदृतुमें पूर्णमासी की रात्रि। सब मंत्री आदिकोंको देख परम धर्मज्ञ वसिष्ठ भरतसे बोले, 'तात! महाराज दशरथ इस पृथिवी को तुम्हें दे स्वर्गको चले गये। चलने से पूर्व रामको जो आज्ञा दी थी, धर्मात्मा राम ने भी पिता की उस आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया। सो यह राज्य तुमको तुम्हारे पिता व बडे भाई रामने भी दिया

कोट्यापरान्ताः समुद्रा रत्नान्युपहरन्तु ते ८
तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः।
जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया ९
सबाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा।
विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम् १०
चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः।
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत् ११
कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारक ।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि १२
ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुषोपमः।
लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा १३
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः १४
यद्धि मात्रा कृतं पापं नाहं तदपि रोचये।
इहस्थो वनदुर्गस्थं नमस्यामि कृताञ्जलिः १५
राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति १६

है। अब शीघ्र अभिषेक करके इसको भोगो। उत्तर, पश्चिम व दक्षिणके समुद्र तक वन स्वर्ग पातालादि व मध्य निवासी करोडो देशों के मनुष्य, देवता और समुद्रादि सब तुम को उत्तम रत्न देंगे।' (१-८)

यह गुरु का वचन सुन भरत शोक में डूब मनमे राम के समीप पहुंचे और सभा के बीच में विलाप करते तथा गुरु की कुछ निन्दा करते बोले कि, 'महा बुद्धिमान् धर्मात्मा रामका राज्य कौन है जो हर ले? मैं दशरथसे उत्पन्न हो राज्यापहारी कैसे होऊं? यह राज्य राम का है। वे सब भाइयों में ज्येष्ठ श्रेष्ठ दिलीप व नहुष के तुल्य हैं, वेही राज्य पानेके योग्य हैं। यदि यह नरकदायी कर्म करें तो इक्ष्वाकुवंशके दूषक हों। जो पाप कैकेयी ने किया है, वह मुझको नहीं रुचता। मैं राम के पीछे जाऊंगा। पुरुषोत्तम राम

तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ।
हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः १७
यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात् ।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा १८
सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं बलात् ।
समक्षमार्यमिश्राणां साधूनां गुणवर्तिनाम् १९
विष्टिकर्मान्तिकाः सर्वे मार्गशोधकदक्षकाः ।
प्रस्थापिता मया पूर्वं यात्रा च मम रोचते २०
एवमुक्त्वा तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
समीपस्थमुवाचेदं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम् २१
तूर्णमुत्थाय गच्छ त्वं सुमन्त्र मम शासनात् ।
यात्रामाज्ञापय क्षिप्रं बलं चैव समानय २२
एवमुक्तः सुमन्त्रस्तु भरतेन महात्मना ।
प्रहृष्टः सोऽदिशत्सर्वं यथासंदिष्टमिष्टवत् २३
ताः प्रहृष्टाः प्रकृतयो बलाध्यक्षा बलस्य च ।
श्रुत्वा यात्रां समाज्ञप्तां राघवस्य निवर्तने २४
ततो योधाङ्गनाः सर्वा भर्तॄन्सर्वान् गृहे गृहे ।

ही राज्य भोगने के योग्य है ।' (९-१६)

भरत के वचन सुन सब सभासद गण राम में चित्त लगा आनन्द के आंसू बहाने लगे । भरत ने कहा, 'यदि वन से रामको लौटा न सकूंगा, तो उनके संग में भी वनमें बसूंगा । साधुओं तथा आप लोगोंको संग ले जाकर राम के लौटानेके लिये सब उपाय करूंगा । अतः मुझे वहांके लिये यात्रा करना ही रुचता है । मार्गादि शोधक लोग प्रथम ही भेजे जा चुके हैं।' (१७-२०)

भरत इतना कह समीपस्थित सुमन्त्रसे बोले, 'हे सुमन्त्र ! शीघ्र यहांसे जाओ, सब से राम के पास चलने की बात कहो।' इस तरह भरत ने जो सुमन्त्रसे कहा तो सुमन्त्र ने जाकर सबको आज्ञा सुनाई । रामके लौटानेके

यात्रागमनमाज्ञाय त्वरयन्ति स्म हर्षिताः	२५
ते हयैर्गोरथैः शीघ्रं स्यन्दनैश्च मनोजवैः ।
सहयोपिद्बलाध्यक्षा बलं सर्वमचोदयन्	२६
सज्जं तु तद्बलं दृष्ट्वा भरतो गुरुसंनिधौ ।
रथं मे त्वरयस्वेति सुमन्त्रं पार्श्वतोऽब्रवीत्	२७
भरतस्य तु तस्याज्ञां परिगृह्य प्रहर्षितः ।
रथं गृहीत्वोपययौ युक्तं परमवाजिभिः	२८
स राघवः सत्यधृतिः प्रतापवान्ब्रुवन्सुयुक्तं दृढसत्यविक्रमः ।
गुरुं महारण्यगतं यशस्विनं प्रसादयिष्यन्भरतोऽब्रवीत्तदा २९
तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्र गच्छ बलस्य योगाय बलप्रधानान् ।
आनेतुमिच्छामि हि तं वनस्थं प्रसाद्य रामं जगतो हिताय ३०
स सूतपुत्रो भरतेन सम्यगाज्ञापितः संपरिपूर्णकामः ।
शशास सर्वान्प्रकृतिप्रधानान्बलस्य मुख्यांश्च सुहृज्जनं च ३१

लिये आज्ञा को सुन सब अत्यानन्दित हुए। सब योद्धाओंकी स्त्रियां घर घरमें सब मनुष्यों को यात्रा के लिये जल्दी कराने लगीं। सब योद्धा लोग बैलों, घोड़ों, रथों पर सवार हो, सब सेनाको आज्ञा देने लगे। भरतने सब लोगोंको तैयार हुआ देख सुमन्त्रको रथ तैयार कराने की आज्ञा दी। भरत की आज्ञा पाकर परमहर्षित हो सुमन्त्र घोडे जोत रथ लाया। (२१-२८)

तब सत्यनिष्ठ, प्रतापवान्, बिलकुल ठीक भाषण करनेवाला, दृढ एवं कभी निष्फल न होनेवाले पराक्रमको कर दिखलानेवाला भरतजी, जिसके मनमें एकही ख्याल उठ खड़ा होता था कि बड़े भारी जंगलमें गये हुए पितातुल्य यशस्वी रामको फिर नगर लौट आनेके लिए प्रवृत्त किया जाय, सुमन्त्रसे कहने लगा- 'हे सुमन्त्र ! तू शीघ्र उठकर चला जा और सेनापतियोंको आज्ञा दे कि वे सेनाओंका संगठन करना शुरु करें, क्योंकि मैं चाहता कि वनमें वास करनेहारे रामको प्रसन्न बनाकर संसारके हितके लिए वापिस बुला लूँ।' इस भाँति भरतकी स्पष्ट आज्ञा सुनकर, अपनी लालसा पूर्ण होनेके कारण सुमंत्रने सभी प्रमुख अमात्य, सेनापति एवं सुहृद्

ततः समुत्थाय कुले कुले ते राजन्यवैश्या वृषलाश्च विप्राः ।
अयूयुजन्नुष्ट्ररथान् खरांश्च नागान्हयांश्चैव कुलप्रसूतान् ३२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥८२॥

त्र्यशीतितमः सर्गः । [२१३६]

ततः समुत्थितः कल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् ।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया १
अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः ।
अधिरुह्य हयैर्युक्तान्रथान्सूर्यरथोपमान् २
नवनागसहस्राणि कल्पितानि यथाविधि ।
अन्वयुर्भरतं यान्तमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ३
षष्टीरथसहस्राणि धन्विनो विविधायुधाः ।
अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ४
शतं सहस्राण्यश्वानां समारूढानि राघवम् ।
अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम् ५
कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी ।
रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ६
प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् ।

जनोंको वह आज्ञा बतला दी । उस समय क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं ब्राह्मण उठने लगे और उन्होंने घरघर जाकर ऊँटोंकी गोडियों, गदहे, हाथी एवं कुलीन घोड़ोंको यात्राके लिए प्रस्थान करना पड़ेगा, अतः तैयार कर रखा। (२९-३२) यहाँ बयासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

प्रातः होते ही भरत रथपर चढ राम के दर्शन की इच्छासे शीघ्र ही चले । भरत के आगे मन्त्री पुरोहित गण उत्तम उत्तम रथों पर चढ चले। जब भरतके ९००० हाथी, ६०००० रथ, आयुध धारे धनुर्धर लोग असंख्य चले तथा एक लाख सवार भी पीछे पीछे चले । रामके आगमन में सन्तुष्ट हो कैकेयी, सुमित्रा व कौसल्या पालकियों में चढ चलीं। जब यह श्रेष्ट लोगोंका समुदाय राम के बुलाने को चला, तो प्रसन्न हो उन्हीं राम की

तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः ७
मेघश्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढव्रतम् ।
कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम् ८
दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः ।
तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः ९
इत्येवं कथयन्तस्ते संप्रहृष्टाः कथाः शुभाः ।
परिष्वजानाश्चान्योन्यं ययुर्नागरिकास्तदा १०
ये च तत्रापरे सर्वे संमता ये च नैगमाः ।
रामं प्रतिययुर्हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयः शुभाः ११
मणिकाराश्च ये केचित्कुम्भकाराश्च शोभनाः ।
सूत्रकर्मविशेषज्ञा ये च शास्त्रोपजीविनः १२
मायूरकाः क्राकचिका वेधका रोचकास्तथा ।
दन्तकाराः सुधाकारा ये च गन्धोपजीविनः १३
सुवर्णकाराः प्रख्यातास्तथा कम्बलकारकाः ।
स्नापकोष्णोदका वैद्या धूपकाः शौण्डिकास्तथा १४
रजकास्तुन्नवायाश्च ग्रामघोषमहत्तराः ।
शैलूषाश्च सह स्त्रीभिर्यान्ति कैवर्तकास्तथा १५

ही विविध बातें करते जाते थे। (१-७)

सब यही कहते कि 'महाबाहु, स्थिरपराक्रम, दृढव्रत रामको कब देखेंगे ? हम लोगों को देखते ही राम हमारा शोक दूर करेंगे।' एवं प्रसन्न हो रामकी कथा कहते सुनते सब अयोध्यानिवासी जाते थे। वणिक्जन भी जिनको आज्ञा दी थी और जिनको नहीं भी दी थी, वे सब तथा प्रजागण हृष्टमन हो रामको देखने चले। मणियों में छेद करनेवाले, खरादनेवाले, कुम्हार, गवई सब चले। पक्षी पकडनेवाले, क्राकचिक, विशोचक, सुधाकार तथा गन्धी, स्वर्णकार, कम्बलकार, स्नापक, उष्णोदक, धूपक तथा मद्यकार सब चले। धोबी, दर्जी, ग्रामके बूढे, नट तथा कैवर्तक आदि अपनी अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर चले। (८-१५)

समाहिता वेदविदो ब्राह्मणा वृत्तसंमताः ।
गोरथैर्भरतं यान्तमनुजग्मुः सहस्रशः १६
सुवेषाः शुद्धवसनास्ताम्रमृष्टानुलेपिनः ।
सर्वे ते विमलैर्यानैः शनैर्भरतमन्वयुः १७
प्रहृष्टमुदिता सेना सान्वयात्कैकयीसुतम् ।
भ्रातुरानयने यान्तं भरतं भ्रातृवत्सलम् १८
ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः ।
समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति १९
यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः ।
निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन् २०
उपेत्य तीरं गङ्गायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् ।
व्यवातिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी २१
निरीक्ष्यानुत्थितां सेनां तां च गङ्गां शिवोदकाम् ।
भरतः सचिवान्सर्वानब्रवीद्वाक्यकोविदः २२
निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेण सर्वतः ।
विश्रान्ताः प्रतरिष्यामः श्व इमां सागरंगमाम् २३
दातुं च तावदिच्छामि स्वर्गतस्य महीपतेः ।
और्ध्वदेहनिमित्तार्थमवतीर्योदकं नदीम् २४
तस्यैवं ब्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वा समाहिताः ।

एवं सहस्रों वेदवक्ता ब्राह्मण रथों पर चढ भरत के पीछे चले। सहस्रों अयोध्यावासी पालकी रथादि सवारियों पर चढ भरतके पीछे चले। भ्रातृवत्सल भरत के पीछे पीछे अति प्रहृष्ट व आनन्दित सेना जा रही थी। सब घोडे रथ हाथी आदि सवारियों पर चढे शृङ्गवेरपुरके पास गङ्गा पर पहुंचे। वहां रामका मित्र निषाद गुह राज्य करता था। गङ्गातटपर पहुंच भरत की सेना स्थित हुई (१६-२१)

सेना को गंगा तटपर उतरी देख भरत मंत्रियोंसे बोले कि, 'आज सब सेना यहीं ठहरे, प्रातः इस नदी को पार करेंगे। क्योंकि स्वर्गवासी महा-

न्यवेशयंस्तां छन्देन स्वेन स्वेन पृथक्पृथक् २५
निवेश्य गङ्गामनु तां महानदीं चमूं विधानैः परिबर्हशोभिनीम्।
उवास रामस्य तदा महात्मनो विचिन्तमानो भरतो निवर्तनम् २६
इत्यार्षे श्रीम॰वा॰ आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥८३॥ [३१६२]

चतुरशीतितमः सर्गः।

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गङ्गामन्वाश्रितां नदीम्।
निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्स परितोऽब्रवीत् १
महतीयमितः सेना सागराभा प्रदृश्यते।
नास्यान्तमधिगच्छामि मनसापि विचिन्तयन् २
यदा तु खलु दुर्बुद्धिर्भरतः स्वयमागतः।
स एष हि महाकायः कोविदारध्वजो रथे ३
बन्धयिष्यति वा पाशैरथवा स्मान्वधिष्यति।
अनु दाशरथिं रामं पित्रा राज्याद्विवासितम् ४
संपन्नां श्रियमन्विच्छंस्तस्य राज्ञः सुदुर्लभाम्।
भरतः कैकयीपुत्रो हन्तुं समधिगच्छति ५
भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम।
तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत ६

राज को यहां जलदान करना चाहते हैं, प्रातः तर्पण करेंगे।' भरतका ऐसा वचन सुन सब लोग उतरने लगे। तब उस सेनाको वहाँ गंगा तटपर रहनेकी कोशिश करके भरत महात्मा रामके लौटानेके विषयमें चिंता करने लगा। (२०-२६)

यहाँ तिरासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

गंगातीर पर भरतकी सेनाको देख गुह ने स्वजातियोंसे कहा कि 'यह बडी सेना जो दूर तक फैली हुई है, साथ ले यदि यदि भरत दुर्बुद्धि धारण कर यहां आये हैं और राम से वैरभाव रखते हुए निर्वासित राम को मार निष्कंटक राज्य अवश्य करना चाहते होंगे। मैं समझता हूं, भरत अपने पिता का राज्य राम को मार कर भोगना चाहते हैं। पर राम मेरे

तिष्ठन्तु सर्वदाशाश्च गङ्गामन्वाश्रिता नदीम् ।
वलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः ७
नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम् ।
संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत् ८
यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति ।
इयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति ९
इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च ।
अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः १०
तमायान्तं तु संप्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत् ११
एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः ।
कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो भ्रातुश्च ते सखा १२
तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो गुहः ।
असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ १३
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुमन्त्राद्भरतः शुभम् ।
उवाच वचनं शीघ्रं गुहः पश्यतु मामिति १४
लब्ध्वानुज्ञां संप्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः ।

स्वामी और सखा हैं, उन के प्रयोजन के लिये अपने अपने आयुध ले गङ्गा की तराई में बैठो। तुम सब गंगा के घाट स्थित रहो। पांच सौ नावें यहां लगाई जायं, हरेक में सौ सौ जवान लडाई करने में कुशल तत्पर बैठे रहें। यदि भरत राम से सन्तुष्ट होंगे, तो यह उनकी सेना सकुशल गंगा के पार उतर जायगी।' इतना कह भरत की भेंट के लिये वनकी चीजें ले गुह चला। (१-१०)

उस को आते देख सुमन्त्र नम्रतासे भरत से बोले कि, ' यह जो ज्ञातियों सहित आता है, दण्डकारण्यनिवासी यहां का राजा है और राम का सखा है। यह निश्चय ही जहां राम लक्ष्मण होंगे, जानता होगा।' सुमन्त्र की बात सुन भरतने आज्ञा दी कि 'गुह को सामने आने दो।' (११-१४)

आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत् १५
निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् ।
निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस १६
अस्ति मूलफलं चैतन्निषादैः स्वयमर्जितम् ।
आर्द्रं शुष्कं तथा मांसं वन्यं चोच्चावचं तथा १७
आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम् ।
अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि १८

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥ [३१८०]

पञ्चाशीतितमः सर्गः ।

एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम् ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् १
ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे ।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि २
इत्युक्त्वा स महातेजा गुहं वचनमुत्तमम् ।
अब्रवीद्भरतः श्रीमान्पन्थानं दर्शयन्पुनः ३
कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं पथा ।
गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः ४

यह सुन स्वजातियों के साथ हाथ जोड़ सामने आ गुह भरत से बोला, 'आपने निज आगमन से सावधान न कर मुझे छला है, तथापि इस अपने दास के घरमें रहिये । ये निषाद लोग मूल फलादि और शुष्क आर्द्र मांस तथा वन के अन्य पदार्थ लाये हैं, ग्रहण कीजिये । इस प्रकार अच्छा भोजन करके इस रात्र तुम यहीं रहो और कल मेरी पूजा लेकर आगे चलो'(१५–१८)

यहाँ चौरासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब गुह ने भरत से ऐसा कहा तो भरत उस से बोले कि, 'तुम मेरे परम गुरु राम की सेवा कर ही चुके हो और अब मेरी सेना को निमन्त्रण देते हो, उस से मानों सब कुछ कर चुके ।' यह कह भरत गुह से फिर बोले कि 'यहां से किस मार्ग हो भरद्वाज के आश्रम पर पहुंचेंगे ? क्योंकि यह

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो गहनगोचरः ५
दाशास्त्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः।
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ६
कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ७
तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः।
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत् ८
मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ९
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्।
बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते १०
स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम्।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः ११
धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि १२
शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि १३

गंगा का तटदेश बडा दुरन्वय ज्ञात होता है।' भरत के ऐसे बचन सुन गुह हाथ जोड बोला– 'इस देश के वृत्तान्तज्ञ मनुष्य व हम आपके पीछे पीछे चलेंगे। पर आप की इस बडी सेना को देख चित्त में शंका होती है कि राम के अनिष्ट के लिये तो नहीं जाते हो?' (१-७)

ऐसा कहते हुये गुह से मधुर वाणी से भरत बोले कि 'ऐसा दुष्ट समय न आवे कि तुम ऐसी आशंका करो। श्रीराम मेरे बडे भाई हैं। श्रीराम को मैं वनसे लौटाने के लिये जाता हूं, अन्य बुद्धि से नहीं।' भरत के ऐसे वचन सुन गुह बडा आनंदित हुआ और बोला– 'हे भरत! तुम धन्य हो, क्यों कि बिना यत्न राज्यको पाकर फिर छोडना चाहते हो। आपकी यह कीर्ति

एवं संभाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा ।
जगाम नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत १४
संनिवेश्य स तां सेनां गुहेन परितोषितः ।
शत्रुघ्नेन समं श्रीमाञ्छयनं पुनरागमत् १५
रामचिन्तामयः शोको भरतस्य महात्मनः ।
उपस्थितो ह्यनर्हस्य धर्मप्रेक्षस्य तादृशः १६
अन्तर्दाहेन दहनः संतापयति राघवम् ।
वनदाहाग्निसंतप्तं गूढोऽग्निरिव पादपम् १७
प्रसृतः सर्वगात्रेभ्यः स्वेदं शोकाग्निसंभवम् ।
यथा सूर्यांशुसंतप्तो हिमवान्प्रसृतो हिमम् १८
ध्याननिर्दरशैलेन विनिःश्वसितधातुना ।
दैन्यपादपसङ्घेन शोकायासाधिशृङ्गिणा १९
प्रमोहानन्तसत्त्वेन संतापौषधिवेणुना ।
आक्रान्तो दुःखशैलेन महता कैकयीसुतः २०
विनिःश्वसन्वै भृशदुर्मनास्ततः प्रमूढसंज्ञः परमापदं गतः ।
शमं न लेभे हृदयज्वरार्दितो नरर्षभो यूथहतो यथर्षभः २१
गुहेन सार्धं भरतः समागतो महानुभावः सजनः समाहितः ।

निरन्तर बनी रहेगी कि तुम बन में राम को लौटाने के लिये जाते हो।' एवं भरत से गुह बातें कर रहा था कि रात हो गई। (८-१४)

गुह द्वारा सत्कारित सेना सन्तुष्ट हो ठौर ठौर सोने लगी और भरत शत्रुघ्न एक आसन पर स्थित हुए। उस समय श्रीराम के विषयका चिन्तारूपी शोक भरत को हुआ। भरत के अन्त:करणको शोकाग्नि जलाने लगा। शोकसन्तप्त होने से भरत के सब अंगों से पसीना निकलने लगा। भरत ऐसे शोक रूपी पर्वत से दबाये गये जिस में ध्यानही शिला है, मोहही अनन्त जीव, शोक ही सन्ताप, औषधि बांस हैं। चिन्तासे व्याकुल, अत्यन्त खिन्न और अतिशय मूर्च्छित होकर दुःखसे नि श्वास करनेवाले उस पुरुषश्रेष्ठ भरतको यूथभ्रष्ट वृषभ के समान चैन न पड़ा। सारांश सपरिवार, एकाग्र-

सुदुर्मनास्तं भरतं तदा पुनः शनैः समाश्वासयदग्रजं प्रति २१
इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः॥८५॥[३२०२]

षडशीतितमः सर्गः।

आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः।
भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः १
तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम्।
भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रुवम् २
इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता।
प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन ३
उचितोऽयं जनः सर्वो दुःखानां त्वं सुखोचितः।
धर्मात्मंस्तस्य गुप्त्यर्थं जागरिष्यामहे वयम् ४
न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन।
मोत्सुको भूर्ब्रवीम्येतदथ सत्यं तवाग्रतः ५
अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः।
धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थकामौ च केवलौ ६
सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिः सह ७

चित्त और महापराक्रमी भरत की गुह से मुलाकात होनेपर वह राम के विषयमें अतिशय खिन्न हुआ और उसकी गुहने सांत्वना की। (१५-२२)

यहाँ पचासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

भरत को व्याकुल देख गुह महात्मा लक्ष्मण का रामकी ओर सद्भाव बखान करने लगा। 'हे भरत' जब राम सो रहे और लक्ष्मण भाईकी रक्षा करनेके लिये बैठे, तब मैंने उनसे कहा कि 'तात! यह सुख शय्या तुम्हारे लिये बना कर बिछाई गई है, अतः इस पर सोइये। आप सदा सुख योग्य हैं, राम की रक्षा हम लोग बराबर जागकर करेंगे। रामसे अधिक प्यारा हमें इस संसारमें निःसंदेह कोई नहीं है। आपके आगे मैं सत्यही कहता हूं। रामहीके प्रसाद से इस लोकमें यश धर्म, तथा अर्थ काम चाहता हूं। सोते

न हि मेऽविदितं किंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा।
चतुरङ्गं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि ८
एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना।
अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ९
कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा १०
यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि।
तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया ११
महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः।
एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः १२
अस्मिन्प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति १३
विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः।
निर्घोषो विरतो नूनमद्य राजनिवेशने १४
कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम।
नाशंसे यदि ते सर्वे जीवेयुः शर्वरीमिमाम् १५

हुए राम की रक्षा में धनुर्बाण ग्रहण कर अपने सजातियों समेत करता रहूंगा। हम इस बनके प्रत्येक चोर व अन्यान्य जीव से परिचित हैं, अतः चतुरङ्गिनी सेना भी आवे, तो उसको भी मैं सह सकता हूं।' (१-८)

'जब मैंने ऐसा कहा, तो लक्ष्मणने धर्म ही की बात कहके मुझ को शिक्षा दी कि- 'सीता सहित राम भूमिमें शयन करते हैं, तो मुझको नींद कैसे आवेगी? हे गुह! जिन राम के आगे सग्राम में देवता दैत्यादि कोई खडे नहीं हो सकते, वे आज तृणकी शय्यापर सोते हैं। इन रामको दशरथ बडी तपस्यासे सदृशलक्षणयुक्त पुत्र पाया है। इन के यहां चले आने के पीछे महाराज बहुत दिनों तक न जीवेंगे। सब स्त्रियां जोरसे वहां रो रो कर चुप हो गई थीं, किसी को अधिक रोनेकी सामर्थ्य नहीं थी, सो राजमन्दिर में आज सन्नाटा होगा। कौसल्या, राजा व मेरी माता ये तीनों इस रात्रिमें

उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसनकर्षिताः ६
ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन्।
कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे ७
वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपस्विनी।
परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा ८
पुत्र व्याधिर्न ते कच्चिच्छरीरं प्रति बाधते।
अस्य राजकुलस्याद्य त्वदधीनं हि जीवितम् ९
त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते।
वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः १०
कच्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र श्रुतं ते किंचिदप्रियम्।
पुत्रे वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते ११
स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः।
कौसल्यां परिसान्त्व्येदं गुहं वचनमब्रवीत् १२
भ्राता मे क्वावसद्रात्रिं क्व सीता क्व च लक्ष्मणः।
अस्वपच्छयने कस्मिन् किं भुक्त्वा गुह शंस मे १३

और शोकसे मूर्छित हो गिर पडे। तब भरतकी सब माताएं जो उपवास करनेसे दीन हो गईं थीं, उनके निकट आईं। कौसल्याने पास पहुंच भरतको उठा हृदयसे लगा लिया। तपस्विनी कौसल्या शोकसे व्याकुल हो भरतसे पूछने लगी। (१–८)

'हे पुत्र! इस समय तुम्हारे शरीरमें कोई रोग तो उत्पन्न नहीं हुआ है? ऐसा न हो, क्योंकि इस कुलके जीवन तुम्हीं हो। हे पुत्र! भाई सहित राम तो वनको चले गये, तथा राजा स्वर्गको गये। अब तुम्हीं हमारे नाथ हो। हे पुत्र! लक्ष्मणके विषयमें कोई अप्रिय तो नहीं सुना अथवा रामके विषयमें तो कोई अप्रिय वचन नहीं सुना?' भरत मुहूर्त भर तक निःस्तब्ध रहे, पुनः सावधान हो कौसल्याको समझा कर गुहसे बोले कि, 'उस रातको राम, लक्ष्मण तथा सीता कहां ठहरी थीं, ये सब किस स्थानपर सोये थे तथा उन्होंने क्या क्या भोजन किया था?' (९–१३)

सोऽब्रवीद्भरतं हृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः ।
यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहिते तिथौ　　१४
अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च ।
रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोऽपहृतं मया　　१५
तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः ।
न हि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन्　　१६
नह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा ।
इति तेन वयं सर्वे अनुनीता महात्मना　　१७
लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना ।
औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया　　१८
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा ।
वाग्यतास्ते त्रयः संध्यां समुपासन्त संहिताः　　१९
सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम् ।
स्वयमानीय बर्हींषि क्षिप्रं राघवकारणात्　　२०
तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सहसीतया ।
प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत्स लक्ष्मणः　　२१
एतत्तदिङ्गुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम् ।

यह सुन हर्षित हो गुहने रामके साथ जैसा कुछ व्यवहार किया था, कहने लगा कि 'रामके भोजनके लिये नाना पदार्थ मैं लाया था, पर रामने क्षत्रियोंका धर्म विचार कर कुछ न लिया। और कहा कि 'हे मित्र! हम लोग सदा सबको कुछ देते हैं, पर किसीका दान नहीं लेते।' केवल लक्ष्मण अपने हाथोंमें गङ्गाजल भर लाये, वही रामने पान किया। आप व सीता दोनों उपवास ही करके रह गये। शेष जल पान कर लक्ष्मण भी रह गये। इसी स्थानपर तीनोंने सन्ध्योपासन किया। (१४-१९)

'तदनु लक्ष्मण अपने हाथसे कुश लाये और सुन्दर आसन बना दिया। उसके ऊपर राम सीता सहित बैठे। लक्ष्मण दोनोंके पैर धो वहांसे चले आये। इस इंगुदी वृक्षके नीचे यह जो तृण पड़ा है, इसी पर राम जानकी

अस्मिन्रामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ २२,
नियम्य पृष्ठे तु तलांगुलित्रवाञ्शरैः सुपूर्णाविपुधी परंतपः ।
महद्धनुः सज्यमुपोह्य लक्ष्मणो निशामतिष्ठत्परितोऽस्य केवलम् २३
ततस्त्वहं चोत्तमबाणचापभृत्स्थितोऽभवं तत्र स यत्र लक्ष्मणः ।
अतन्द्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकैर्महेन्द्रकल्पं परिपालयं तदा २४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्ताशीतितमः सर्गः॥८७॥

अष्टाशीतितमः सर्गः । [१२५१]

तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः ।
इंगुदीमूलमागम्य रामशय्यामवेक्षत १
अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः ।
शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम् २
महाराजकुलीनेन महाभागेन धीमता ।
जातो दशरथेनोर्व्यां न रामः स्वप्तुमर्हति ३
अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये ।
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ४
प्रासादाग्रविमानेषु वलभीषु च सर्वदा ।
हैमराजतभौमेषु वरास्तरणशालिषु ५

सहित सोये थे । जब वे शयन करने लगे, तो धनुषपर प्रत्यंचा चढाये, लक्ष्मण रात्रिभर चारों ओर घूमते रहे । तब जहाँ लक्ष्मण था, वहाँ जाकर उत्तम बाण और धनुष लेकर मैंभी खडा रहा और मेरे रक्षण कार्यमें दक्ष ज्ञातियों सहित उस इन्द्रतुल्य रामका रक्षण करता रहा ।' (२०-२४)

यहाँ सत्तासीवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरत अपने मन्त्रियोंके साथ उस इंगुदी वृक्षके नीचे जा रामकी शय्याको देखने लगे और माताओंसे बोले कि ' यहां पर श्रीरामने उस रात्रिको शयन किया था । ये कुश उन्हींके आसनके हैं । महाराजाधिराज दशरथके पुत्र हो ऐसे आसनपर सोनेके योग्य नहीं । अति कोमल बिछौने पर शयन कर अब इस भूमिपर पुरुषसिंह राम कैसे सोते हैं ? जो राम धवरहरोंके ऊपर,

पुष्पसञ्चयचित्रेषु चन्दनागुरुगन्धिषु ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशेषु शुकसङ्घरुतेषु च ६
प्रासादवरवर्येषु शीतवत्सु सुगन्धिषु ।
उषित्वा मेरुकल्पेषु कृतकाञ्चनभित्तिषु ७
गीतवादित्रनिर्घोषवराभरणनिःस्वनैः ।
मृदङ्गवरशब्दैश्च सततं प्रतिबोधितः ८
बन्दिभिर्वन्दितः काले बहुभिः सूतमागधैः ।
गाथाभिरनुरूपाभिः स्तुतिभिश्च परंतपः ९
अश्रद्धेयमिदं लोके न सत्यं प्रतिभाति मा ।
मुह्यते खलु मे भावः स्वप्नोऽयमिति मे मतिः १०
न नूनं दैवतं किंचित्कालेन बलवत्तरम् ।
यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः ११
यस्मिन्विदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना ।
दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च १२
इदं शश्या मम भ्रातुरिदमावर्तितं शुभम् ।
स्थण्डिले कठिने सर्वं गात्रैर्विमृदितं तृणम् १३

विमानोंपर तथा कूलागारोंपर जहाँ कि पलंगादिपर नाना उत्तम बिछौने बिछाये जाते थे, उन पर सोते थे, जिनके ऊपर पुष्प चुन दिये जाते व चन्दनादि सुगन्धित वस्तु धरी जातीं और शुक, सारिका आदि शुभ पक्षी बोलते थे। श्रेष्ठ धवरहरों पर जहाँ शीतल सुगन्धित वस्तु धरी जाती थीं, उनमें शयन करते थे, नाना प्रकारका गाना उत्तम उत्तम भूषणोंका शब्द सुनके जागते थे, प्रात सूत मागध बन्दी गण वन्दना तथा स्तुति करते थे, उन रामका इस तृणमय भासन पर शयन करना मुझे सत्य प्रतीत नहीं होता। मेरा यह मोह तो नहीं है अथवा यह स्वप्नकी बात तो नहीं है? (१-१०)

'निश्चय ही कालसे बलवत्तर कोई नहीं है, जिसके वश हो राम भी भूमि में सोये। जिस कालकी गतिमें पड जनकपुत्री दशरथकी पतोहू सीता भी

मन्ये साभरणा सुप्ता सीतास्मिञ्शयने शुभा ।
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकबिन्दवः १४
उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा ।
तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः १५
मन्ये भर्तुः सुखा शय्या येन बाला तपस्विनी ।
सुकुमारी सती दुःखं न विजानाति मैथिली १६
हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम ।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् १७
सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः ।
सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् १८
कथमिन्दीवरश्यामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः ।
सुखभागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः १९
धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते २०
सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम् ।
वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना २१

भूमिमें सोई। यह शय्या मेरे भाईकी है। देखो, जैसे जैसे करवटें उन्होंने ली हैं। विदित होता है कि इस शय्यापर सीता सब भूषण पहने ही सो गई हैं, उनके गहनोंसे सुवर्णबिन्दु ठौर ठौर गिर पडे। इस स्थानपर सीताने अपनी साडी रख दी थी, क्योंकि उसीके रेशमी डोरे कुशोंमें लगे हुए दीख पडते हैं। पतिको स्यात् शय्या सुखकर लगी हो, क्योंकि जो ऐसा न होता तो सुकुमारी, तपस्विनी सीता दुःखोंको विचार इस पर शयन न करती। हा! मैं बड़ा निर्लज्ज हूं जिसके लिये स्त्री सहित राम अनाथके समान ऐसी शय्यापर सोये। हा! सार्वभौम कुलमें उत्पन्न हो सबके प्रिय उत्तम व प्रिय राज्य छोड, अरुणनयन प्रियदर्शन दुःखके अयोग्य राम भूमिमें सोते हैं। महाभाग लक्ष्मण धन्य है, जो ऐसे कुसमयमें श्रीरामके पीछे पीछे जाते है। (११-२०)

अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मे।
गते दशरथे स्वर्गं रामे चारण्यमाश्रिते २२
न च प्रार्थयते कश्चिन्मनसापि वसुंधराम्।
वने निवसतस्तस्य बाहुवीर्याभिरक्षिताम् २३
शून्यसंवरणारक्षामयन्त्रितहयद्विपाम्।
अनावृतपुरद्वारां राजधानीमरक्षिताम् २४
अप्रहृष्टबलां शून्यां विषमस्थामनावृताम्।
शत्रवो नाभिमन्यन्ते भक्ष्यान्विषकृतानिव २५
अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् २६
तस्याहमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने।
तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति २७
वसन्तं भ्रातुरर्थाय शत्रुघ्नो मानुवत्स्यति।
लक्ष्मणेन सहायोध्यामार्यो मे पालयिष्यति २८
अभिषेक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः।
अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम् २९

'पति के पीछे जानेके कारण सीता के भी सब कार्य सिद्ध हो गये। राजा के स्वर्ग जाने से तथा राम के वन आने से यह पृथिवी बिना खेवट की नाव के समान हो गई। इस में कोई भी इस पृथिवी की मनमें भी इच्छा नहीं करता, क्योंकि यह राम ही के पराक्रम से रक्षित थी। यह अयोध्या अब शून्य पड़ी है, रक्षक कोई नहीं है, फाटकोंका भी कोई रक्षक नहीं है। सब लोग अनवस्थितचित्त हैं, इसीसे बाहरसे कोई रक्षा नहीं करता। अब आज से मैं भी फल मूल ही खाऊंगा, जटा चीरादि धारण करूंगा, तथा भूमि में तृण ही बिछा कर सोऊंगा। चौदह वर्ष वन में रहने की प्रतिज्ञा जो बड़े भाई ने की है, उसको पूर्ण करने के लिये मैं १४ वर्ष तक वन में रहूंगा। जब तक मैं वन में रहूंगा, तब तक शत्रुघ्न मेरे साथ रहेंगे और लक्ष्मण सहित राम अयोध्या का शासन करेंगे। ब्राह्मणगण अयोध्या में

आवासमादीपयतां तीर्थं चाप्यवगाहताम्।
भाण्डानि चाददानानां घोषस्तु दिवमस्पृशत् १५
पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः।
वहन्त्यो जनमारूढं तदा संपेतुराशुगाः १६
नारीणामभिपूर्णास्तु काश्चित्काश्चित्तु वाजिनाम्।
काश्चित्तत्र वहन्ति स्म यानयुग्यं महाधनम् १७
तास्तु गत्वा परं तीरमवरोप्य च तं जनम्।
निवृत्ताः काण्डचित्राणि क्रियन्ते दाशबन्धुभिः १८
सवैजयन्तास्तु गजा गजारोहैः प्रचोदिताः।
तरन्तः स्म प्रकाशन्ते सपक्षा इव पर्वताः १९
नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे।
अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः २०
सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गा दाशैः संतारिता स्वयम्।
मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम् २१
आश्वासयित्वा च चमूं महात्मा निवेशयित्वा च यथोपजोषम्।
द्रष्टुं भरद्वाजमृषिप्रवर्यमृत्विक्सदस्यैर्भरतः प्रतस्थे २२

कौसल्याके चढनेके पीछे और जो स्त्रियां थीं, सबके चढनेके बाद गाडी आदि और सामग्री चढाई गई। (८-१४)

चलनेके समय कोलाहल ऐसा हुआ कि अन्तरिक्ष तक जा पहुंचा। नावोंमें ऐसी पताकाएं लगाई गई थीं कि जिससे भरी हुई नावें उडी चली जाती थीं। कोई कोई नावें स्त्रियोंसे, कोई घोडोंसे, किसी पर पालकी आदि तथा किसी पर धन लदा था। वे सब नावें उस पार पहुंचीं और यात्रियोंको उतारा। इन सबोंके पीछे महावतोंने अपने अपने हाथी ध्वजा सहित जलमें उतारे। कोई कोई बडी बडी नावों पर चढ कर, कोई कोई पतवारसे और धनहियों पर चढ कर तथा कोई तैर होकर पार उतर गये। भरतकी वह दासोंसे उतारी हुई पुण्यरूपिणी सेना मैत्र मुहूर्तमें प्रयागके उत्तम वनको गई। तब उस सेनाको सुखसे विश्रांति देकर उसे प्रयागवनमें

स ब्राह्मणस्याश्रममभ्युपेत्य महात्मनो देवपुरोहितस्य ।
ददर्श रम्योटजवृक्षदेशं महद्वनं विप्रवरस्य रम्यम् २३

इत्यार्षे श्रीम०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोननवतितमः सर्गः॥८९॥ [३३०४]

नवतितमः सर्गः ।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः ।
जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः १
पद्भ्यामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः ।
वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोहितम् २
ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः ।
मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम् ३
वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः ।
संचचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन् ४
समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः ।
अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम् ५
ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात्फलानि च ।
आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले ६

रखा तथा ऋत्विज़ और सदस्योंको साथ लेकर मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजका दर्शन लेनेके लिये महात्मा भरत आगे चला और उस देवपुरोहितके आश्रममें जाकर उसका रम्य महावन उसने देख लिया। (१५-२३)

यहाँ सर्ग उनानवाँवाँ समाप्त हुआ।

आश्रमसे एक कोस दूर सेनाको ठहरा भरद्वाजके आश्रम पर भरत गये वसिष्ठको आगे कर रेशमी वस्त्र धारे भरत पैदल गये। अत्यंत समीप पहुंच मन्त्रियोंको वहीं छोड केवल वसिष्ठको आगे कर उनके पीछे पीछे भरत गये। भरद्वाज वसिष्ठको आते देख अर्घ्यके लिये जल लानेका आदेश कर स्वयं आगे मिलनेको बढे। आगे बढ वसिष्ठसे परस्पर अभिवादन किया, भरतने प्रणाम किया, भरद्वाजने जान लिया यह दशरथपुत्र हैं। सबको अर्घ्यादिके लिये जल दिया, तदनु प्रथम वसिष्ठसे फिर भरतसे कुशल पूछी।

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः प्रतीतरूपो भरतोऽब्रवीद्वचः ।
चकार बुद्धिं च तदाश्रमे तदा निशानिवासाय नराधिपात्मजः॥२४

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवतितम. सर्गः॥९०॥ [३३२८]

एकनवतितमः सर्गः ।

कृतबुद्धिं निवासाय तत्रैव स मुनिस्तदा ।
भरतं कैकयीपुत्रमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् १
अब्रवीद्भरतस्त्वेनं नन्विदं भवता कृतम् ।
पाद्यमर्घ्यमथातिथ्यं वने यदुपपद्यते २
अथोवाच भरद्वाजो भरतं प्रहसन्निव ।
जाने त्वां प्रीतिसंयुक्तं तुष्येस्त्वं येनकेनचित् ३
सेनायास्तु तवैतस्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् ।
मम प्रीतिर्यथारूपा त्वमर्हो मनुजर्षभ ४
किमर्थं चापि निक्षिप्य दूरे बलमिहागतः ।
कस्मान्नेहोपयातोऽसि सबलः पुरुषर्षभ ५

रहते हैं। वहां प्रातः जाना, आज इस कुटीपर रहिये।' भरतने यह सुन कर कहा, बहुत अच्छा, और सब सेना सहित मुनिके आश्रममें रहनेका निश्चय किया (१९-२५) यहाँ नब्बेवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

उस रात्रिको वहीं आश्रममेंही ठहरनेका निश्चय किये हुए भरतको भरद्वाज मुनिवरने आदरसत्कार करनेके लिए भोजनका न्योता दिया और जब भरतने कहा कि ' वनमें जो यह अर्घ्य एवं पैर धोनेका जल वगैरह मिल सकता है, उसके आधारसे आपने मेरी आवभगत कर डाली है। तो मुस्कराकर मुनिने कहा ' मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुझपर प्रेम है, इस लिए तू किसीभी ढंगकी सेवा की जाए, अवश्य प्रसन्न रहेगा, इस संबंधमें मुझको सन्देह नहीं, लेकिन मैं चाहता कि तुम्हारी इस सेनाके भोजनका प्रबंध मैं कर दूं। अत मेरी इच्छाका अनुमोदन तुम्हे करनाही होगा। तुम मानवोंमे श्रेष्ठ हो। भला तू किसलिए सेनाको दूर रखकर इधर आ पहुँचा है ? साथमें सेना चली आती तो क्या बिगडता ? ' (१-५)

भरतः प्रत्युवाचेदं प्राञ्जलिस्तं तपोधनम्।
न सैन्येनोपयातोऽस्मि भगवन्भगवद्भयात्　६
राज्ञा हि भगवन्नित्यं राजपुत्रेण वा तथा।
यत्नतः परिहर्तव्या विषयेषु तपस्विनः　७
वाजिमुख्या मनुष्याश्च मत्ताश्च वरवारणाः।
प्रच्छाद्य भगवन्भूमिं महतीमनुयान्ति माम्　८
ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेषूटजांस्तथा।
न हिंस्युरिति तेनाहमेक एवागतस्ततः　९
आनीयतामितः सेनेत्याज्ञप्तः परमर्षिणा।
तथानुचक्रे भरतः सेनायाः समुपागमम्　१०
अग्निशालां प्रविश्याथ पीत्वापः परिमृज्य च।
आतिथ्यस्य क्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत्　११
आह्वये विश्वकर्माणमहं त्वष्टारमेव च।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम्　१२

ऐसा पूछनेपर हाथ जोडकर तपरूपी धन रखनेवाले मुनिसे भरत बोला, 'हे भगवन्! आपके आश्रमको कष्ट न पहुँचे, इस आशंकाके मारे मैं अपने साथ सेना लेकर यहां नहीं आया, क्योंकि नरेश तथा राजकुमारके चाहिए कि वह अपने देशमें निवास करनेवाले तपस्वी जनको पीडा न हो इसलिए सचेष्ट रहे। मुनिवर! बढिया घोडे, मानव तथा मतवाले हाथी बडे भारी भूभागको व्याप्त करके मेरे पीछेपीछे चले आ रहे हैं। इस कारण, वे कहीं पेड, जल, भूविभाग तथा आश्रममें मौजूद पर्णकुटियोंका विध्वंस न करने लगे, उन्हें उधरही रोककर अकेलाही मैं इधर आ पहुँचा।" जब महर्षिने आज्ञा दे डाली कि 'सेनाको इधर ले आ.' तुरन्त भरतने सारी सेनाको उधर बुला लिया। (६-१०)

पश्चात् अग्निशालामें घुसकर होठ धोनेके साथही आचमन करके भरद्वाजजीने अतिथि-सत्कारका प्रबंध करनेके लिए विश्वकर्माजीको पुकारा- "मैं चाहता कि इस सैन्यका ठीक सत्कार मुझसे हो जाए, इसलिए मैं विश्वकर्मा तथा

आह्वये लोकपालांस्त्रीन्देवाञ्शक्रपुरोगमान्।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम् १३
प्राक्स्रोतसश्च या नद्यस्तिर्यक्स्रोतस एव च।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च समायान्त्वद्य सर्वशः १४
अन्याः स्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम्।
अपराश्चोदकं शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम् १५
आह्वये देवगन्धर्वान्विश्वावसुहहाहुहून्।
तथैवाप्सरसो देवगन्धर्वैश्चापि सर्वशः १६
घृताचीमथ विश्वाचीं मिश्रकेशीमलम्बुषाम्।
नागदत्तां च हेमां च सोमामद्रिकृतस्थलीम् १७
शक्रं याश्चोपतिष्ठन्ति ब्रह्माणं याश्च भामिनीः।
सर्वास्तुम्बुरुणा सार्धमाह्वये सपरिच्छदाः १८
वनं कुरुषु यद्दिव्यं वासोभूषणपत्रवत्।
दिव्यनारीफलं शश्वत्तत्कौबेरमिहैव तु १९

त्वष्टासे इधर पधारने के लिए कहता हूं, इस आतिथ्यकी पूरी तैयारी मैं कर सकूं; वैसेही यम, वरुण, कुबेर, तीनों दिक्पाल और इन्द्र जैसे देवोंको मैं बुलाता हूं; मेनाका अतिथिसत्कार करनेकी इच्छा होती है, इसलिए मैं उसकी अच्छी तैयारी कर लूं, ऐसी व्यवस्था हो । इस भूमंडलपर तथा द्युलोक में भी उत्तरको ओर बहनेवाली और पूरबकी तरफ जानेवाली जो कोईभी नदियों हों, वे सभी इधर पधारें। उनमेंसे कोई नदियाँ मैरेय नामक मद्यका प्रवाह बहाना शुरु कर दें, तो कुछ भली प्रकार तैयार की हुई सुराका ओघ प्रारंभ करें और नदियाँ गन्नेके रसकी भाँति मिठासभरा एवं ठंडा पानी बहाना शुरु कर लें। (१३-१५)

'देवगन्धर्वों तथा उनके साथ रहनेवाली सभी अप्सराओंको मैं पुकारता हूँ। ऊपर लिखे नामवाली अप्सराओं और पहाडपर रहनेवाली सोमासे तथा इन्द्र एवं ब्रह्मदेवकी सेवा करनेवाली अलंकृत देवांगनाओंसे मैं कहता हूँ कि वे तुंबुरुके साथ इधर चली आयें। उत्तर कुरुदेशमें बसा हुआ कुबेर-

इह मे भगवान्सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम् ।
भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु २०
विचित्राणि च माल्यानि पादपप्रच्युतानि च ।
सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च २१
एवं समाधिना युक्तस्तेजसाप्रतिमेन च ।
शिक्षास्वरसमायुक्तं सुव्रतश्चाब्रवीन्मुनिः २२
मनसा ध्यायतस्तस्य प्राङ्मुखस्य कृताञ्जलेः ।
आजग्मुस्तानि सर्वाणि दैवतानि पृथक्पृथक् २३
मलयं दर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः ।
उपस्पृश्य ववौ युक्त्या सुप्रियात्मा सुखं शिवः २४
ततोऽभ्यवर्षन्त घना दिव्याः कुसुमवृष्टयः ।
देवदुन्दुभिघोषश्च दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे २५
प्रववुश्चोत्तमा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा वीणाः प्रमुमुचुः स्वरान् २६

का वह दिव्य और शाश्वत चैत्ररथ वन जहाँपर वस्त्र तथा भूषण पेड़के पत्ते बन जाते हैं, दिव्य महिलाएं फल बन जाती हैं, इधर उपस्थित हो। भाँतिभाँतिका बढ़िया प्रचुर अन्न जैसे भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, सुरा सदृश पेय और तरह तरहके मांसान्न भगवान् सोम तैयार कर ले तथा पेड़ोंपर स्वयमेव अनूठे फूल खिलने लग जायँ।" (१६-२१)

इस भाँति अद्वितीय तेजसे पूर्ण और समाधि लगाये बैठे व्रतानुचरण ठीक तरह करनेवाले भरद्वाजजीने शिक्षामें कहे ढंगपरसे वर्णोच्चारसंपन्न निमंत्रण किया। जब कि वे मुनि हाथ जोड़े हुए पूरबकी ओर मुँह करके मनमें ध्यानाविष्ट हो चुके तो वे सभी देवता एकके पीछे एक उनके निकट आने लगे। मलय तथा दर्दुर नामक चन्दनयुक्त पहाड़ोंको छूकर पसीना हटानेवाला हितकारक तथा मनको खूब प्रसन्न करनेवाला पवन उचित प्रकारसे सुखदायक हो बहने लगा। मेघोंसे दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और सभी दिशाओंमें देवदुन्दुभिनाद सुनाई देने लगा। दूसरे

स शब्दो द्यां च भूमिं च प्राणिनां श्रवणानि च।
विवेशोच्चावचः श्लक्ष्णः समो लयगुणान्वितः २७
तस्मिन्नेवं गते शब्दे दिव्ये श्रोत्रसुखे नृणाम्।
ददर्श भारतं सैन्यं विधानं विश्वकर्मणः २८
बभूव हि समा भूमिः समन्तात्पञ्चयोजनम्।
शाद्वलैर्बहुभिश्छन्ना नीलवैदूर्यसंनिभैः २९
तस्मिन्बिल्वाः कपित्थाश्च पनसा बीजपूरकाः।
आमलक्यो बभूवुश्च चूताश्च फलभूषिताः ३०
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च वनं दिव्योपभोगवत्।
आजगाम नदी सौम्या तीरजैर्बहुभिर्वृता ३१
चतुःशालानि शुभ्राणि शालाश्च गजवाजिनाम्।
हर्म्यप्रासादसंयुक्ततोरणानि शुभानि च ३२
सितमेघनिभं चापि राजवेश्म सुतोरणम्।

भी बढिया पवनके झकोरे बहने लगे, अप्सराओंके झुंड नाचने लगा, देव एवं गन्धर्व गाने लगे और वीनकी सुमधुर ध्वनि उठने लगी।(२२–२६)

मधुर, सम और लय युक्त वाद्यध्वनि स्वर्ग, भूमि एवं प्राणिमात्रके कानोंमें गूँजने लगी। एक ओर तो मानवके कानोंको सुखद प्रतीत होनेवाला दिव्य शब्द जारी था, तो दूसरी ओर भरतकी सेना विश्वकर्माकी वह तैयारी देखने लगी। लगभग पाँच योजनोंतक भूमि साफ सुथरी दीख पडी तथा वह नीलम एवं वैडूर्य रत्नोंके तुल्य मुलायम घाससे ढक गयी। उस भूभागमें बिल्व, कपित्थ, पनस, बीजपूरक, आँवला और आम्र वृक्ष फलोंसे लदे सुहाने लगे। ऐसा दीख पडा कि उत्तर कुरु प्रांतसे मानों दिव्य और भोग्य चीजोंसे परिपूर्ण वन उधर आया हो तथा तटपर विविध पेडोंसे युक्त सौम्य नदीकाभी दर्शन हुआ। (२७–३१)

सफेद रंगवाले, चार कमरोंसे युक्त मकान, हाथी और घोडोंके अस्तबल, महल तथा बडी अट्टालिका एवं शुभ तोरण अस्तित्वमें आ गये। उस जगह एक राजमहल पैदा हुआ जो शुभ्र, मेघकी नाईं जगमगाने

शुक्लमाल्यकृताकारं दिव्यगन्धसमुक्षितम् ३३
चतुरस्रमसंबाधं शयनासनयानवत् ।
दिव्यैः सर्वरसैर्युक्तं दिव्यभोजनवस्त्रवत् ३४
उपकल्पितसर्वान्नं धौतनिर्मलभाजनम् ।
क्लृप्तसर्वासनं श्रीमत्स्वास्तीर्णशयनोत्तमम् ३५
प्रविवेश महाबाहुरनुज्ञातो महर्षिणा ।
वेश्म तद्रत्नसंपूर्णं भरतः कैकयीसुतः ३६
अनुजग्मुश्च ते सर्वे मन्त्रिणः सपुरोहिताः ।
बभूवुश्च मुदा युक्तास्तं दृष्ट्वा वेश्मसंविधिम् ३७
तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च ।
भरतो मन्त्रिभिः सार्धमभ्यवर्तत राजवत् ३८
आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च ।
वालव्यजनमादाय न्यषीदत्सचिवासने ३९

लगा, जिसपर बढ़िया तोरण लगाये थे, सफेद पुष्पोंसे जो सजाया गया था और जिसमें दिव्य चन्दन-जलका छिड़काव किया था। वह चतुष्कोण शान्त विस्तर, आसन एवं वाहनोंसे युक्त था; सब तरहके दिव्य रस मौजूद थे और दिव्य भोग्य वस्तु एवं कपड़ोंकाभी अभाव न था। हरतरह का अन्न उधर तैयार था, भीतर धोये हुए साफसुथरे बर्तन थे, हर किस्मके आसन तैयार थे और वह महल सुहाने लगा जब कि उत्कृष्ट विस्तर फैलाये गये। (३२-३५)

इस भाँतिके रत्नप्रपूर्ण उस महलमें पराक्रमी भरत ऋषि भरद्वाजकी आज्ञा लेकर प्रविष्ट हुआ, तब पुरोहितोंके साथ सभी सचिवभी उनके पीछे जाने लगे और मकान बँधवानेका वह ढंग देखकर बड़े खुश हुए। वहाँपर राजाके लिए उचित दिव्य सिंहासन, छत्र चामर विद्यमान था जिसकी प्रदक्षिणा मंत्रिमंडलके साथ भरतने की। यह तो प्रभु रामचंद्रजी का ही है, ऐसी धारणा करके रामके प्रणामके उपरान्त सिंहासनको पूजा करके नीचे सचिवोंके लिए तैयार किए आसनपर चँवर लेकर भरत बैठे। योग्यताके

आनुपूर्व्यान्निषेदुश्च सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः।
ततः सेनापतिः पश्चात्प्रशास्ता च न्यषीदत ४०
ततस्तत्र मुहूर्तेन नद्यः पायसकर्दमाः।
उपातिष्ठन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात् ४१
आसामुभयतः कूलं पाण्डुमृत्तिकलेपनाः।
रम्याश्चावसथा दिव्या ब्राह्मणस्य प्रसादजाः ४२
तेनैव च मुहूर्तेन दिव्याभरणभूषिताः।
आगुर्विंशतिसाहस्रा ब्रह्मणा प्रहिताः स्त्रियः ४३
सुवर्णमणिमुक्तेन प्रवालेन च शोभिताः।
आगुर्विंशतिसाहस्राः कुबेरप्रहिताः स्त्रियः ४४
याभिर्गृहीतः पुरुषः सोन्माद इव लक्ष्यते।
आगुर्विंशतिसाहस्रा नन्दनादप्सरोगणाः ४५
नारदस्तुम्बुरुर्गोपः प्रभया सूर्यवर्चसः।
एते गन्धर्वराजानो भरतस्याग्रतो जगुः ४६
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ वामना।

अनुसार सभी मंत्री और पुरोहित वहाँ बैठ गये; पश्चात् सेनापति और शिविरके संरक्षकभी वहीं आ बैठे (३६–४०)

एक मुहूर्तके बीत जानेपर भरद्वाजकी आज्ञासे पायसरूप कीचड़से भरी नदियाँ भरतके समीप आ खडी हुईं। इन नदियोंके दोनों तटोंपर ब्राह्मण भरद्वाजके प्रसादसे पैदा हुए दिव्य तथा रम्य निवासस्थल मौजूद थे जिनपर सफेद चूना लीपा था। उसी वक्त ब्रह्मदेवकी भेजी और दिव्य गहनें पहनीं बीस हजार नारियाँ उधर उपस्थित हुईं। कुबेरकी भेजी बीस सहस्र महिलाएँ भी सुवर्ण, रत्न, मोती, मूँगा धारण कर सुहाती हुईं आ खडी हुईं। नन्दन वनमेंसे बीस हजार ऐसी अप्सराओंका संघ आ पहुँचा कि जिनके चंगुलमें फँस जानेपर पुरुषको उन्माद हुआसा प्रतीत होता है। (४१–४५)

भरतके सम्मुख सूर्यतुल्य कान्तिसे चमकनेवाले गन्धर्वराज नारद

उपानृत्यन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात् ४७
यानि माल्यानि देवेषु यानि चैत्ररथे वने ।
प्रयागे तान्यदृश्यन्त भरद्वाजस्य तेजसा ४८
बिल्वा मार्दङ्गिका आसञ्शम्याग्राहा बिभीतकाः ।
अश्वत्था नर्तकाश्चासन्भरद्वाजस्य तेजसा ४९
ततः सरलतालाश्च तिलकाः सतमालकाः ।
प्रहृष्टास्तत्र संपेतुः कुब्जा भूत्वाथ वामनाः ५०
शिंशपामलकी जम्ब्वूर्याश्चान्याः कानने लताः ।
प्रमदाविग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन् ५१
सुरां सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः ।
मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यो यदिच्छति ५२
उच्छोद्य स्नापयन्ति स्म नदीतीरेषु वल्गुषु ।
अप्येकमेकं पुरुषं प्रमदाः सप्त चाष्ट च ५३
संवाहन्त्यः समापेतुर्नार्यो विपुललोचनाः ।
परिमृज्य तदान्योऽन्यं पाययन्ति वराङ्गनाः ५४

तुंबुरु एवं गोप गाने लगे । भरद्वाजकी आज्ञासे चार अप्सराएँ भरतके सामने नाचने लगीं । देवोंके समीप तथा चैत्ररथ वनमें जो फूल खिलते हैं, वे भरद्वाजके तप-सामर्थ्यसे प्रयागमें दीख पडे । इतनाही क्यों अपितु भरद्वाजके तप-प्रभावसे बिल्ववृक्ष मृदंग बजाने लगे, विभीतक पेड ताल धरने लगे और अश्वत्थवृक्ष नाचने लगे । उस समय देवदार, तमालक वगैरह पेडभी खुशीसे बौने और कुबडेके रूपमें यहाँ आ गिरे । (४६–५०)

शिशपा, आँवली, जंबू तथा अन्य भी कुछ जंगलकी लताएँ नारीरूप धारण करके भरद्वाजाश्रममें रहने लगीं । वे कहने लगीं कि ' सुरा पीनेवाले सुरापान करने लगे, भूखे खीर खाना शुरु करें और मांसाहारके आदी हो तो अच्छे पवित्र मांस खा लें । ' मतलब यही है कि जिनकी जैसी इच्छा हो वे वैसीही खानेपीनेकी चीजें ले लें । सुन्दर नदीतटपर सात सात और कभी आठआठ युवतियाँ एक एक पुरुषको देहपर तेल लगाकर नहलाने लगीं ।

हयान्गजान्खरानुष्ट्रांस्तथैव सुरभेः सुतान् ।
अभोजयन्वाहनपास्तेषां भोज्यं यथाविधि ५५
इक्षूंश्च मधुलाजांश्च भोजयन्ति स्म वाहनान् ।
इक्ष्वाकुवरयोधानां चोदयन्तो महाबलाः ५६
नाश्वबन्धोऽश्वमाजानन्न गजं कुञ्जरग्रहः ।
मत्तप्रमत्तमुदिता सा चमूस्तत्र संबभौ ५७
तर्पिताः सर्वकामैश्च रक्तचन्दनरूषिताः ।
अप्सरोगणसंयुक्ताः सैन्या वाचमुदीरयन् ५८
नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान् ।
कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम् ५९
इति पादातयोधाश्च हस्त्यश्वारोहबन्धकाः ।
अनाथास्तं विधिं लब्ध्वा वाचमेतामुदीरयन् ६०

भव्य नेत्रवाली महिलाएँ पुरुषोंके पैर दबानेके लिए आने लगीं और वे संभ्रान्त महिलाएँ नहलानेसे गीले हुए शरीरोंको वस्त्र आदिसे विभूषित क एक दूसरेको मद्य आदि पिलाने लगीं । वाहनोंकी रक्षाके लिए नियुक्त पुरु घोडों, हाथियों, गदहों, ऊँटों तथा बैलोंको उनकी खानेकी चीजें ठीक तरह देने लगे । (५१–५५)

इक्ष्वाकुओंके जो उच्च कोटिके योद्धा थे, उनके वाहनोंको खिलानेके लि हाँकते हुए बलिष्ठ संरक्षक उन्हें गन्ने, शहद तथा भूने दाने खिलने लगे घोडेकी ओर साईसका ध्यान न गया और पीलवानने हाथीकी सुध लेन छोड दिया । बात ऐसी हुई कि सेनाके सभी लोक मतवाले, नशीले और सुख हो गये । जब सारी इच्छाएँ पूर्ण हुईं, लाल चन्दनका लेप किया और अप्सरा-ओंके झुंड साथमें खडे हुए तो सैनिक कहने लगे 'हम न तो अयोध्यामेंही जायेंगे और नाही दण्डकावनमें घुसेंगे; भरत सकुशल रहे तथा रामचंद्र-जीभी सुखी रहें । ' इस भाँति, पैदल चलनेवाले, घुडसवार, पीलवान तथा घोडोंकी देखभाल करनेवाले लोग उस आवभगतका तरीका देखकर मानों स्वतंत्रसे होकर वैसे कहने लगे । (५६–६०)

ददृशुर्विस्मितास्तत्र नरा लौहीः सहस्रशः ६८
बभूवुर्वनपार्श्वेषु कूपाः पायसकर्दमाः ।
ताश्च कामदुघा गावो द्रुमाश्चासन्मधुश्च्युतः ६९
वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः ।
प्रतप्तपिठरैश्चापि मार्गमायूरकौक्कुटैः ७०
पात्रीणां च सहस्राणि स्थालीनां नियुतानि च ।
न्यर्बुदानि च पात्राणि शातकुम्भमयानि च ७१
स्थाल्यः कुम्भ्यः करम्भ्यश्च दधिपूर्णाः सुसंस्कृताः ।
यौवनस्थस्य गौरस्य कपित्थस्य सुगन्धिनः ७२
ह्रदाः पूर्णाः रसालस्य दध्नः श्वेतस्य चापरे ।
बभूवुः पयसश्चान्ये शर्कराणां च संचयाः ७३
कल्कांश्चूर्णकषायांश्च स्नानानि विविधानि च ।
ददृशुर्भाजनस्थानि तीर्थेषु सरितां नराः ७४
शुक्लानंशुमतश्चापि दन्तधावनसंचयान् ।

हुए तथा मिठास, रसीलापनसे लबालब भरे हुए दाल तथा सफेद भातके चारों ओर और ऊपर फूल रखे हुए सुवर्ण वगैरहके बर्तन सैनिक लोग अचम्भेमें आकर देखने लगे। उस जंगलमेंभी मंगल कैसे हुआ सो देखो, खीरसे भरे हुए कुएं, चाहे उतना दूध दुहकर देनेवाली गौएँ तथा मीठा रस चूनेवाले पेड पैदा हुए । मैरेय नामक मद्यसे भरी बावडियाँ दिखाई देने लगीं और गर्म तवेपर भूनकर तैयार किये मृग, मयूर एवं मुर्गोंके लच्छेदार मांसोंके बोझसे वे घेरी थीं । (६६-७०)

भातसे पूर्ण सुनहली हजारों पत्तलें, भार्जा एवं रायतेसे पूर्ण सोनेकी बनायी लुटियाँ और सुनहली करोडों थालियाँ दीख पडीं । पीले रंगवाले तथा महकभरे ताजे छाछ एवं मट्ठेसे भरे और खूब अच्छी तरह सजाए हुए बर्तन छोटे थे; दहीके बर्तनभी थे । जल पीनेके प्याले मौजूद थे । जीरा डाले हुए मट्ठेके झील पाये जाते थे, सफेद दहीके तालाब थे, दूधके झरने झरते थे और चीनीके भाण्डारभी थे । सिपाही देख रहे थे कि किस भाँति

शुक्लांश्चन्दनकल्कांश्च समुद्गेष्ववतिष्ठतः ७५
दर्पणान्परिमृष्टांश्च वाससां चापि संचयान् ।
पादुकोपानहं चैव युग्मान्यत्र सहस्रशः ७६
आञ्जनीः कङ्कतान्कूर्चांश्छत्राणि च धनूंषि च ।
मर्मत्राणानि चित्राणि शयनान्यासनानि च ७७
प्रतिपानह्रदान्पूर्णान्खरोष्ट्रगजवाजिनाम् ।
अवगाह्य सुतीर्थांश्च ह्रदान्सोत्पलपुष्करान् ७८
आकाशवर्णप्रतिमान्स्वच्छतोयान्सुखाप्लवान् ७९
नीलवैदूर्यवर्णांश्च मृदून्यवससंचयान् ।
निर्वापार्थं पशूनां ते ददृशुस्तत्र सर्वशः ८०
व्यस्मयन्त मनुष्यास्ते स्वप्नकल्पं तदद्भुतम् ।
दृष्ट्वाऽऽतिथ्यं कृतं तावद्भरद्वाजमहर्षिणा ८१
इत्येवं रममाणानां देवानामिव नन्दने ।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत ८२
प्रतिजग्मुश्च ताः सर्वा गन्धर्वाश्च यथागतम् ।

कल्क, चूर्ण एवं कषाय और नहानेके पानीसे भरे बरतन नदीतीरोंपर रखे थे; शुभ्र तथा नुकीले दतौनके झुंड थे, निर्मल गन्धके पूडे थे। (७१-७५)

साफ आईने, कपडोंका थान, हजारों जूते, काजलके डब्बे, कैंचियाँ, बुरुश, छाते, धनुष्य, अनूठे बख्तर, बिस्तर, आसन सब कुछ थे। पानीसे भरे झील देखे जाते थे, जहाँ कि गदहे, ऊँट, हाथी, घोडे घुसकर सुगमतासे जा सकते थे; वे आसमानकी नाईं नीले, निर्मल जलसे पूर्ण और सुखपूर्ण ढंगसे स्नान करने योग्य सरोवर थे। वे देखते थे कि जानवरोंके खानेके, नीलवैदूर्य रत्नतुल्य घासके हजारों मुलायम गठरे पडे थे। (७६-८०)

इस ढंगकी आवभगत जो अतिअनोखी, स्वप्नकी भाँति तथा भरद्वाजकी बनायी थी, उसे देखकर लोग दाँतोंतले ऊँगली दबाने लगे। भरद्वाजके रमणीय आश्रममें मानों नन्दन वनमें विहार करते हुए देवोंके तुल्य वे रात काटने लगे। बादमें मुनिकी आज्ञा लेकर सभी गंधर्व, दिव्य ललनाएँ

हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन् ।
वेपमाना कृशा दीना सह देव्या सुमित्रया १५
कौसल्या तत्र जग्राह कराभ्यां चरणौ मुनेः ।
असमृद्धेन कामेन सर्वलोकस्य गर्हिता १६
कैकेयी तत्र जग्राह चरणौ सव्यपत्रपा ।
तं प्रदक्षिणमागम्य भगवन्तं महामुनिम् १७
अदूराद्भरतस्यैव तस्थौ दीनमनास्तदा ।
तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः १८
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातॄणां तव राघव ।
एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः १९
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यं वचनकोविदः ।
यामिमां भगवन्दीनां शोकानशनकर्शिताम् २०
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि ।
एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम् २१
कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा ।
अस्या वामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः २२
इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा ।
कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे २३

भरत व भरद्वाजकी बातचीत सुन राजस्त्रियोंने जाना कि यात्रा होगी। यद्यपि दशरथरानियां पैदल नहीं चलती थीं, तो भी पैदल ही भरद्वाजकी प्रदक्षिण करने लगीं। कौसल्याने सुमित्राके साथ प्रदक्षिणा कर भरद्वाजके चरण छुए, कैकेयीने भी लज्जासे ऋषिकी प्रदक्षिणा कर उनके चरण छुए। उस समय भरद्वाज भरतसे बोले, 'हे राघव! मैं तुम्हारी माताओंका विशेष वृत्तान्त जानना चाहता हूं।' (१४–१९)

इसपर वाक्यकोविद भरत हाथ जोड़ बोले, 'हे भगवन्! जो यह बहुत दीन, शोक व उपवासोंसे दुर्बल हो गई हैं, पिताकी सबसे बड़ी पटरानी हैं। पुरुषसिंह श्रीरामको इन्हीं कौसल्याने जन्म दिया है और उनकी बाईं

एतस्यास्तौ सुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ ।
उभौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ २४
यस्याः कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितो गतौ ।
राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः २५
क्रोधनामकृतप्रज्ञां दृप्तां सुभगमानिनीम् ।
ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम् २६
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् ।
यतो मूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः २७
इत्युक्त्वा नरशार्दूलो बाष्पगद्गदया गिरा ।
विनिःश्वस्य स ताम्राक्षः क्रुद्धो नाग इव श्वसन् २८
भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा ।
प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवित् २९
न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।
रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति ३०
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ३१
अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् ।
आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत् ३२

भुजामें लिपटी उदासचित्त खड़ी है, ये सुमित्रा राजाकी बिचली रानी हैं। इन्हींके सत्यपराक्रमी रूपवान् लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न दो पुत्र हैं। जिसके कारण राम लक्ष्मण वनको गये व पुत्रसे हीन हो राजा स्वर्गको सिधारे, जो सदा क्रोधवती निर्बुद्धि अहङ्कारभरी अपनेको सदा सुभगा माननेवाली तथा ऐश्वर्यकी इच्छुक है, इसका कैकेयी नाम है। इस पापनिश्चया निर्लज्जाको मेरी माता जानिये।' यह कह भरतकी वाणी गद्गद् हो क्रोधसे आंख लाल हो गई। (१९-२८)

ऐसा कहते हुए भरतसे तपोधन भरद्वाज बोले, 'हे भरत! कैके दो। रामवनवास बड़े सुखका कारण होगा। रामवनवाससे देव

गिरेः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य संप्रति।
वारणैरवमृद्यन्ते मामकैः पर्वतोपमैः ९
मुञ्चन्ति कुसुमान्येते नगाः पर्वतसानुषु।
नीला इवातपापाये तोयं तोयधरा घनाः १०
किंनराचरितं देशं पश्य शत्रुघ्न पर्वते।
हयैः समन्तादाकीर्णं मकरैरिव सागरम् ११
एते मृगगणा भान्ति शीघ्रवेगाः प्रचोदिताः।
वायुप्रविद्धाः शरदि मेघजाला इवाम्बरे १२
कुर्वन्ति कुसुमापीडाञ्शिरःसु सुरभीनमी।
मेघप्रकाशैः फलकैर्दाक्षिणात्या नरा यथा १३
निष्कूजमिव भूत्वेदं वनं घोरप्रदर्शनम्।
अयोध्येव जनाकीर्णा संप्रति प्रतिभाति मे १४
खुरैरुदीरितो रेणुर्दिवं प्रच्छाद्य तिष्ठति।
तं वहत्यनिलः शीघ्रं कुर्वन्निव मम प्रियम् १५
स्यन्दनांस्तुरगोपेतान्सूतमुख्यैरधिष्ठितान्।
एतान्संपततः शीघ्रं पश्य शत्रुघ्न कानने १६
एतान्वित्रासितान्पश्य बर्हिणः प्रियदर्शनान्।

निश्चय यही चित्रकूट गिरि तथा यही मन्दाकिनी नदी है, नील रंगका वन भी यही है जो दीख पडता है। इस चित्रकूट गिरिके रमणीक शृंगोको हमारे हाथी तोड रहे हैं। वृक्ष पर्वतके कंगूरोंपर फूल बरसाते हैं।(१-१०)

'हे शत्रुघ्न! इस पर्वत पर देखो, उसके चारों ओरसे घोडे चले जाते हैं। भागते हुए मृगगण ऐसी शोभा देते हैं जैसे शरदृतुमें आकाशमें बादल। हमारे सैनिकगण शिरोंपर सुगंधित काले फूलोंके गुच्छे ऐसे रखे हैं जैसे दाक्षिणात्य मेघोंके समान नीली ढालें शिरपर रखते हैं। यह वन पक्षी व मृगोंके शब्दोंसे ऐसा रहित भयावह लगता है मानों आज कलकी अयोध्या ही है। घोडे आदि पशुओंके खुरोंसे उठी हुई धूलि आकाशको आच्छादित कर रही है। हे शत्रुघ्न! घोडे जुते इन रथोंको देखो, वनमें

एवमापततः शैलमधिवासं पतत्त्रिणाम् १७
अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञः प्रतिभाति मे ।
तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ १८
मृगा मृगीभिः सहिता बहवः पृषता वने ।
मनोज्ञरूपा लक्ष्यन्ते कुसुमैरिव चित्रिताः १९
साधु सैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् ।
यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ २०
भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः ।
विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः २१
तं समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः ।
नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ २२
अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ ।
अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः २३
तच्छ्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधुसंमतम् ।
सैन्यानुवाच सर्वांस्तानमित्रबलमर्दनः २४
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः ।
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो धृतिरेव च २५

कैसे चले जाते हैं । इन सताये प्रियदर्शन मोरोंको देखो, डरसे कैसे उड़े चले जाते हैं । यह देश तपोवन होनेसे मुझे स्वर्गके समान प्रिय व सुन्दर लगता है । इस वनमें बहुत मृग मृगियोंके साथ चले जाते है, उनके ऊपर विन्दु बने होनेके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानों फलोंसे ही चित्रित हैं। अब सैनिक वनमें घूमघूम कर ढूंढे जिससे राम लक्ष्मण मिल जायें।' (११–२०)

भरतके के ऐसे वचन सुन शस्त्रधारी पुरुष वनमें प्रवेश कर गये । उन्हें आगे धुआ उठता दिखाई दिया, वे लोग धुआं देख लौट आये और भरतसे बोले कि 'बिना मनुष्यके धुआ नहीं हो सकता । अतएव निश्चय ही राम लक्ष्मण यहीं है । यदि राजपुत्र दोनों भाई यहां न होंगे तो उनके समान कोई और ही तपस्वी रहते होंगे ।' उन लोगोंके ऐसे वचन सुन भरत

एवमुक्तास्ततः सैन्यास्तत्र तस्थुः समन्ततः।
भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत् २६
व्यवस्थिता या भरतेन सा चमूर्निरीक्षमाणापि च भूमिमग्रतः।
बभूव हृष्टा न चिरेण जानती प्रियस्य रामस्य समागमं तदा २७
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रिनवतितमः सर्गः॥९३॥

चतुर्नवतितमः सर्गः। [२४७९]

दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौ गिरिवरप्रियः।
वैदेह्याः प्रियमाकाङ्क्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन् १
अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत्।
भार्याममरसंकाशः शचीमिव पुरंदरः २
न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ३
पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम्।
शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ४
केचिद्रजतसंकाशाः केचित्क्षतजसंनिभाः।
पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः ५
पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः।

बोले कि 'तुम लोग यहीं ठहरो, मैं सुमन्त्रके साथ अकेला ही जाऊंगा।' भरत जहां धुआं दिखाई पड़ता था उसी ओर को चले। अस्तु। भरतके द्वारा खडी की गयी वह सेना निवासके लिए स्थान देखने लगी और प्रिय रामके साथ भरतकी भेट शीघ्र होगी, ऐसा जानकर आनंदप्रसन्न हुई। (२१-२७)

यहाँ तिरयानवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

चित्रकूट पर राम सीताका प्रिय करने तथा अपने चित्तको प्रसन्न करनेके लिये रहते रहे और सीताको चित्रकूट दिखाने लगे। राम जानकीसे बोले 'हे प्रिये ! इस सुन्दर गिरि को देख। राज्य त्याग करना तथा मित्रोंसे रहित यहां रहना मुझको दुःख नहीं देता। हे भद्रे ! नाना पक्षिगणसेवित धातु सहित, शृंगोंसे शोभित यह गिरि देखो। इस गिरिके कोई कोई

विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ६
नानामृगगणैर्द्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः ।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः ७
आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः ।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः ८
काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि ।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः ९
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।
एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः १०
शैलप्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान्कामहर्षणान् ।
किंनरान्द्वन्द्वशो भद्रे रममाणान्मनस्विनः ११
शाखावसक्तान्खड्गांश्च प्रवराण्यम्बराणि च ।
पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडोद्देशान्मनोरमान् १२
जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्यन्दैश्च क्वचित्क्वचित् ।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः १३
गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान्बहून् ।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत् १४
यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते ।

स्थान तो चांदीके समान सफेद, कोई कोई रक्तके समान लाल हैं, कोई पुष्पराग व स्फटिकमणिके रङ्गके, कोई केतकीके रंगके कोई नक्षत्रों व पाराके रंगके हैं। इन सब नाना प्रकारकी धातुओंके कारण नाना रंगके स्थान भासित होते हैं। आम, जामुन, असना, लोध, चिरौंजी, अड्हर, शबेल, तेंदुआ, बांस, काश्मर्र, नीव, तिलक अमला, वेतवजौरा आदि और नाना फलित सुन्दर छायायुक्त वृक्षोंसे शोभित यह पर्वत आभाको बढाता है। (१-१०)

'हे भद्रे! इसके कँगूरोंपर अपनी अपनी जोडीके संग विहरते हुए किन्नरोंको देखो, वृक्षोंकी डालोंपर विद्याधरोंकी स्त्रियोंके वस्त्र व उनके खड्ग टँगे हैं। ठौर ठौर झरने व जल मार्ग बने हैं, कहीं झर झरने रहे हैं। इसकी गुहासे

लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति १५
बहुपुष्पफले रम्ये नानाद्विजगणायुते ।
विचित्रशिखरे ह्यस्मिन्रतवानस्मि भामिनि १६
अनेन वनवासेन मम प्राप्तं फलद्वयम् ।
पितुश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा १७
वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह ।
पश्यन्ती विविधान्भावान्मनोवाक्कायसंमतान् १८
इदमेवामृतं प्राहू राज्ञि राजर्षयः परे ।
वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः १९
शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः ।
बहुला बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतसितारुणैः २०
निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव ।
ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः २१
केचित्क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यानसंनिभाः ।
केचिदेकशिला भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि २२
भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः ।

निकला पवन नाना पुष्पोंका रस ले प्राणोंको तृप्त करता है। यदि यहां अनेक वर्षोतक रहूं तो भी मुझको शोक न होगा। फलित वृक्ष लगे हुए, नाना पक्षियोंसे सेवित इस पर्वतपर रहनेको मेरी इच्छा होती है। इस वनमें रह कर मैंने एक पितासे उर्ऋणता तथा भरतप्रियता रूप दो फल पाये। हे सीते ! मन, वचन, कर्मोंके विविध भांति भावको देखती दिखाती मेरे सँग यहाँ विहार करो। मनुप्रभृतिने लोकके कल्याणार्थ प्रवृत्त नियमपूर्वक वनवास करनेको अमृत कहा है। इस पर्वतकी सैंकड़ों चित्र विचित्र नील, पीत श्वेत, अरुण रंगोंकी शिलाएँ चारों ओरसे शोभित होती हैं। (११-२०)

'रात्रिको इस पर्वतकी औषध अपनी प्रभाकी लक्ष्मीसे अग्निकी शिखाके समान सुहाती हैं। इस पर्वतके कोई कोई स्थान गृहोंके समान,

चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः २३
कुष्ठस्थगरपुंनागभूर्जपत्रोत्तरच्छदान्।
कामिनां स्वास्तरान्पश्य कुशेशयदलायुतान् २४
मृदिताश्चापविद्धाश्च दृश्यन्ते कमलस्रजः।
कामिभिर्वनिते पश्य फलानि विविधानि च २५
वस्वौकसारां नलिनीमतीत्यैवोत्तरान्कुरून्।
पर्वतश्चित्रकूटोऽसौ बहुमूलफलोदकः २६
इमं तु कालं वनिते विजह्रिवांस्त्वया च सीते सह लक्ष्मणेन।
रतिं प्रपत्स्ये कुलधर्मवर्धिनीं सतां पथि स्वैर्नियमैः परैः स्थितः २७

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्नवतितमः सर्गः॥९४॥ [३५०६]

पञ्चनवतितमः सर्गः।

अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोसलेश्वरः।
अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् १

कोई कोई फुलवाड़ियोंके समान हैं। यह चित्रकूट ऐसा ज्ञात होता है कि मानो पृथ्वीको विदीर्ण कर निकल आया है। ये सब गिरि जो नजर आ रहे हैं, चित्रकूट ही के हैं। तू इन विलासी लोगोंकी ये ऊँची शय्याएँ देख ले, जिनपर कमलफूलके पत्ते पड़े हुए और भूर्ज, पुन्नाग, स्थगर तथा कुष्ठ पेड़ोंकी पत्तियाँ बिछी हुई हैं। हे नारी! इधर कमलफूलोंकी ये मालाएँ कुचली जाकर जगह जगह बिखरी पड़ी हैं और उसी तरह भोगनिरत लोगोंके खाये ये भाँतिभाँतिके फल अधूरे छोड़े हुए दीख पड़ते हैं। कुबेरकी राजधानी तथा इन्द्रकी नगरी और उत्तर कुरुप्रदेशसे भी खूब बढ़ाचढ़ा एवं प्रचुर मूल फल और जलसे युक्त यह चित्रकूट पहाड़ सुहाता है। हे कामिनी सीते! श्रेष्ठ निजी नियमोंके आधारसे सज्जनोंके मार्गका अनुसरण करता हुआ मैं तेरे एवं भाई लक्ष्मणके साथ चौदह वर्षोंतक इस वनमें आनन्दपूर्वक विहार कर सकूँ तो मुझको वह सुख मिलेगा जो कुलधर्मकी वृद्धि करनेमें सहायक होगा। (२१-२७)

चौरानब्बेवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अब्रवीच्च वरारोहां चन्द्रचारुनिभाननाम्।
विदेहराजस्य सुतां रामो राजीवलोचनः २
विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ३
नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः।
राजन्तीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः ४
मृगयूथनिपीतानि कलुषाम्भांसि सांप्रतम्।
तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे ५
जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः।
ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ६
आदित्यमुपतिष्ठन्ते नियमादूर्ध्वबाहवः।
एते परे विशालाक्षि मुनयः संशितव्रताः ७
मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः।
पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम् ८
कचिन्मणिनिकाशोदां क्वचित्पुलिनशालिनीम्।
कचित्सिद्धजनाकीर्णां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ९
निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान्।

राम जानकीको गिरिकी शोभा दिखा अतिरमणीक मन्दाकिनी नदी दिखाने लगे। राजीवलोचन राम चारुचन्द्रमुखी सीतासे कहने लगे, 'हे प्रिये! अति रमणीय हंस सारसोंसे सेवित पुष्पोंसे युक्त मन्दाकिनी नदीको देखो। नाना फूल फल वृक्षयुक्त नदी कुवेरकी पुरीके तुल्य शोभा देती है। मृगोंके झुण्डोंके पीनेसे इसका जल कलुषित हो गया है, पर घाट अति रमणीय हैं। हे प्रिये! प्रातः ही इस मन्दाकिनी नदीमें वृक्षोंके वल्कल पहिने ऋषिगण स्नान करते हैं। हे विशालाक्षि! वे लोग शास्त्रोक्त नियमोंके पालनके लिये ऊपरको भुजा उठाये सूर्योपस्थान करते हैं। इस नदीके दोनों तटोंपर लगे वृक्षोंके पवनसे कांपनेसे ऐसा ज्ञान होता है मानों यह गिरि नाच करनेका आरम्भही कर रहा है। कहीं निर्म्मल जल बह रहा है, कहीं सुन्दर तराई

पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे १०
पश्यैतद्वल्गुवचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः ।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः ११
दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने ।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् १२
विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः ।
नित्यविक्षोभितजलां विगाहस्व मया सह १३
सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम् ।
कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि १४
त्वं पौरजनवद्व्यालानयोध्यामिव पर्वतम् ।
मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम् १५
लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः ।
त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम १६
उपस्पृशंस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः ।
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह १७
इमां हि रम्यां गजयूथलोडितां निपीततोयां गजसिंहवानरैः ।
सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां न सोऽस्ति य स्यान्न गतक्लमः सुखी१८

आनन्दित कर रही है, कहीं सिद्ध गण तप कर रहे हैं, ऐसी मन्दाकिनीको देखो। पवनसे वृक्षोंसे गिरे फूलोंके ढेर पड़े हैं। (१-१०)

'हे कल्याणी ! अतिप्रिय मधुरभाषी पक्षिगण कैसी सुन्दर बोली बोलते हैं। मैं चित्रकूट, इस नदी तथा तुमको देख अयोध्यानिवाससे अधिक सुख मानता हूं। पापरहित, नित्य चलायमान मन्दाकिनीमें मेरे सङ्ग स्नान करो। हे सीते ! कमलोंको जलमें डुबाती हुई सखीके तुल्य इस नदीमें स्नान करो। अयोध्यानिवासियोंको तो यहांके व्यालोंके तुल्य और अयोध्याके तुल्य इस गिरिको तथा सरयूवत् इस नदीको जानो, सदा अनुरक्त धर्मात्मा लक्ष्मण और प्रिया तुम्हारे साथ स्नान करते मधु, फूलमूल खाते मुझे अयोध्या तथा राज्यकी चाह नहीं है। गज, सिंह और वानरोंने इसका जल सेवन

इतीव रामो बहुसंगतं वचः प्रियासहायः सरितं प्रति ब्रुवन् ।
चचार रम्यं नयनाञ्जनप्रभं स चित्रकूटं रघुवंशवर्धनः १९

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० अ.दिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चनवतितमः सर्गः॥९५॥[३५२५

षण्णवतितमः सर्गः ।

रामस्तु नलिनीं रम्यां चित्रकूटं च पर्वतम् ।
उत्तरे तु गिरेः पादे चित्रकूटस्य राघवः । १
ददर्श कन्दरं रम्यं शिलाधातुसमन्वितम् ।
सुखप्रसेकैस्तरुभिः पुष्पभारावलम्बिभिः २
संवृतं च रहस्यं च मत्तद्विजगणायुतम् ।
तद् दृष्ट्वा सर्वभूतानां मनोदृष्टिहरं वनम् ३
उवाच सीतां काकुत्स्थो वनदर्शनविस्मितः ।
वैदेहि रमते चक्षुस्तवास्मिन्गिरिकंदरे ४
परिश्रमविघातार्थं साधु तावदिहास्यताम् ।

किया है, हाथियोंसे इसका जल क्षुब्ध किया गया है, पुष्पयुक्त इ नदीमें स्नान कर सुखी नहीं, ऐसा पुरुषही नहीं है । ' इस प्रकार प्रियारू मित्रसे युक्त रघुवंशवर्धक रामचन्द्र, मन्दाकिनी नदीके संबंधमें भाष करता हुआ, कज्जलतुल्य, नीलवर्ण और रम्य चित्रकूट पर्वतपर संचार कर लगा। (११–१९)

यहाँ पंचानवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

चित्रकूट पर्वत और रमणीय नदीका दर्शन सीताजीको करा चुकनेप रघुवंशमें पैदा होनेवाले रामचंद्रजीने चित्रकूटकी तलहटीमें विद्यमा गुफाको देख लिया जो कि रमणीय होती हुई चट्टानों तथा धातुओं अ सुखद मकरन्द चूनेवाले एवं पुष्पभारसे लदे पेडोंसे भरी थी । वह गु बिलकुल एकान्त स्थानमें थी और वहाँपर मतवाले पंछी यथेष्ट मौजूद थे सभी प्राणियोंके दिल और दृष्टिको आकर्षित करनेहारे उस वनविभागव देखकर रामचंद्रजी अचम्भेमें आ गये और सीतासे कहने लगे– ' हे विदे राजकन्ये ! क्या इस पर्वतकन्दरपर तेरी निगाह ठहरी है ? यदि हो, '

त्वदर्थमिह विन्यस्ता त्वियं श्लक्ष्णसमा शिला ५
यस्याः पार्श्वे तरुः पुष्पैः प्रविष्ट इव केसरैः।
राघवेणैवमुक्ता सा सीता प्रकृतिदक्षिणा ६
उवाच प्रणयस्निग्धमिदं श्लक्ष्णतरं वचः।
अवश्यकार्यं वचनं तव मे रघुनन्दन ७
बहुशो भ्रमितश्चाद्य तव चैवं मनोरथः।
एवमुक्त्वा वरारोहा शिलां तामुपसर्प ह ८
सह भर्त्रानवद्याङ्गी रन्तुकामा मनस्विनी।
तामेवं ब्रुवतीं सीतां रामो वचनमब्रवीत् ९
रम्यं पश्यसि भूतार्थे वनं पुष्पितपादपम्।
पश्य देवि गिरौ रम्ये रम्यपुष्पाङ्कितानिमान् १०
गजदन्तक्षतान्वृक्षान्पश्य निर्यासवर्षिणः।
झिल्लिकाविरुतैर्दीर्घैं रुदतीव समन्ततः ११

तनिक इस स्थानपर थकावट दूर करनेके लिए बैठ तो जा। देख, यह मुलायम तथा अखंड चट्टान तेरे लिए यहाँ रखी है और इसकी एक ओर यह पेड है जिसपर परागभरे फूल खिल रहे हैं।' (१-६)

रामचन्द्रजीके ऐसे कहनेपर निसर्गसेही सीधीसादी सीताने प्रेमके कारण अधिक रसीली और खूब मिठास भरी वाणीसे यूं कहा 'हे राम! जो तू रघुपरिवारको प्रसन्न करनेवाला है, तेरा कथन मुझे जरूर मानना चाहिये; आज यह ख्याल अपने अन्तस्तलमें बारबार उठकर खलबली मचाता है।" निर्दोष अंगोंवाली सीताने, ऐसा कहकर उस चट्टानके निकट जाना प्रारंभ किया, क्योंकि वह सोचविचार करनेवाली थी और मन बहलाव करना उसका उद्देश्य था। उस तरह सीताका उत्तर सुनतेही रामचंद्रजीने उससे कहा। (६-९)

'प्रचुर वन्यसामग्रीसे तथा फूलोंसे लदे पेडोंके कारण भी परिपूर्ण प्रतीत होनेवाले इस रमणीय वनको तू देख रही है; किन्तु देवीजी! इस लुभावने पहाडपर चेतोहर फूलोंसे व्याप्त, हाथीके दाँतोंके आघात दर्शाने-

पुत्रप्रियोऽसौ शकुनिः पुत्रपुत्रेति भाषते।
मधुरां करुणां वाचं पुरेव जननी मम १२
विहगो भृङ्गराजोऽयं शालस्कन्धसमाश्रितः।
संगीतमिव कुर्वाणः कोकिलेनानुकूजति १३
अयं वा बालकः शङ्के कोकिलानां विहंगमः।
सुसवद्धमसंवद्धं तथा ह्येष प्रभाषते १४
एषा कुसुमिता नूनं पुष्पभारानता लता।
दृश्यते मामिवात्यर्थं श्रमाद्देवि त्वमाश्रिता १५
एवमुक्ता प्रियस्याङ्के मैथिली प्रियभाषिणी।
भूयस्तरां त्वनिंद्याङ्गी समारोहत भामिनी १६
अङ्के तु परिवर्तन्ती सीता सुरसुतोपमा।
हर्षयामास रामस्य मनो मनसिजार्पितम् १७

वाले और लासा टपकाते हुए इन वृक्षोंकी आवलीको तू अवश्य देख। चारों ओर जो यह छोटेसे कीडोंका झुंड लंबी आवाज निकाल रहा है उससे जान पडता है कि मानो यह पहाड बिलखने लगा हो। जैसे कुछ समय पहले मेरी माता मुझको मीठी एवं करुणाभरी आवाजमें 'बेटा बेटा' कहके पुकारती थी, ठीक वैसेही यह पंछी जो अपने शिशुसे प्यार करता है, उसे मेरे बेटे, मेरे बेटे कहकर बुलाता है। सालवृक्षके ऊपरी भाग या धडपर चढकर यह भौंरोंका राजा, शायद गानेके लिएही हो, कोयलके साथ कूजन करता है। मैं समझता हूँ कि यह पंछी कोयलोंमें अभी बच्चाही है; देखो न, यह उनकी तरह कुछ अंडबंड तो कभी ठीक तौरसे आवाज निकाल रहा है। और देवीजी! जैसे थक जानेपर तू मुझसे अधिक चिपक जाती है वैसेही यह पुष्पभारसे झुकी हुई लता खूब फलफूलकर सचमुच इस पेडसे मानों पूरी तरह चिपकी हुईसी दीख पडती है।" (१०-१५)

ऐसा रामचंद्रजीका कहना सुनकर प्यारी बात करनेवाली और अविकल अंगवाली सीताने फिर अधिकही आवेगसे प्रियतमकी गोदपर चिपककर बैठना शुरू किया। वह देवकन्यातुल्य सीता जब इस भाँति रामचन्द्रजीकी

स निघृष्याङ्गुलिं रामो धौते मनःशिलोच्चये ।
चकार तिलकं तस्या ललाटे रुचिरं तदा १८
बालार्कसमवर्णेन तेजसा गिरिधातुना ।
चकास विनिविष्टेन ससंध्येव निशा सिता १९
केसरस्य च पुष्पाणि करेणामृद्य राघवः ।
अलकं पूरयामास मैथिल्याः प्रीतमानसः २०
अभिरम्य तदा तस्यां शिलायां रघुनन्दनः ।
अन्वीयमानो वैदेह्या देशमन्यं जगाम ह २१
विचरन्ती तदा सीता ददर्श हरियूथपम् ।
वने बहुमृगाकीर्णे वित्रस्ता राममाश्लिषत् २२
रामस्तां परिरब्धाङ्गीं परिरभ्य महाभुजः ।
सान्त्वयामास वामोरूमवभर्त्स्याथ वानरम् २३
मनःशिलायास्तिलकः सीतायाः सोऽथ वक्षसि ।
समदृश्यत संक्रान्तो रामस्य विपुलौजसः २४

गोदपर दृढतापूर्वक बैठने लगी, तो अधिक कामासक्त हुए राम मानसको ज्यादा प्रसन्नता होने लगी। तब ऊँची और निर्मल मनःशिला चट्टानपर अपनी उँगली घिसकर रामचंद्रजीने सीताके माथे या ललाटपर टीका या सुन्दर रोली लगा दी। तिलकके लगा लेनेपर सीता ठीक वैसेही सुहाने लगी जैसी रात्री जिसमें सायंकालीन मेघ दीख पड़ते हैं जगमगाने लगती है, क्योंकि वह तिलक उदीयमान सूर्यकी आभाकी तरह तेजस्वी था। पश्चात् चंपक फलोंको अपने हाथसे तोड़कर रामचंद्रजी खुश होकर सीताके जूड़ेपर रखने लगे। इस भाँति उस स्थानमें विहार कर चुकनेपर रामचन्द्रजी दूसरी जगह चले गये और उनके पीछे सीताभी जा रही थी। (१६-२१)

भाँतिभाँतिके मृगोंसे भरे हुए उस वनमें घूमते समय सीताजीने एक बड़ा बन्दर देख लिया, जो कई झुंडोंका मुखिया बन बैठा था तुरन्त डरके मारे वह रामचन्द्रजीसे लिपट गयी। ऐसा आलिंगन पानेपर रामचन्द्रजीने भी उसे गले लगाया और उस बन्दरको झिडकी देकर सीताको तसल्ली दे दी।

प्रजहास तदा सीता गते वानरपुंगवे ।
दृष्ट्वा भर्तरि संक्रान्तमपाङ्गं समनःशिलम् ॥ २५
नातिदूरे त्वशोकानां प्रदीप्तमिव काननम् ।
ददर्श पुष्पस्तबकैस्तर्जद्भिरिव वानरैः ॥ २६
वैदेही त्वब्रवीद्राममशोककुसुमार्थिनी ।
वयं तदभिगच्छामो वनमिक्ष्वाकुनन्दन ॥ २७
तस्याः प्रिये स्थितो रामो देव्या दिव्यार्थरूपया ।
सहितस्तदशोकानां विशोकः प्रययौ वनम् ॥ २८
तदशोकवनं रामः सभार्यो व्यचरत्तदा ।
गिरिपुत्र्या पिनाकीव सह हैमवतं वनम् ॥ २९
तावन्योन्यमशोकस्य पुष्पैः पल्लवधारिभिः ।
समलंचक्रतुरुभौ कामिनौ नीललोहितौ ॥ ३०

इस गडबडीमें सीताके ललाटपर जो रक्तिम तिलक लगाया था, वह वीर रामचन्द्रजीके वक्षपर चिपका हुआ दीख पडा। जब बन्दर दूर चला गया तब, मनःशिलाके साथ टेढा बना हुआ वह तिलक पतिके अवयवपर लगा है ऐसा देखकर सीता खिलखिलाकर हँस पडी। (२२-२५)

वहाँसे समीपही सीताने एक अशोक वन देख लिया जिसमें डर दर्शाते हुए या घुडकते बन्दरोंके समान दिखाई देनेवाले गुलदस्तोंके कारण मानों प्रदीप्त बने अशोक पेड यत्रतत्र दिखाई देते थे। अशोकके उन फूलोंको लेनेकी इच्छासे सीता रामचंद्रजीसे बोली ' चलो, उधर चलें ' तो उसका प्रिय करनेमें हमेशा तल्लीन होनेवाले राजचन्द्रजी प्रसन्नचेता बनकर देवतारूपिणी और दिव्य संपदावाली सीताके साथ अशोकके वनके झुरमुटमें घुस गये। (२६-२८)

जिस प्रकार शिवजी पार्वतीके साथ हिमालय पर्वतपर घूमते थे, वैसेही सीताके साथ रामचन्द्रजी उस वनमें संचार करने लगे। लालिमा एवं नीलिमासे युक्त सीता और रामचंद्रजीने अशोकके फूलोंसे जिनमें पत्तियोंभी थीं, एक दूसरेको सँवारा। वनमालाओं तथा कर्णभूषण और मस्तकभूषणोंसे

आवद्धवनमालौ तौ कृतापीडावतंसकौ।
भार्यापती तावचलं शोभयांचक्रतुर्भृशम् ३१
एवं स विविधान्देशान्दर्शयित्वा प्रियां प्रियः।
आजगामाश्रमपदं सुसंश्लिष्टमलंकृतम् ३२
प्रत्युज्जगाम तं भ्राता लक्ष्मणो गुरुवत्सलः।
दर्शयन्विविधं धर्मं सौमित्रिः सुकृतं तदा ३३
शुद्धबाणहतांस्तत्र मेध्यान्कृष्णमृगान्दश।
राशीकृताञ्शुष्यमाणानन्यान्कांश्चन कांश्चन ३४
तद् दृष्ट्वा कर्म सौमित्रेर्भ्राता प्रीतोऽभवत्तदा।
क्रियन्तां बलयश्चेति रामः सीतामथाबवात् ३५
अग्रं प्रदाय भूतेभ्यः सीताऽथ वरवर्णिनी।
तयोरुपददद्भ्रात्रोर्मधु मांसं च तद्भृशम् ३६
तयोस्तृप्तिमथोत्पाद्य वीरयोः कृतशौचयोः।
विधिवज्जानकी पश्चाच्चक्रे सा प्राणधारणम् ३७

स्वयं अलंकृत होकर उन पतिपत्नियोंने उस पर्वतको खूब चमका दिया। इस प्रकार वह प्रिय सीताको भाँतिभाँतिके भूभाग दर्शाकर बिलकुल नजदीक विद्यमान और अच्छी तरह सजाये अपने आश्रममें चला आया। (२९-३२)

तब भाई लक्ष्मण जो गुरुजनोंका प्यारा था और कई धर्म ठीक तौरसे कार्यान्वित करता था, अच्छी तरह निभाये बहुतसे कार्योंको दर्शाता हुआ, सामने जा खडा हुआ। रामचन्द्रजीने देखा कि उधर निर्मल बाणोंसे मारे हुए दस हिरन और राशिके रूपमें रखे इधर उधरके सुखाये जानेवाले मृग भी पडे हुए हैं। भाई लक्ष्मणका वह कार्य देखकर रामचन्द्रजी बड़े संतुष्ट हुए और सीतासे कहने लगे, 'अच्छा, अब बलि तो कीजियेगा!'(३३-३५)

उस सुन्दर सीताने पहले भूतोंको उसका कुछ हिस्सा देकर दोनों भाइयोंको वह मधु एवं मांस यथेष्ट परोसा। शुचिर्भूत बने दोनों भाइयोंकी तृप्ति होनेपर सीतानेभी कुछ थोडासा हिस्सा यथावत् खा लिया ताकि शरीरमें प्राण रहें। सुखाकर रखनेके लिए जो बढिया दर्जेका मांस था, उसे

अमोघं क्रियतामस्त्रमेकमङ्गं परित्यज ।
किमङ्गं शातयतु ते शरेषीका ब्रवीहि मे ५२
एतावद्धि मया शक्यं तव कर्तुं प्रियं खग ।
एकाङ्गहीनं ह्यस्त्रेण जीवितं मरणाद्वरम् ५३
एवमुक्तस्तु रामेण संप्रधार्य स वायसः ।
अभ्यगच्छद्द्वयोरक्षणस्त्यागमेकस्य पण्डितः ५४
सोऽब्रवीद्राघवं काको नेत्रमेकं त्यजाम्यहम् ।
एकनेत्रोऽपि जीवेऽहं त्वत्प्रसादान्नराधिप ५५
रामानुज्ञातमस्त्रं तत्काकस्य नयनेऽपतत् ।
वैदेही विस्मिता तत्र काकस्य नयने हृते ५६
निपत्य शिरसा काको जगामाशु यथेप्सितम् ।
लक्ष्मणानुचरो रामश्चकारानन्तरक्रियाः ५७

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥ [३५८२]

अपने एक अंगका त्याग कर ले, ताकि यह अस्त्र निष्फल न हो जावे। अच्छा, कह दे कि इस तिनकेसे तेरा कौनसा अंग टूट जाए। अरे पंछी, मैं तेरा इतनाही हित कर सकता हूँ, देख, एक किसी अवयवके भग्न हो जानेपर जीवित रहना मरनेकी अपेक्षा तो भला है ही।' (५०-५३)

रामचन्द्रजीके इतना कहनेपर सोच विचारके पश्चात् उस कौएने एक आँखका छोड़ना ठान लिया। उसने रामचन्द्रजीसे कहा 'मैं एक आँख छोड़नेको तैयार हूँ, हे नरपाल! तेरी कृपासे मैं एकाक्ष होनेपरभी जीता रहूँगा।" रामचन्द्रजीकी आज्ञा होतेही वह अस्त्र उस कौएकी आँखपर जा गिरा। इस तरह कौआ एक आँखसे रहित हुआ, सो देख सीता अचम्भेमें आ गयी। पश्चात् सिर नवाकर कौएने रामचंद्रजीका अभिवादन किया और वह शीघ्रही जिधर उसकी इच्छा थी उधर चला गया। इधर भाई लक्ष्मणके साथ रामचंद्रजीने अपनी आगेकी कार्यवाही जारी रखना शुरू किया। (५४-५७)

यहाँ छियानवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तनवतितमः सर्गः ।

तां तदा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरिनिम्नगाम् ।
निषसाद गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन् १
इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना ।
एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः २
तथा तत्रासतस्तस्य भरतस्योपयायिनः ।
सैन्यरेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभस्पृशौ ३
एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः ।
अर्दिता यूथपा मत्ताः स्वयूथाद्दुद्रुवुर्दिशः ४
स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः ।
तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ५
तांश्च विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्वनम् ।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ६
हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रासुप्रजास्त्वया ।
भीमस्तनितगम्भीरं तुमुलः श्रूयते स्वनः ७
गजयूथानि वारण्ये महिषा वा महावने ।
वित्रासिता मृगाः सिंहैः सहसा प्रद्रुता दिशः ८
राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने ।

---

१. सीताको पर्वत तथा नदी दिखा राम एक चट्टानपर बैठ गये और सीताको मांस दिखा कहने लगे कि यह बड़ा शुद्ध है, यह अग्निमें पकाया गया है। यह कहते राम वहां बैठे ही थे कि उसी समय आते हुए भरतकी सेनाकी धूलि दिखाई दी और बड़ा शब्द हुआ। उस शब्दसे डरे वन्य जीव इधर उधर भागते दीख पड़े। रामने उस सेना द्वारा उत्थित शब्दको सुना तथा वन्य जीवोंको चारों ओर भागते देखा। जीवोंको भागते देख तथा उस शब्दको सुन राम लक्ष्मणसे बोले, 'हे लक्ष्मण! यह बादलोंकी गर्जनके तुल्य अति भयङ्कर शब्द कहांसे आ रहा है? क्या सिंहोंके भयसे वन्य जीव तो दौड़ते हुए नहीं आते हैं? या कोई राजा वा राजपुत्र वनमें शिकार खेलता

२४

मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् २७
अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः।
छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् २८
शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा।
श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान्मया २९
शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन्महावने।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ३०

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः॥९७॥ [३६१२]

अष्टनवतितमः सर्गः।

सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्च्छितम्
रामस्तु परिसान्त्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत् १
किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा।
महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते २
पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे।
किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण ३
यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत्।
नाहं तत्प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान्विषकृतानिव ४

हुए वृक्षके समान देखें। आज महापापसे यह संसार छूटे। आज यह बहुत दिनोंका अपमान शत्रुकी सेनापर छोडता हूं, आजही चित्रकूटके वनको पैने बाणोंसे शत्रुओंके शरीर काट काट रुधिरसे सींचेंगे। हमारे मारे हुए मनुष्योंको भी कुत्ते घसीटेंगे, इस महावनमें शरों व धनुषसे मैं सैन्य समेत भरतको मारकर उऋण हो जाऊंगा।' (२१-३०)

यहाँ सत्तानबाँ सर्ग समाप्त हुआ।

भरतसे युद्धार्थी क्रोधमूर्च्छित लक्ष्मणको समझाते हुए राम यह वचन बोले कि 'महाबली स्वयं भरतके आनेपर धनुष तलवार ढालका क्या काम है? हे लक्ष्मण! पितासे वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा कर अब भरतको युद्धमें मार सापवाद राज्य ले क्या करेंगे? जो द्रव्य बन्धुओं तथा मित्रोंके क्षय होनेसे

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते ५
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ६
नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ७
यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ८
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः
मम प्राणैः प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ९
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् ।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम १०
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः ।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः ११
अम्बां च केकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन् ।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान्राज्यं मे दातुमागतः १२
प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमर्हति ।

मिले, मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता । हे लक्ष्मण ! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी इन सबकी तुम्हीं लोगोंके अर्थ मैं कामना करता हूं । मैं सत्यही कहता हूं कि सब भाइयोंके संग्रह तथा उनके सुखके ही लिये राज्यकी इच्छा किया करता हूं । हे सौम्य ! सागरांबरा यह मही मुझको दुर्लभ नहीं है, पर अधर्मसे मैं इन्द्रपदभी नहीं चाहता । जो सुख मुझको भरत, तुम्हारे तथा शत्रुघ्नके विना प्राप्त हो, उसे अग्नि नष्टकर डालें, मैं जानता हूं कि भ्रातृभक्त भरत जब अयोध्यामें आये होंगे और यह सुन कि जटाचीर-धारी मैं, जानकी और तुम समेत वनको चला गया, तो शोकसे व्याकुलेन्द्रिय हो वे मुझे देखनेको आये हैं और किसी अभिप्रायसे नहीं । (१-११)

'अपनी मातासे क्रोधकर तथा उसे अप्रिय वचन कह मुझको राज्य

अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किञ्चिदाचरेत् १३
विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् ।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद्विशङ्कसे १४
नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः ।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते १५
कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि ।
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः १६
यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे ।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम् १७
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः ।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते १८
तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः ।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया १९
तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह ।
त्वां मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम् २०
व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह ।

देनेके लिये आये है। हम लोगोंके देखनेको भरत आये हैं, सो वे हमारे साथ मनसे भी अप्रिय न करेंगे। क्या कभी भरतने तुम्हारे साथ कोई विप्रिय किया है जिससे तुमको ऐसा भय है? अब भरतको कुछ कठोर बात वा अप्रिय वचन न कहना। किसी आपदाके समय भी पुत्र पिताको तथा भाई भाईको न मारेगा। यदि राज्यके कारण तुम, भरत को ऐसा कहते हो तो भरतसे मिले तो कह दूंगा कि राज्य लक्ष्मणको देदो। हे लक्ष्मण! मेरे कहतेही कि राज्य इनको देदो तो वे तुरन्तही मेरा वचन मान लेंगे।' जब धर्मज्ञ श्रीरामने ऐसे वचन कहे तो लक्ष्मण लज्जासे सिकुड अपनेही अंगोंमें लीनसे हो गये। रामके ऐसे वचन सुन लक्ष्मण लज्जित हो बोले कि 'आपको देखनेके लिये पिताजी स्वयं आये हैं।' (१२-२०)

एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः २१
अथवा नौ ध्रुवं मन्ये मन्यमानः सुखोचितौ।
वनवासमनुध्याय गृहाय प्रतिनेष्यति २२
इमां चाप्येष वैदेहीमत्यन्तसुखसेविनीम्।
पिता मे राघवः श्रीमान्वनादादाय यास्यति २३
एतौ तौ संप्रकाशेते गोत्रवन्तौ मनोरमौ।
वायुवेगसमौ वीरौ जवनौ तुरगोत्तमौ २४
स एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे।
नागः शत्रुञ्जयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः २५
न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकविश्रुतम्।
पितुर्दिव्यं महाभाग संशयो भवतीह मे २६
वृक्षाग्रादवरोह त्वं कुरु लक्ष्मण मद्वचः।
इतीव रामो धर्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह २७
अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिंजयः।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वतः २८
भरतेनाथ संदिष्टा संमर्दो न भवेदिति।
समन्तात्तस्य शैलस्य सेना वासमकल्पयत् २९
अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह।

लक्ष्मणको लज्जित देख राम बोले कि 'यह मैं भी मानता हूं कि ये हमको देखनेही को आये हैं। अथवा हम दोनोंको सुखोचित समझ घरको लौटा ले जायेंगे। या अत्यन्त सुखसेविनी सीताको पिता वनसे घरको लौटा ले जायेंगे। दोनों भाई भरत शत्रुघ्न अति चञ्चल अश्वोंपर सवार चले आते हैं। यह पिताका शत्रुंजय हाथी भी सेनाके आगे आगे चला आता है। पिताजीका छत्र नहीं दीख पडता, इससे बडी शङ्का होती है।' यह सुन राम सौमित्रिसे बोले 'हे लक्ष्मण! अब पेडपरसे नीचे उतर आओ।' लक्ष्मण उस पेड परसे उतर हाथ जोड श्रीरामके पास आ खडे हुए। भरतने यह विचार कि इस पर्वतका संमर्दन न होवे सेनाको ठहरने

पार्श्वे न्यविशदावृत्य गजवाजिनराकुला ३०
सा चित्रकूटे भरतेन सेना धर्मं पुरस्कृत्य विधूय दर्पम्।
प्रसादनार्थं रघुनन्दनस्य विरोचते नीतिमता प्रणीता ३१

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे अष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥ [३६८२]

नवनवतितमः सर्गः।

निवेश्य सेनां तु विभुः पद्भ्यां पादवतां वरः।
अभिगन्तुं स काकुत्स्थमियेष गुरुवर्तकम् १
निविष्टमात्रे सैन्ये तु यथोद्देशं विनीतवत्।
भरतो भ्रातरं वाक्यं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत् २
क्षिप्रं वनमिदं सौम्य नरसंघैः समन्ततः।
लुब्धैश्च सहितैरेभिस्त्वमन्वेषितुमर्हसि ३
गुहो ज्ञातिसहस्रेण शरचापासिपाणिना।
समन्वेषतु काकुत्स्थावस्मिन्परिवृतः स्वयम्। ४
अमात्यैः सह पौरैश्च गुरुभिश्च द्विजातिभिः।
सह सर्वं चरिष्यामि पद्भ्यां परिवृतः स्वयम् ५
यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।

की आज्ञा दी। हस्ती, अश्व, मनुष्योंसे युक्त वह सेना छः कोशतक पहाडके किनारे किनारे ठहर गई। और अपने धर्मपरही ध्यान देकर नीतिमान् भरतने रामचंद्रजीकी प्रसन्नताके लिये साथ ली हुई वह सेना चित्रकूट पर्वतपर सुहाने लगी। (२१-३१)

यहाँ अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

संचारशील प्राणियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ प्रभु भरतजीने सेनाको उधरही रखकर गुरुशुश्रूषामें तत्पर तथा ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामचंद्रजीके निकट जानेको चाहा। इच्छाके अनुकूल सेनाका प्रबंध होतेही वे भाई शत्रुघ्नसे विनयपूर्वक कहने लगे 'प्यारे, लोगोंके झुंड और गुहके इन निषादोंको साथमें लेकर तुम बहुत जल्दही इस वनको ढूंढना शुरु करो। इधर हाथमें धनुष्य, बाण एवं तलवार लिये हजारों अपनेही लोगोंसे घिरे रहकर गुह

वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति ६
यावन्न चन्द्रसंकाशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम्।
भ्रातुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ७
सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्।
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युति ८
यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।
शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति ९
यावन्न राज्ये राज्यार्हः पितृपैतामहे स्थितः।
अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति १०
कृतकृत्या महाभागा वैदेही जनकात्मजा।
भर्तारं सागरान्तायाः पृथिव्या यानुगच्छति ११
सुशुभश्चित्रकूटोऽसौ गिरिराजसमो गिरिः।

खुद इस वनमें ककुत्स्थपरिवारमें उत्पन्न राम तथा लक्ष्मणको खोजने लगे। मैं स्वयं अमात्य, नागरिक एवं द्विजगण जिनके पीछे चलते हैं ऐसे गुरुजनोंको साथ लेकर इस सारेही जंगलमें पैदल घूमता रहूंगा। जबतक रामचंद्रजी तथा महाबलाढ्य भाई लक्ष्मण एवं अति भाग्यशालिनी विदेह-राजकन्या सीताजीको मैं न देख लूं, तबतक मुझको शान्ति तथा सुख-समाधान नहीं मिलेगा। चन्द्रकी नाई आह्लाददायक और कमलपुष्पकी पँखुडियोंकी तरह विशाल आँखोंवाले भाई रामचंद्रजीके शुभ मुखको जबतक न देखूँ, मुझे शान्ति नहीं होगी। (१–७)

'सचमुच सुमित्राके पुत्र भाई लक्ष्मणकी कामना सफल हुई क्योंकि चन्द्रमाके तुल्य निर्मल और कमल जैसे विशाल नेत्रवाले रामचंद्रजीके तेजस्वी मुखमंडलको वे निहार रहे हैं। भाईजीके राजचिह्नोंसे अलंकृत चरणोंपर अपना शीश रखनेतक मेरे दिलको समाधान न होगा, इतनाही नहीं किंतु राज्यका उपभोग लेनेमें सर्वथैव योग्य रामचंद्रजी, पितृपरंपरागत राजगद्दीपर अभिषेकके कारण पानीसे तर हो जबतक न बैठेंगे मुझे मानसिक शान्तता मिलनेवाली नहीं। महासागरतक फैली हुई पृथ्वीके नाथके पीछे

यस्मिन्वसति काकुत्स्थः कुबेर इव नन्दने १२
कृतकार्यमिदं दुर्गवनं व्यालनिषेवितम्।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः १३
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भरतः पुरुषर्षभः।
पद्भ्यामेव महातेजाः प्रविवेश महद्वनम् १४
स तानि द्रुमजालानि जातानि गिरिसानुषु ।
पुष्पिताग्राणि मध्येन जगाम वदतां वरः १५
स गिरेश्चित्रकूटस्य सालमारुह्य सत्वरम् ।
रामाश्रमगतस्याग्नेर्ददर्श ध्वजमुच्छ्रितम् १६
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्मुमोद सहबांधवः ।
अत्र राम इति ज्ञात्वा गतः पारमिवाम्भसः १७
स चित्रकूटे तु गिरौ निशम्य रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम् ।

पीछे जानेवाली महाभाग्यवती जनककन्या वैदेही सीता सचमुच कृतार्थ है। नन्दनवनमें विहार करनेहारे कुबेरके समान जिसपर ककुत्स्थ-वंशज रामचंद्रजी निवास कर रहे हैं, वह चित्रकूट पर्वतराज हिमालयके समकक्ष और बडाही पवित्र है । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी महाराज जिधर निवास करते हों, वह सर्पजातिसे भरा हुआ यह घना जंगलभी धन्य धन्य है।' (८-१३)

ऐसा शत्रुघ्नसे कहकर वे बडे पराक्रमी तथा अतितेजस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ भरतजी पैदलही उस घने जंगलमें घुस गये। वक्ताओंमें श्रेष्ठ भरतजी पहाडकी चोटीपर पैदा हुए और खिले हुए अगले हिस्से जिनपर हिल रहे थे, ऐसे पेडोंके झुरमुटमेंसे आगे बढने लगे। पश्चात् चित्रकूट पहाडपरके साल पेडपर शीघ्र चढतेही रामचन्द्रजीके आश्रममें मौजूद अग्निका ऊँचा धुआँ भरतको दिखाई दिया। उस धुएँको देखतेही उधर रामचंद्रजीका निवास है ऐसा समझकर, नदीजलको तैरकर परले किनारे पहुँचे मानवके समान, बांधवोंके साथ रहते हुए वैभवशाली भरतजीको बडा हर्ष हुआ। चित्रकूट पहाडपर पुण्यवान् लोगोंसे परिपूर्ण रामचंद्रजीका आश्रम है, ऐसा सुनकर

गुहेन सार्धं त्वरितो जगाम पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा १८
इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवनवतितमः सर्गः ॥९९॥ [३६६१]

शततमः सर्गः ।

निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्ततः ।
जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् १
ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय ।
इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः २
सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत ।
रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च ३
गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम् ।
भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह ४
शालायास्त्वग्रतस्तस्या ददर्श भरतस्तदा ।
काष्ठानि चावभग्नानि पुष्पाण्यपचितानि च ५
स लक्ष्मणस्य रामस्य ददर्शाश्रममेयुषः ।
कृतं वृक्षेष्वभिज्ञानं कुशचीरैः क्वचित्क्वचित् ६
ददर्श भवनं तस्मिन्महतः संचयान्कृतान् ।
मृगाणां महिषाणां च करीषैः शीतकारणात् ७

वे महात्मा भरतजी खोजनेके लिए भेजी हुई सेनाको उधरही रखकर गुहके साथ जल्दही उधर चले गये। (१४-१८)

यहाँ निन्नानवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

जब सब सेना ठहर गई तो भरत भाई शत्रुघ्नको दिखाते हुए चले। ऋषि वसिष्ठको माताओंके लानेकी आज्ञा दे गुरुवत्सल भरत बडी जल्दीसे आगे बढे। सुमन्त्रभी शत्रुघ्नके पीछे ही चले जाते थे, क्योंकि उनको भी रामदर्शनोंकी बडी अभिलाषा थी। एवं जाते हुए भरतने तपस्वियोंके स्थानोंके बीचमें रामकी पर्णशाला देखी। पर्णकुटीके आगे तोडी हुई समिधा तथा फूल इकट्ठे देखे। फिर रामको लक्ष्मण सनेत कहीं पासहीसे आया हुआ शालामें घुसते हुए देखा। पर्णकुटीके आगे हरिणों भैंसोंके सूखे गोबरका

गच्छन्नेव महाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा ।
शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्यांश्च सर्वशः ८
मन्ये प्राप्ताः स तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् ।
नातिदूरे हि मन्येऽहं नदीं मन्दाकिनीमितः ९
उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदयम् ।
अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तुमिच्छता १०
इतश्चोदात्तदन्तानां कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
शैलपार्श्वे परिक्रान्तमन्योन्यमभिगर्जताम् ११
यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने ।
तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णवर्त्मनः १२
अत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम् ।
आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम् १३
अथ गत्वा मुहूर्तं तु चित्रकूटं स राघवः ।
मन्दाकिनीमनु प्राप्तस्तं जनं चेदमब्रवीत् १४
जगत्यां पुरुषव्याघ्र आस्ते वीरासने रतः ।
जनेन्द्रो निर्जनं प्राप्य धिङ्मे जन्म सजीवितम् १५
मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः ।
सर्वान्कामान्परित्यज्य वने वसति राघवः १६

देर लग रहा था । चलतेही चलते श्रीमान् भरतजी हर्षित हो शत्रुघ्न व मन्त्रियोंसे बोले, 'मैं समझता हूं कि हम लोग भरद्वाजके बताये स्थानपर आगये, क्योंकि मन्दाकिनी नदी अब पासही है । ये जो पेडकी शाखाओंमें कपडे बंधे हैं लक्ष्मणने विकालमें जानेआनेके कारण बांधे हैं ।' (१-१०)

'यह बडे बडे दन्तवाले शीघ्रगामी हाथियोंके चलनेका मार्ग है। यह उसी अग्निका धुआं है जिसे तपस्विगण सर्वदा वनमें रखना चाहते हैं। आज यहां पुरुषसिंह, पिताकी आज्ञाका अनुवर्तन करनेवाले श्रीरामको देखेंगे । ' चित्रकूट पहुंचनेके एक मुहूर्तके बाद मन्दाकिनीके पास पहुंच सब लोगोंसे भरत बोले कि । ' पुरुषसिंह श्रीराम निर्जन वनमें बैठे हैं

इति लोकसमाकृष्टः पादेष्वद्य प्रसादयन् ।
रामं तस्य पतिष्यामि सीताया लक्ष्मणस्य च १७
एवं स विलपंस्तस्मिन्वने दशरथात्मजः ।
ददर्श महतीं पुण्यां पर्णशालां मनोरमाम् १८
सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम् ।
विशालां मृदुविस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे १९
शक्रायुधनिकाशैश्च कार्मुकैर्भारसाधनैः ।
रुक्मपृष्ठैर्महासारैः शोभितां शत्रुबाधकैः । २०
अर्करश्मिप्रतीकाशैर्घोरैस्तूणगतैः शरैः ।
शोभितां दीप्तवदनैः सर्पैर्भोगवतीमिव २१
महारजतवासोभ्यामसिभ्यां च विराजिताम् ।
रुक्मबिन्दुविचित्राभ्यां चर्मभ्यां चापि शोभिताम् २२
गोधाङ्गलित्रैरासक्तैश्चित्रकाञ्चनभूषितैः ।
अरिसंघैरनाधृष्यां मृगैः सिंहगुहामिव २३
प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम् ।
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशनं २४

इससे हमारे जीनेको धिक्कार है। लोकनाथ राम मेरे कारण बड़े दुःखको प्राप्त हुए वनमें रहते हैं। यह विचार करते करते राम सीता तथा लक्ष्मणके चरणोंपर गिर पड़ूंगा।' इस तरहसे वनमें रोदन करते हुए भरतने महापुण्यदायक पर्णशाला देखी। वह सालताल तथा अश्वकर्ण आदि वृक्षोंके पत्तोंसे बनी हुई थी और अति विशाल, कोमल तथा विस्तीर्ण थी। चन्द्रकी दीप्तिके समान सुवर्णके पंख लगे बाणोंसे वह कुटी शोभित थी। दीप्तिमान, तरकस में प्राप्त, प्रकाशित मुखवाले बाणोंसे वह कुटी वैसी शोभायमान थी जैसे भोगवती। सुनहरा कब्जा तथा मियानोंवाली तल्वारों तथा ढालोंसे वह कुटी शोभित थी। चित्रविचित्र सुवर्ण-भूषित गोधाङ्गुलित्राणयुक्त होनेसे उस कुटीमें शत्रु प्रवेश नहीं कर सकते थे। (११-२३)

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् २५
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् ।
ददर्श राममासीनमभितः पावकोपमम् २६
सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ।
पृथिव्याः सागरान्ताया भर्तारं धर्मचारिणम् २७
उपविष्टं महाबाहुं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ।
स्थण्डिले दर्भसंस्तीर्णे सीतया लक्ष्मणेन च २८
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः ।
अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः २९
दृष्ट्वैव विललापार्तो बाष्पसंदिग्धया गिरा ।
अशक्नुवन्वारयितुं धैर्याद्वचनमब्रवन् ३०
यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद्युक्त उपासितुम् ।
वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः ३१
वासोभिर्बहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः ।
मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन् ३२

भरतने रामकी उस कुटीमें ईशान कोणकी ओर झुकी हुई विशाल व प्रज्वलिताग्नियुक्त वेदी देखी । पर्णशालाको मुहूर्तभरतक देखनेके पीछे जटा धारण किये रामको पर्णकुटीमें बैठे देखा । मृगचर्म धारण किये चीर, वल्कल पहिने अग्निके समान राम तेजवान् हो रहे थे। सिंह-स्कंध, आजानुबाहु कमलनयन, सागरपर्यन्त पृथिवीके जो स्वामी थे, निरन्तर रहनेवाले ब्रह्माजीके तुल्य एक चौतरापर सीता व लक्ष्मणके साथ राम बैठे थे। उन रामको देख मोहसे व्याकुल धर्मात्मा भरत सामने दौडे । (२४-२९)

और अति दुःखित हो विलाप करने लगे, कुछ देरमें धैर्य धार गद्गद-वाणीसे बोले, ' जो राम सदा प्रजा, मन्त्रियों आदिसे सेवा करने योग्य हैं वही आज मृगादिकोंसे सेवित हैं । जो महात्मा अनेक प्रकारके वस्त्रोंके

अधारयद्यो विविधाश्चित्राः सुमनसः सदा ।
सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम् ३३
यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य संचयः ।
शरीरक्लेशसंभूतं स धर्मं परिमार्गते ३४
चन्दनेन महार्हेण यस्याङ्गमुपसेवितम् ।
मलेन तस्याङ्गमिदं कथमार्यस्य सेव्यते ३५
मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः ।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ३६
इत्येवं विलपन्दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः ।
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन् ३७
दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः ।
उक्त्वार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किंचन ३८
बाष्पैः पिहितकण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम् ।
आर्येत्येवाभिसंक्रुश्य व्याहर्तुं नाशकत्ततः ३९
शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन् ।
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत् ४०

धारण करने योग्य है, वही राम आज मृगचर्म धारे हुए हैं। जो राम नाना पुष्पोंकी मालाओंको धारण करते थे, वही आज जटाका भार सह रहे हैं। जिन रामके यज्ञोंके करनेसे धर्मराशि इकट्ठी हो गई थी, वेही राम शरीरक्लेशसे उत्पन्न धर्मोको ढूंढते हैं। जिस रामके शरीरपर चन्दन लगाये जाते थे, उसमें अब धूल लगी है। जिस मेरे कारणसे सदा सुखोचित रामको दु:ख मिला, उस निर्लज्ज मुझको धिक्कार है।' (३०-३६)

एवं विलाप करते भरतने खिन्नमुख हो रामके चरण छूनेको हाथ बढाया, पर मूर्च्छित हो गिर पड़े। महाबली राजकुमार भरतने दु:खसे दीन हो "हे आर्य!" यह तो कहा फिर कुछ न बोल सके। शत्रुघ्नने भी रोते हुए रामके चरणोंमें प्रणाम किया। दोनोंको आलिंगन कर श्रीरामने भी अश्रुपात किया। तथा उसी तरह श्रीराम व लक्ष्मण सुमन्त्र और गुहसे ऐसे

ततः सुमन्त्रेण गुहेन चैव समीयतू राजसुतावरण्ये ।
दिवाकरश्चैव निशाकरश्च यथाम्बरे शुक्रबृहस्पतिभ्याम् ४१
तान्पार्थिवान्वारणयूथपाहान्समागतांस्तत्र महत्यरण्ये ।
वनौकसस्तेऽभिसमीक्ष्य सर्वे त्वश्रूण्यमुञ्चन्प्रविहाय हर्षम् ४२

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे शततमः सर्गः॥१००॥ [३७०३]

एकोत्तरशततमः सर्गः ।

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि ।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा १
कथंचिदभिविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम् ।
भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना २
आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम् ।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ३
क्व नु तेऽभूत्पिता तात यदरण्यं त्वमागतः ।
न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तुमर्हसि ४
चिरस्य बत पश्यामि दूराद्भरतमागतम् ।
दुष्प्रतीकमरण्येऽस्मिन्किं तात वनमागतः ५
कच्चिन्नु धरते तात राजा यत्त्वमिहागतः ।
कच्चिन्न दीनः सहसा राजा लोकान्तरं गतः ६

मिले जैसे कि सूर्य व चन्द्रमा गगनमें शुक्र व बृहस्पतिसे मिले । उस समय उन राजकुमारोंको वहाँ उस महावनमें एकत्रित हुए देखकर उस वनमें बसनेवाले लोग भी हर्षको त्यागकर अश्रुपात करने लगे। (३७–४२)

यहाँ १०० सर्ग समाप्त हुआ ।

जटाधारी चीरवसन पहरे प्राञ्जलि हो भूमिमें पडे भरतको युगान्त सूर्यके तुल्य रामने देखा। शोकसे विवर्णवदन भरतको रामने कठिनतासे पहिचाना और भरतको हाथोंसे ग्रहण किया । मस्तक सूंघ छातीसे लगा गोदमें बिठा आदरसे राम पूछने लगे– 'हे तात ! तुम्हारे पिता कहां गये जो तुम वनको आये ? हे तात! वनमाल चले जानेके कारण बहुत दिनोंके पीछे तुम्हें देखा, इससे बडा हर्ष हुआ । इस वनमें तुम कैसे आये हो ? हे तात ! क्या राजा

कच्चित्सौम्य न ते राज्यं भ्रष्टं बालस्य शाश्वतम्।
कच्चिच्छुश्रूपसे तात पितुः सत्यपराक्रम ७
कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः।
राजसूयाश्वमेधानामाहर्ता धर्मनिश्चितः ८
स कच्चिद्ब्राह्मणो विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युतिः।
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ९
तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती।
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी १०
कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः।
अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ११
कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा १२
कच्चिद्देवान्पितॄन्भृत्यान्गुरून्पितृसमानपि।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे १३
इष्वस्त्रवरसंपन्नमर्थशास्त्रविशारदम्।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित्त्वं तात मन्यसे १४

जीवित हैं, जो उनको छोड यहां चले आये? या राजा स्वर्गको सिधार गये? तुम बालकोंके रह जानेसे वह अक्षय राज्य नष्ट तो नहीं हो गया? यदि पिता जीवित हैं तो उनकी सेवा भली प्रकार करते हो? राजा दशरथ कुशलपूर्वक तो हैं? राजा अश्वमेधादि यज्ञ करनेका विचार तो करते हैं? इक्ष्वाकुवंशके पुरोहित विद्वान् वेदज्ञ महातेजस्वी वसिष्ठकी पूजा तो तुम करते हो? हे तात! माता कौसल्या व सुमित्रा तथा परमश्रेष्ठ कैकेयी आनन्दित तो हैं? (१-१०)

'नियमसम्पन्न, सुकुलमें उत्पन्न वेदज्ञ सत्कर्मनिपुण वसिष्ठके पुत्र पुरोहित का आदर तो करते? अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें तुमने मतिमान् ऋत्विजोंको नियत किया है, वे समयपर अग्निहोत्र तो करते हैं? हे तात! देवता, पितर, मन्त्री, सेवक, महान गुरु, वृद्धजन, वैद्य गण व ब्राह्मणोंकी तुम संमानना तो

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः १५
मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः १६
कच्चिन्निद्रावशं नैपि कच्चित्कालेऽवबुध्यसे ।
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम् १७
कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति १८
कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम् ।
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव १९
कच्चित्तु सुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः ।
विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्तव्यानि पार्थिवाः २०
कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः ।
त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम् २१
कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत् २२

करते रहते हो ? हे तात ! बाणविद्या तथा अन्य शस्त्रास्त्रोंमें अति निपुण, सुधन्वानाम उपाध्यायका सत्कार तो करते हो ? तुमने अपने तुल्य वेदज्ञ जितेन्द्रिय मन्त्री तो नियत किये हैं? हे राघव राजाओंको मन्त्रही विजयका मूल होता है, इससे राजाको चाहिये कि श्रेष्ठ मन्त्रीसे सदा सलाह लिया करें। कभी संध्यादि कालमें सोते तो नहीं हो. समयपर जागते तो हो पहरभर रात्रि रहे उठ कर प्रयोजन सिद्धिका विचार तो करते हो? मन्त्र एकही साथ बैठकर करते हो कि नहीं ? हे भरत ! अल्प व्ययसे बडा कार्य पूरे होनेका निश्चय कर जल्दी आरम्भ तो कर देते हो ? तुम्हारे कृत वा भावी कार्यको तुम्हारे अधीन राजा लोग जान तो नहीं लेते ? (११-२०)

'हे तात ! तुम्हारे विना कहे अन्य लोग तुम्हारे अभिप्रायको तो नहीं जान लेते, तुम दूसरे की मन्त्रणाको युक्तिसे जान तो लेते हो ? क्या तुम

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता २३
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् २४
कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः २५
अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्शुचीन् ।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु २६
कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः ।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुत २७
कच्चित्त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः २८
उपायकुशलं वैद्यं भृत्यं संदूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्यकामं च यो न हन्ति स हन्यते २९
कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान्मतिमाञ्शुचिः ।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ३०

सहस्रों मूर्खोंसे एक पण्डितकी तो विशेष इच्छा करते रहते हो? कठिन समस्याको पण्डितही सुलझा सकता है। राजा यदि सहस्रों मूर्खोंकोभी अपने पास रक्खे तो भी उनसे कोई सहायता नहीं मिल सकती। शूर विचक्षण और दक्ष एकही मन्त्री राजाको महान् श्री प्राप्त कराता है। हे तात! क्या तुम बडे कार्यके लिये महत् कर्मण्य सेवक नियत करते हो? सुपरीक्षित पुराने व कपटहीन श्रेष्ठतर अमात्योंको श्रेष्ठ कामोंमें नियुक्त करते हो? क्या अल्प अपराधमें अति कठोर दण्ड देकर प्रजाओंको दुःखी तो नहीं करते? तुमको यज्ञ करानेवाले ऋत्विगण पतित तो नहीं समझते? मन्दूषणमें रत वैद्य वा मन्त्रीको जो राजा नहीं मार डालता, वह आप मार डाला जाता है। क्या तुमने शूर धैर्यवान् कुलीन व स्वामीभक्त सेनापति नियत किया है वा नहीं? (२१-३०)

बलवन्तश्च कच्चित्ते मुख्या युद्धविशारदाः ।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ३१
कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
संप्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विलम्बसे ३२
कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भृताः ।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्कृतः ३३
कच्चित्सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः ।
कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति समाहिताः ३४
कच्चिज्जानपदो विद्वान्दक्षिणः प्रतिभानवान् ।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ३५
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारणैः ३६
कच्चिद्व्यपास्तानहितान्प्रतियातांश्च सर्वदा ।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन ३७

'क्या बलवान् लोगोंको जो सब तरहके युद्धमें चतुर हैं, प्रिय वचनोंसे तथा वस्त्र भूषणादि दे तुमने प्रसन्न रक्खा है ? क्या सेना आदिके आदमियोंको प्रतिदिन भोजन व समयपर मासिक वेतन चुका देते हो ? नौकरोंको समयपर भोजन व वेतन न मिलनेसे वे अपने स्वामीपर असन्तोष प्रकट करते हैं। क्या तुम्हारे वंशवाले लोग तुमको प्रधान समझ तुममें प्रीति रखते हैं ? क्या राजनीति जाननेवाला, चतुर, यथार्थ सन्देश कहनेवाला, स्वदेशी दूत नियत किया है ? क्या अपने लिये अष्टादश मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपालक, अन्तःपुरका अधिकारी, जेलखानेका दारोगा, खजांची, राजाज्ञानुसार औरोंको आज्ञा देनेवाला, लेन देन जाननेवाला, धर्माध्यक्ष, व्यवहारोंको निर्णय करनेवाला, फौजको तनख्वाह बांटनेवाला, ठेकेदार, नगराध्यक्ष, नगरकी रीतिपर रहनेवाला दुष्टोंको दण्ड देनेका अधिकारी दल, पर्वत, वन कोट इनका रक्षक, इन लोगोंको तुम रखते हो ? क्या शत्रुओंको देशसे निकाल पुनः विना परीक्षा किये बसने तो नहीं दिया ?

कच्चिन्न लोकायतिकान्ब्राह्मणांस्तात सेवसे ।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ३८
धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते ३९
वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः ।
सत्यनामां दृढद्वारां हस्त्यश्वरथसंकुलाम् ४०
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः स्वकर्मनिरतैः सदा ।
जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृतामार्यैः सहस्रशः ४१
प्रासादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम् ।
कच्चित्समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे ४२
कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्टजनाकुलः ।
देवस्थानैः प्रपाभिश्च तटाकैश्चोपशोभितः ४३
प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सवशोभितः ।
सुकृष्टसीमापशुमान्हिंसाभिरभिवर्जितः ४४
अदेवमातृको रम्यः श्वापदैः परिवर्जितः ।
परित्यक्तो भयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः ४५
विवर्जितो नरैः पापैर्मम पूर्वैः सुरक्षितः ।
कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव ४६

क्या नास्तिकादि ब्राह्मणोंकी सेवा तो नहीं करते ? ये लोग वेदादि धर्मशास्त्र नहीं मानते और अपनी मन मानी तर्कणायें किया करते हैं। (३१-३९)

'क्या हमारे पूर्वजोंकी भोगी हुई दृढद्वारवाली जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने अपने कर्मोंके करनेमें लगे रहते हैं व जिसमें अनेक प्रकारके मन्दिर हैं, वैद्योंके गृह हैं, ऐसी अयोध्यापुरीकी रक्षा करते हो ? हे भरत ! क्या यज्ञशालाओं देवालय, गोशाला तालाबोंसे शोभित, मनुष्यों-से भरापूरा, उत्सवोंसे शोभित, अच्छे पशुओंसे सेवित, अनेक नदी तडागों से संयुक्त, अति रमणीय, सब भयोंसे हीन, खानोंसे पूर्ण, पापी मनुष्योंसे हीन, हमारे पूर्वजोंसे रक्षित, धनधान्यमय कौसल देश सुखसे बसता

कच्चित्ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्ष्यजीविनः।
वार्तायां संश्रितं तात लोकोऽयं सुखमेधते ४७
तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित्ते भरणं कृतम्।
रक्ष्या हि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः ४८
कच्चित्स्त्रियः सान्त्वयसे कच्चित्तास्ते सुरक्षिताः।
कच्चिन्न श्रद्दधास्यासां कच्चिद्गुह्यं न माषसे ४९
कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित्ते सन्ति धेनुकाः।
कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुञ्जराणां च तृप्यसि ५०
कच्चिद्दर्शयसे नित्यं मानुषाणां विभूषितम्।
उत्थायोत्थाय पूर्वाह्ने राजपुत्र महापथे ५१
कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशङ्कया।
सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमे वात्र कारणम् ५२
कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः।
यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ५३
आयस्ते विपुलः कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव ५४

है? क्या कृषक गोपालक वणिक लोग सब आनन्दसे बसते हैं और अपना अपना काम करके लाभ उठाते हैं? क्या व्यापारी लोगोंकी रक्षा तस्कर चोरादिकोंसे करते हो? उनका भरण पोषण होता जाता है? क्या अपनी स्त्रियोंको समझाते रहते हो, उनकी बातोंका विश्वास तो नहीं मानते और मनकी गुप्त बात तो उनसे नहीं कह डालते? क्या हस्ति वनमें हाथी रहते हैं, उनकी रक्षा करते हो? गाय बैल इत्यादि तो रक्षित हैं। (४०-५०)

'क्या अच्छे अच्छे भूषण वस्त्र पहिन सड़कोंपर दोपहरके पहिले घूमते हो? क्या सब कारबारी निडर हो तुम्हारे पास तो नहीं चले आते, या भयसे अति दूर तो नहीं रहते? क्या तुम्हारे दुर्ग अन्न, जल शस्त्र यन्त्र व धनुर्धारी आदिकोंसे भरे हुए हैं? क्या तुम्हारे पास आमदनी

देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च ।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद्गच्छति ते व्ययः ५५
कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा ।
अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्बध्यते शुचिः ५६
गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः ।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ ५७
व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव ।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः ५८
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव ।
तानि पुत्रपशून्घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ५९
कच्चिद्वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान्मुख्यांश्च राघव ।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे ६०
कच्चिद्गुरूंश्च वृद्धांश्च तापसान्देवतातिथीन् ।
चैत्यांश्च सर्वान्सिद्धार्थान्ब्राह्मणांश्च नमस्यसि ६१
कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः ।
उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन न विबाधसे ६२

खर्च कम है या नहीं! क्या देवता, पितर, ब्राह्मण, अतिथि, सेना, व मन्त्री के लिये खर्च होता है या नहीं? क्या शुद्धात्मा पवित्र श्रेष्ठ गुण युक्त लोगोंको लोभमें आ बंधनमें तो नहीं डालते? क्या चोर को चोरी प्रमाणित हो जानेपर भी धनके लोभसे बिना दण्ड दिये तो नहीं छोड देते? क्या धनाढ्य या रङ्कपर कष्ट पडनेपर तुम्हारे न्यायाधीशादि निर्लोभ हो उनका प्रयोजन देखते हैं? निरपराधी लोगोंको जब दण्ड दिया जाता है, तो दण्ड देनेवाले राजा व राजसेवकके पुत्रादि नष्ट हो जाते हैं। क्या वृद्ध, बालक, वैद्य व मुखिया लोगोंको दान मानसे आदृत करते हो? (५१-६०)

'क्या गुरु, वृद्ध, तपस्वी, देवता आदिको अभिवादन करते हो? क्या कभी अर्थसे धर्म व धर्मसे अर्थ व अर्थधर्म दोनोंको लोभ व कामसे तो

कच्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयतां वर।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान्वरद सेवसे ६३
कच्चित्ते ब्राह्मणाः शर्म सर्वशास्त्रार्थकोविदाः।
आशंसते महाप्राज्ञ पौरजानपदैः सह ६४
नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ६५
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ६६
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान्राजदोषांश्चतुर्दश ६७
दशपञ्चचतुर्वर्गान्सप्तवर्गं च तत्त्वतः।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव ६८
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्या षाड्गुण्यं दैवमानुषम्।
कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृतिमण्डलम् ६९
यात्रादण्डविधानं च द्वियोनी संधिविग्रहौ।
कच्चिदेतान्महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे ७०

नहीं रोक देते? क्या अर्थ काम व धर्म अपने अपने समयपर सेवन करते हो? क्या पुर व देशमें बसनेवाले ब्राह्मणगण तुम्हारा कल्याण चाहते हैं? क्या नास्तिकता, मिथ्या क्रोध, अहङ्कार, आलस्य, इन्द्रियोंके वशीभूत होना, अकेलेही विचार करना, वा अजान लोगोंसे सलाह लेना, गुप्त मन्त्रको प्रकट कर देना, नवीन आरम्भमें मङ्गलाचरण न करना, सब तरहके नीच व छोटे लोगोंको भी देख उठ खडे होना, क्या राजाओंके इन दोषोंको तुम निवारण करते हो? हे भरत! क्या १० वर्ग, ५ वर्ग, ४ वर्ग, ७ वर्ग, ८ वर्ग, ३ वर्ग व तीनों विद्या, इन्द्रियोंका जीतना ६ वर्ग देवता व मनुष्योंसे दु:ख, राजकृत्य २० वर्ग ५ प्रकृति १२ मण्डल यात्रा-विधान दण्डविधान मिलाप करना व विरोध करना इनके कर्तव्याकर्तव्यका विचार करते हो? (६३–७०)

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा।
कच्चित्समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसे बुध ७१
कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलाः क्रियाः।
कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम् ७२
कच्चिदेषैव ते बुद्धिर्यथोक्ता मम राघव।
आयुष्या च यशस्या च धर्मकामार्थसंहिता ७३
यां वृत्तिं वर्तते तातो यां च नः प्रपितामहः।
तां वृत्तिं वर्तसे कच्चिद्या च सत्पथगा शुभा ७४
कच्चित्स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः संप्रयच्छसि ७५
राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान् ७६

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकोत्तरशततमः सर्गः ॥१०१॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः। [३७७९]

तं तु रामः समाज्ञाय भ्रातरं गुरुवत्सलम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा प्रष्टुं समुपचक्रमे १

'हे भरत! क्या शास्त्रानुसार मन्त्रियोंके साथ बैठके मन्त्रणा करते हो? हे भरत! क्या तुम्हारा वेदपाठ और क्रिया सफल है? क्या तुम्हारी स्त्री और विद्या सफल हुई है? हे भरत! क्या आयुर्वर्धक, यशस्कर और धर्मकामानुसारी तुम्हारी बुद्धि है? पिता तथा अपने पूर्वजोंका वर्तन जैसा था, क्या उसी सत्पथसे तुम जाते हो? पकाया हुआ अन्न अकेला न खाकर, उसकी इच्छा करनेवाले मित्रोंको देकरही खाते हो? जो राजा धर्मसे प्रजापालन करता है, वह पृथिवी भरका राज्य भोगता है और अन्तमें स्वर्गको प्राप्त होता है'। (७१-७६)

यहाँ १०१ सर्ग समाप्त हुआ।

वह अपना भाई भरत पिताके संबंधमें प्रेमपूर्ण भाव मनमें रखता है ऐसा समझकर रामचंद्रजी भाई लक्ष्मणके साथ उससे पूछने लगा-"भला,

किमेतदिच्छेयमहं श्रोतुं प्रव्याहृतं त्वया ।
यस्मात्त्वमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी २
यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः ।
हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ३
इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना ।
प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ४
आर्यं तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ५
स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परंतप ।
चकार सा महत्पापमिदमात्मयशोहरम् ६
सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्शिता ।
पतिष्यति महाघोरे नरके जननी मम ७
तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ८

यह क्या है, बताओ; तू इधर वल्कल, जटा, तथा अजिन या मृगछाला पहनकर आया है, इसका कारण क्या है? मैं तेरे मुँहसे जल्दही इस ढंगसे आनेका कारण सुनना चाहता हूँ। इसलिये, जिस कारणसे राज्यपदका त्याग करके और जटाधारी एवं काला मृगचर्म पहनकर ऐसी जगह चला आया है, सो मुझको पूरा तरह बतला दे।" (१–३)

इसभाँति महात्मा ककुत्स्थकुलभूषण रामचन्द्रजीने यह प्रश्न उनके सामने पेश किया, तब बडी कठिनाईसे फिर उमडते हुए दुःखभारको मनमेंही रोककर तथा हाथको जोडकर भरत उनसे कहने लगे– " क्या कहूँ भाई! मेरी माता कैकेयी उनकी पत्नी बनगयी थीं और उसकी प्रेरणासे बडा विकट कार्य करके पुत्रके शोकसे दुःखी बनकर पिताजी बडे भारी पराक्रमी होनेपर भी स्वर्ग सिधार गये; इस तरह उस मेरी माताने अपनी कीर्तिको कलंक लग जावे, ऐसा यह बडा भारी पापकर्म किया है। अब तो वह शोकावेगके मारे दुबली पतली तथा विधवाभी बनी मेरी माता राज्यफल

इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः ।
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ९
तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद ।
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदः कुरु १०
भवत्वविधवा भूमिः समग्रा पतिना त्वया ।
शशिना विमलेनेव शारदी रजनी यथा ११
एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि १२
तदिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् ।
पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रमितुमर्हसि १३
एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः कैकयीसुतः ।
रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः १४

पानेके बजाय अत्यन्त डरावने नरकमें जा गिरेगी । इसलिये, मैं अब दास बनकर आपके पास चला आया हूँ, तो कृपा कीजिये, आजहीके दिन इन्द्रके समान आप अपना निजी राज्याभिषेक संपन्न कर लीजियेगा । देखिए तो, ये सारे सचिव और पतिरहित माताएँ आपके पास चली आयी हैं, इसलिये उनपर कृपा कीजिये। और परंपरागत प्रथाके अनुसार आपही नरेश बननेकी क्षमता रखते हैं, तथा आपकाही राजगद्दीपर बैठकर अभिषिक्त होना सर्वथैव उचित है। इसलियेभी धर्मपूर्वक आप राज्यका अंगीकार करके अपने मित्रोंकी कामना पूर्ण कीजिये । जिस तरह शरद्‌ऋतुकी रात्रि निष्कलंक चन्द्रमाके कारण सनाथसी प्रतीत होती है, ठीक वैसेही यह सारी पृथ्वी आप जैसे पतिदेवको पाकर सनाथ बने । इन सचिवोंके साथ मैं आपके चरणोंपर माथा टेककर प्रार्थना करता हूँ कि इस भाईपर, शिष्यपर तथा दासपरभी दयापूर्ण दृष्टिसे देखिये । हे पुरुषश्रेष्ठ ! परंपरासे चले आये एवं पूर्वजोंसे सन्मानित इस मंत्रीमण्डलका अतिक्रमण करना आपको उचित नहीं।" (८-१३)

इस तरह आँखोंमें आँसू भरकर महापराक्रमी भरतने प्रार्थना की और फिर रामचंद्रजीके चरणोंपर शीश रखा। तब मतवाले हाथीकी तरह

तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनः पुनः।
भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् १५
कुलीनः सत्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः १६
न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन।
न चापि जननीं बाल्यात्त्वं विगर्हितुमर्हसि १७
कामकारो महाप्राज्ञ गुरूणां सर्वदानघ।
उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते १८
वयमस्य यथा लोके संख्याताः सौम्य साधुभिः।
भार्याः पुत्राश्च शिष्याश्च त्वमपि ज्ञातुमर्हसि १९
वने वा चीरवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम्।
राज्ये वाऽपि महाराजो मां वासयितुमीश्वरः २०
यावत्पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते।
तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् २१

बारबार साँस लेते हुए भाई भरतसे उसे गले लगाकर वे बोले– "कुलीन, सात्त्विक गुणशाली, तेजस्वी एवं व्रतधारी मुझ जैसा पुरुष भला राज्यके लिये पाप कैसे करे? शत्रुओंके विध्वंस करनेवाले हे भरत! बीती घटना के बारेमें मुझे तुम्हें दोष लगानेका तनिक भी कारण नहीं दीख पड़ता है और मैं कहना चाहता कि बचपनकी वजहसे तू अपनी माताकी निंदा कर रहा है तो वैसा न कर। निष्पाप और ज्ञानसंपन्न भाई भरत! अपने समझे गये पुत्रों तथा पत्नियोंपर चाहे जैसी आज्ञा लादना बुजुर्ग लोगोंके शाश्वत अधिकारके भीतर आता है। सज्जनोंकी राय है कि संसारमें पत्नी, पुत्र एवं शिष्यकी गिनती उन लोगोंमें करनी चाहिये जिन्हें गुरु या पिता मनचाही आज्ञा कर सकते हैं। स्वर्गवासी दशरथ नरेशसे हमारा भी वही संबंध है, यह बात कभी तुम्हें न भूलनी चाहिये। दशरथमहाराजको पूर्ण अधिकार है कि वे मुझको वल्कल और काला मृगचर्म पहनाकर जंगलमें भिजवा दें या राजगद्दीपर बिठला दें। धर्मनिष्ठोंमें श्रेष्ठ एवं धर्मज्ञ भाई

एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव ।
मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे २२
त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् ।
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा २३
एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ ।
व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः २४
स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव ।
पित्रा दत्तं यथाभागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि २५
यदब्रवीन्मां नरलोकसत्कृतः पिता महात्मा विबुधाधिपोपमः।
तदेव मन्ये परमात्मनो हितं न सर्वलोकेश्वरभावमव्ययम् २६
इत्यार्षे श्री०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्व्युत्तरशततम: सर्गः ॥१०२॥ [३८०५]

त्र्युत्तरशततम: सर्गः ।

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह ।
किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति १

भरत ! जनताके लिये माननीय पिताके तुल्य माताकोभी गौरव प्रदान करना ठीक है। जब कि दोनोंही धर्मशील मातापिताओंने मुझको "वनमें जाओ" यह आज्ञा देदी है तब, रघुवंशभूषण भरत ' मैं भला किस तरह विपरीत आचरण करूं ? (१४–२२)

'अयोध्यामें जनतानुमोदित राज्यशासनभार तुम्हें उठाना पडेगा और मुझे वल्कल पहनकर दण्डक वनमें रहना चाहिये ऐसा सारी जनताके सामने कहकर तथा वैसेही बर्ताव रखनेकी आज्ञा देकर राजा दशरथ स्वर्ग सिधारे। वही जनताका गुरु धर्मनिष्ठ नरेश तुम्हारे लिये प्रमाण है, इसलिये पिताजीके किये विभागानुसार प्राप्त राज्यका उपभोग तुम्हें लेना चाहिये। सभी मानवोंके मान्य बने हुए देवेन्द्रतुल्य पिताने जो मुझसे कहा उसमेंही मेरा सर्वोपरि कल्याण धरा है, नकि अटट स्वर्गलोक राज्यमें, ऐसी मेरी राय है। (२३–२६)

यहाँ १०२ सर्ग समाप्त हुआ।

शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजा न कनीयान्भवेन्नृपः २
स समृद्धां मया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव ।
अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः ३
राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे संमतो मम ।
यस्य धर्मार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम् ४
केकयस्थे च मयि तु त्वयि चारण्यमाश्रिते ।
धीमान्स्वर्गं गतो राजा यायजूकः सतां मतः ५
निष्क्रान्तमात्रे भवति सहसीते सलक्ष्मणे ।
दुःखशोकाभिभूतस्तु राजा त्रिदिवमभ्यगात् ६
उत्तिष्ठ पुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकं पितुः ।
अहं चायं च शत्रुघ्नः पूर्वमेव कृतोदकौ ७
प्रियेण किल दत्तं हि पितृलोकेषु राघव ।
अक्षयं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः ८
त्वामेव शोचंस्तव दर्शनेप्सुस्त्वय्येव सक्तामनिवर्त्य बुद्धिम् ।
त्वया विहीनस्तव शोकरुग्णस्त्वां संस्मरन्नेव गतः पिता ते ९
इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्र्युत्तरशततमः सर्गः॥१०३॥[३८१८]

रामके वचन सुन भरत बोले कि 'धर्महीन मेरे राजधर्मसे क्या सिद्ध होगा? यह सदाका धर्म चला आता है कि ज्येष्ठ पुत्रके स्थितत्वमें छोटा पुत्र राजा नहीं होता। सो अब अयोध्याको मेरे साथ चलो, मेरे तथा इस कुलके कल्याणके लिये अभिषेक करा राजा बनो। क्योंकि जिन राजाके सब कर्म धर्म अर्थ सहित देवोंके समान थे, वे मेरे पिता स्वर्गवासी हो गये। मैं केकयदेशमें था और आप यहां। इसी बीचमें राजा दशरथ स्वर्गको चले गये। जानकी लक्ष्मण सहित आपके वनको चले आनेके पीछे शोकसे दुःखित हो राजा स्वर्गको सिधार गये। सो हे पुरुषसिंह! चलिये, पिताको जलदान कीजिये। मैं तथा शत्रुघ्न पूर्वही जलदान कर चुके हैं। धर्मशास्त्रमें कहा गया है कि जो जलादि कोई प्रिय देता है, वह पितरलोकमें सर्वदा रहता है।

चतुरुत्तरशततमः सर्गः।

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम्।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः ॥ १
तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा।
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं परंतपः ॥ २
प्रगृह्य रामो बाहू वै पुष्पिताङ्ग इव द्रुमः।
वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह ॥ ३
तथा हि पतितं रामं जगत्यां जगतीपतिम्।
कूलघातपरिश्रान्तं प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ ४
भ्रातरस्ते महेष्वासं सर्वतः शोककर्शितम्।
रुदन्तः सह वैदेह्या सिषिचुः सलिलेन वै ॥ ५
स तु संज्ञां पुनर्लब्ध्वा नेत्राभ्यामश्रुमुत्सृजन्।
उपाक्रामत काकुत्स्थः कृपणं बहु भाषितुम् ॥ ६
स रामः स्वर्गतं श्रुत्वा पितरं पृथिवीपतिम्।
उवाच भरतं वाक्यं धर्मात्मा धर्मसंहितम् ॥ ७
किं करिष्याम्ययोध्यायां ताते दिष्टां गतिं गते।
कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पालयिष्यति ॥ ८

आपके वियोगसे हुए शोकसे जर्जर होकर और दुःख तथा आपका स्मरण करते करते पिता स्वर्गको चले गए।' (१-९)

यहाँ १०३ सर्ग समाप्त हुआ।

पिताके मरणकी बात भरतके मुखसे रामने जब सुनी तो मूर्च्छित हो गये। युद्धमें इन्द्रके छोडे हुए वज्रके तुल्य कठोर भरतका वाक्य सुनकर दोनों हाथ शिरपर रख कुल्हाडीसे कटे वृक्षके समान राम भूमिमें गिर पडे। परिश्रांत हाथीके समान रामको भूमिपर मूर्च्छित हो गिरा देख तीनों भाई व सीता शोकमूर्च्छित रामके ऊपर जल छिडकने लगीं। जब रामकी मूर्च्छा जगी तो वे करुणासे भरे वचन कहने लगे। राजाको स्वर्गगत सुन राम धर्मसंयुक्त वचन भरतसे बोले कि 'पिता तो मरणधर्मको प्राप्त हुए, हम

किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः।
यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः ९
अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ।
शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः १०
निष्प्रधानामनेकाग्रां नरेन्द्रेण विना कृताम्।
निवृत्तवनवासोऽपि नायोध्यां गन्तुमुत्सहे ११
समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप।
कोऽनुशासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरं गते १२
पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन्।
वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतः कर्णसुखान्यहम् १३
एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः।
उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् १४
सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण।
भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः १५
ततो बहुगुणं तेषां बाष्पं नेत्रेष्वजायत।
तथा ब्रुवति काकुत्स्थे कुमाराणां यशस्विनाम् १६
ततस्ते भ्रातरः सर्वे भृशमाश्वास्य दुःखितम्।

अयोध्यामें जाकर क्या करेंगे ? श्री दशरथके बिना अयोध्याका पालन कौन करेगा ? उन महात्मा राजाका कौन काम मुझ ऐसे कुपूतसे होगा कि उनकी प्रेत-क्रिया भी मैंने न की। हे भरत ! तुम सिद्धार्थ हो गये जो पिताके सब प्रेतकार्य तुमने किये ! (१-१०)

'मैं तो वनवास समाप्त होनेपर भी अनाथ अयोध्याको नहीं जाना चाहता। वनवास समाप्त कर अयोध्याको मेरे जानेपर बिना पिताके मुझको कौन सिखलावेगा ? मुझको जो बातें पिता कहते थे जिनको सुनतेही कानोंको सुख होता था, अब मैं किससे सुनूंगा ?' भरतसे ऐसा कह राम शोकसन्तप्त हो जानकीसे कहने लगे कि 'हे सीता, तुम्हारे श्वसुर मृतक हो गए, हे लक्ष्मण ! तुम पिताहीन हो गये।' रामके ऐसा कहनेपर तीनों भाई रोदन

मुमोच तुमुलं शब्दं द्यौरिवाभ्रसमागमे 40
तेन वित्रासिता नागाः करेणुपरिवारिताः।
आवासयन्तो गन्धेन जग्मुरन्यद्वनं ततः 41
वराहमृगसिंहाश्च महिषाः सृमरास्तथा।
व्याघ्रगोकर्णगवया वित्रेसुः पृषतैः सह 42
रथाङ्गहंसा नत्यूहाः प्लवाः कारण्डवाः परे।
तथा पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञा भेजिरे दिशः 43
तेन शब्देन वित्रस्तैराकाशं पक्षिभिर्वृतम्।
मनुष्यैरावृता भूमिरुभयं प्रबभौ तदा 44
ततस्तं पुरुषव्याघ्रं यशस्विनमकल्मषम्।
आसीनं स्थण्डिले रामं ददर्श सहसा जनः 45
विगर्हमाणः कैकेयीं मन्थरासहितामपि।
अभिगम्य जनो रामं बाष्पपूर्णमुखोऽभवत् 46

गडगडाहट शुरु होती है वैसेही कई यानों, वाहनों एवं रथोंके पहियोंसे प्रताडित भूमिसे गंभीर गर्जन सुनाई पडा। हथिनीसे घिरे हाथी उससे घबरा गये और अपने मस्तपनसे उत्पन्न जलधाराके सौरभसे दिशाओंको सुगन्धित करते हुए वे उधरसे दूसरी वनभूमिमें घुस गये। सूवर, मृग, सिंह, भैंसे, सृमर, बाघ, गोकर्ण, गवय, पृसत् भी दूसरे जंगलमें चले गये। चकवा, हंस, पानीके मुर्ग, प्लव नामक बगुले, कारंडव, कोयल, क्रौंच जैसे पंछीभी सुधबुध भूलकर हर दिशामें भागने लगे। उस आवाजसे सहमे हुए पक्षियोंसे भरा आस्मान तथा मानवोंसे व्याप्त भूमि दोनों सुहाने लगे। (३८-४४)

बादमें पापरहित एवं यशस्वी रामचंद्रजी, जो कि पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, एक चट्टानपर बैठे हुए यकायक उन लोगोंको दीख पडे। मंथराके साथ रहनेवाली कैकेयीकी निन्दा करती हुई जनताके आँखोंमें रामके समीप पहुँच जानेपर आँसू उमड पडे। आँसूभरी नयनोंवाले लोगोंको, जो कि बडे भारी दुःखमें पडे थे, देखकर धर्मज्ञ रामचंद्रजी मातापिताके तुल्य उन्हें गले

ताम्नरान्वाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान् ।
पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ४७
स तत्र कांश्चित्परिषस्वजे नरान्नराश्च केचित्तु तमभ्यवादयन् ।
चकार सर्वान्सवयस्यबान्धवान्यथार्हमासाद्य तदा नृपात्मजः ४८
ततः स तेषां रुदतां महात्मनां भुवं च खं चानुविनादयन्स्वनः ।
गुहा गिरीणां च दिशश्च संततं मृदङ्गघोषप्रतिमो विशुश्रुवे ४९

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥१०४॥

पञ्चोत्तरशततमः सर्गः । [३८६३]

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च ।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः १
राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति ।
ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् २
कौसल्या बाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ।
सुमित्रामब्रवीद्दीनां याश्चान्या राजयोषितः ३
इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम् ।
वने प्राक्केवलं तीर्थं ये ते निर्विषयीकृताः ४
इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः ।

लगाने लगे। उस स्थानपर कइयोंको उन्होंने आलिंगन दिया तो कुछ उन्हें प्रणाम करने लगे। राजपुत्र रामचंद्रजी योग्यताके अनुसार सबसे मिले और वे उनके मित्र एवं बांधव बन गये। पश्चात्, बिलखते हुए उन महान पुरुषों के इस ध्वनिसे भूमि, आकाश एवं पर्वतगुहाएँ सभी गूँज उठीं और ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों कहीं मृदंग बाजा बज रहा हो। (४५-४९)

यहाँ १०४ सर्ग समाप्त हुआ।

वसिष्ठ भी महाराज दशरथकी कौशल्यादि स्त्रियोंको आगे कर रामके पास चले। राजस्त्रियोंने जाते जाते मन्दाकिनी नदीको देखा तथा राम व लक्ष्मणके स्नान योग्य घाटभी देखा। उसे देख उदासमुख कौशल्या अन्य स्त्रियोंसे बोलीं कि 'मेरे अनाथ वनवासी राम सीता लक्ष्मणके स्नान कर-

स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात् ५
जघन्यमपि ते पुत्रः कृतवान्न तु गर्हितः ।
भ्रातुर्यदर्थरहितं सर्वं तद्गर्हितं गुणैः ६
अद्यायमपि ते पुत्रः क्लेशानामतथोचितः ।
नीचानर्थसमाचारं सज्जं कर्म प्रमुञ्चतु ७
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु सा ददर्श महीतले ।
पितुरिङ्गुदिपिण्याकं न्यस्तमायतलोचना ८
तं भूमौ पितुरार्तेन न्यस्तं रामेण वीक्ष्य सा ।
उवाच देवी कौसल्या सर्वा दशरथस्त्रियः ९
इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महात्मनः ।
राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि १०
तस्य देवसमानस्य पार्थिवस्य महात्मनः ।
नैतदौपयिकं मन्ये भुक्तभोगस्य भोजनम् ११
चतुरन्तां महीं भुक्त्वा महेन्द्रसदृशो भुवि ।
कथमिङ्गुदिपिण्याकं स भुंक्ते वसुधाधिपः १२
अतो दुःखतरं लोके न किंचित्प्रतिभाति मे ।
यत्र रामः पितुर्दद्यादिङ्गुदीक्षोदमृद्धिमान् १३
रामेणेङ्गुदिपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे ।

नेका यह घाट है। हे सुमित्रे ! इसी घाटसे रामके लिये लक्ष्मण स्वयं जल भर ले जाते हैं। यद्यपि लक्ष्मण यह कर्म करते कष्ट पाते हैं, पर आज उनका यह कर्म छूट जायगा।' (१–७)

वहीं पर बिछे हुए कुशोंपर पिताके लिये दिये पिण्डोंको देख कौशल्या अन्य स्त्रियोंसे कहने लगी, 'देखो, महाराज दशरथके लिये रामने यथाविधि ये पिण्ड दिये हैं। मैं उन महात्मा महाराज दशरथके लिये ये पिण्ड उपयोगी भोजन नहीं समझती। समस्त पृथ्वीको इन्द्रवत् भोगकर अब वही राजा इंगुदीके पिण्ड कैसे भोग करेंगे ? रामने इंगुदीके फलका पिण्ड अपने पिताको दिया है, इससे बढ कर मुझको अन्य कष्ट नहीं जान पडता।

कथं दुःखेन हृदयं न स्फोटति सहस्रधा   १४
श्रुतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे ।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः   १५
एवमार्ता सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वास्यतां तदा ।
ददृशुश्चाश्रमे रामं स्वर्गच्युतमिवामरम्   १६
तं भोगैः संपरित्यक्तं रामं संप्रेक्ष्य मातरः ।
आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्षिताः   १७
तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् ।
मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः   १८
ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः ।
प्रममार्जू रजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः   १९
सौमित्रिरपि ता सर्वा मातॄः संप्रेक्ष्य दुःखितः ।
अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादनन्तरम्   २०
यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वा ववृतिरे स्त्रियः ।
वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे   २१
सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता ।
श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी संबभूवाग्रतः स्थिता   २२

इस इंगुदीके चूर्णका पिण्डदान देख दुःखसे मेरा हृदय सहस्र टूक क्यों नहीं हो जाता ? यह जो कहावत है कि जो जिस वस्तुका भोग लगाता है, उसके देवताभी वही खाते हैं सत्य ही है।' (८-१५)

एवं विलाप करती कौशल्याको समझाती हुई सब स्त्रियोंने रामको बैठे देखा। रामको बैठे देख शोकसे पीड़ित सब मातायें आंसू छोड़ती हुई ऊंचे स्वरसे पुकारने लगीं। रामने उठ सब माताओंके चरण छुए। जब राम चरणों पर गिरे तो वे सब इनकी पीठकी धूलि झाड़ने लगीं। लक्ष्मणने भी दुःखित हो रामके पीछे सबको प्रणाम किया। माताओंने रामकी भांति लक्ष्मणके साथभी यही बर्ताव किया। सीताभी अपनी सासुओंके चरण पकड़ बहुत दुःखित हुई और रुदन करने लगी (१६-२२)

तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा।
वनवासकृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत् २३
वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च।
रामपत्नी कथं दुःखं संप्राप्ता विजने वने २४
पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम्।
काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः २५
मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्।
भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसंभवः २६
ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः।
पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः २७
पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतेरिन्द्र इवामराधिपः।
प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः सहैव तेनोपविवेश राघवः २८
ततो जघन्यं सहितैः स्वमन्त्रिभिः पुरप्रधानैश्च तथैव सैनिकैः।
जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवानुपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् २९
उपोपविष्टस्तु तदातिवीर्यवांस्तपस्विवेषेण समीक्ष्य राघवम्।

उसको कन्याके तुल्य छातीसे लगा कौसल्या बोली, 'हा! जनकराज-दुलारी महाराज दशरथकी पुत्रवधू तथा रामकी पत्नी! वनमें तुमने कैसे कैसे दुःख पाये। हे सीते! घामसे सन्तप्त कमल, धूल लगे हुए सुवर्ण तथा मेघोंसे घिरे चन्द्रमाके तुल्य उदास तुम्हारा मुख देख शोकाग्नि मेरे मनको भस्म किये देती है।' कौशल्या ऐसा कहतीही थीं कि रामने वसिष्ठके चरण छुए। (२१-२७)

देवोंका नरेश इन्द्र जिस तरह बृहस्पतिजीके चरण पकड लेता है वैसेही अत्यन्त प्रचुर तेजसे युक्त अग्नितुल्य उस वसिष्ठ पुरोहितजीके चरण पकड-कर रघुवंशमें उत्पन्न रामचन्द्रजी साथही बैठ गये। बादमें अपने सचिव, प्रमुख नागरिक, सैनिक तथा अत्यन्त धर्मनिष्ठ लोगोंके साथ भरतजी बडे भाईके पीछे पासही बैठ गये। आभापूर्ण होनेके कारण जगमगाते हुए राम-चंद्रजीको देखकर शुचिर्भूत होकर इन्द्र जैसे ब्रह्माजीके निकट बैठता है

श्रिया ज्वलन्तं भरतः कृताञ्जलिर्यथा महेन्द्रः प्रयतः प्रजापतिम् ३०
किमेष वाक्यं भरतोऽद्य राघवं प्रणम्य सत्कृत्य च साधु वक्ष्यति।
इतीव तस्यार्यजनस्य तत्त्वतो बभूव कौतूहलमुत्तमं तदा ३१
स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो भरतश्च धार्मिकः।
वृताः सुहृद्भिश्च विरेजिरेऽध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः ३२

इत्यार्षे श्री०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चोत्तरशततमः सर्गः॥१०५॥[३८९५]

षडुत्तरशततमः सर्गः ।

ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः ।
शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत १
रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः ।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन् २
तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित्किञ्चिदब्रवीत् ।
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत् ३
सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ४

वैसेही प्रबल पराक्रमी भरत हाथ जोडकर उनके पास बैठ गये । सो इन्द्र यहाँपर इकट्ठे हुए सज्जनोंके दिलमें सचमुच बडी उत्कंठा लगी रही कि भला, अब भरत सत्कारपूर्वक तथा प्रणामभी करके रामचंद्रजीसे कौनसा अच्छा भाषण करेगा ? अच्छा, सदस्योंके साथ तीन अग्नि जिस प्रकार यज्ञ भूमिमें सुहाने लगते हैं, उसी तरह मित्रजनोंसे घिरे हुए वे तीनों ही याने सत्यनिष्ठ रामचन्द्रजी, महापराक्रमी लक्ष्मण और धर्मनिष्ठ भरत अत्यन्त शोभायमान होने लगे (२८-३२)

यहाँ १०५ सर्ग समाप्त हुआ ।

साथियों सहित भरतादि भाइयोंकी वह रात्रि शोक करते हुए बीती । जब प्रातःकाल हुआ तो सब भाई मन्दाकिनीमें नहा होम जपादि कर रामके निकट आये । सबके सब मौन थे, कोई कुछ न कहता था, तब भरत रामसे बोले, 'हे भ्रातः ! आपने मेरी माताको सन्तोष किया तथा मुझको राज्य

महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे।
दुरावरं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत् ५
गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्रिणः।
अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते ६
सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते।
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ७
यथा तु रोपितो वृक्षः पुरुषेण विवर्धितः।
ह्रस्वकेन दुरारोहो रूढस्कन्धो महाद्रुमः ८
स यदा पुष्पितो भूत्वा फलानि न विदर्शयेत्।
सतां नानुभवेत्प्रीतिं यस्य हेतोः प्ररोपितः ९
एषोपमा महाबाहो तदर्थं वेत्तुमर्हसि।
यत्र त्वमस्मान्वृषभो भर्ता भृत्यान्नः शाधि हि १०
श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्र्याश्च सर्वशः
प्रतपन्तमिवादित्यं राज्यस्थितमरिंदमम् ११
तथा नु याने काकुत्स्थ मत्ता नर्दन्तु कुञ्जराः।
अन्तःपुरगता नार्यो नन्दन्तु सुसमाहिताः १२

दिया, पर अब मैं वह आपहीको लौटाये देता हूं। आपके छोडे हुए इस राज्यका भार आपके बिना मैं नहीं संभाल सकता। हे राम! जैसे अच्छे घोडेकी चाल गदहा नहीं पा सकता, एवं मैं आपकी गतिको नहीं पहुंच सकता। हे राम! जिस राजाकी सेवा अन्य लोग करते हैं उनका जीना अच्छा होता है। जो राजा औरोंहीकी सेवा करके जीता है, उसका जीना दुःखके साथ है, सुखके नहीं। जैसे किसीने पेड लगाया वह बढा तो छोटे डीलवाला आदमी उसपर नहीं चढ सकता। जब वह पुष्पित हो फलता नहीं है तो फिर वह प्रीतिको नहीं पा सकता, जिसके लिये वह लगाया गया था, इस उपमाको आप अपने राज्यके लिये समझिये और हम छोटे लोगोंके स्वामी बन मिरवलाइये। सिंहासनपर बैठे हुए आपको सूर्यवत् तपते हुए ये प्रजाजन देखें। आपके अयोध्यामें चलनेमें अन्तःपुरमें सब

तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः ।
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः १३
तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् ।
रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान् १४
नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः ।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति १५
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् १६
यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् ।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् १७
यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति ।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः १८
अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते ।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् १९
अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः २०
आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि ।

स्त्रियां इकट्ठी होकर आनन्दित होंगी।' (१-१२)

रामसे ऐसी प्रार्थना करते भरतके ये वचन सुन, सब अयोध्यावासी प्रसन्न हुए। भरतको एवं विलाप करते देख राम समझाने लगे। हे भरत! यह जीव स्वेच्छाचारी नहीं है, इसको इस लोकसे उस लोकमें तथा उस लोकसे इस लोकमें काल खींचा करता है। संग्रह की हुई चीजें क्षयान्तक, संयोग वियोगान्तक तथा जीवन मरणान्तक होता है। जीते मनुष्यको मरणके सिवाय और भय नहीं। बड़े बलवान् सुन्दर पुरुष भी बुढ़ापा आनेपर मर जाते हैं। जो रात्रि व्यतीत हो जाती है फिर वह नहीं आती, जल जो समुद्रमें चला जाता है फिर लौटके नदियोंमें नहीं आता। ये जो रात्रि दिन हुआ करते हैं इन्हीसे सब प्राणियोंकी आयु नाश होती जाती है।(१३-२०)

आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्याथ गतस्य च २१
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते २२
गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत् २३
नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् २४
हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिवागतम्।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः २५
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन २६
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः २७
नात्र कश्चिद्यथाभावं प्राणी समतिवर्तते।
तेन तस्मिन्न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः २८
यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति २९

'तुम आत्माका विचार करो, दूसरोंका क्या करते हो ? यह मृत्यु जीवके संगही आती है, उसके संगही सदा बनी रहती हैं, अब सब बाल पक गये. बुढापाके कारण देह जर्जर हो गई तब ऐसा पुरुष क्या कर सकेगा ? मनुष्य सूर्यके उदयअस्तसे प्रसन्न होते हैं, पर यह नहीं जानते कि यही उदयास्त हमारी आयुको नष्ट कर रहा है। फिर वसन्तादि ऋतुओंको देख आदमी खुश होते हैं पर यह नहीं जानते कि यह ऋतुओंका परिवर्तन आयुको क्षीण कर रहा है। जैसे समुद्रमें दो नावें साथही डाली जायँ, तो कुछ समय तक एक संग रह फिर कोई कहीं और कोई कहीं पहुँच जाती हैं। एवं इस संसारमें स्त्री पुत्र भाई बन्धु, आदि एकत्र होके जहांके तहां चले जाते हैं हमेशा साथ नहीं रह सकते। इस संसारमें सुख दुःखादिकोंको कोई प्राण

एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पितृपैतामहैर्ध्रुवः ।
तमापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ३०
वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ३१
धर्मात्मा सुशुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।
न स शोच्यः पिता तात स्वर्गतः सत्कृतः सताम् ३२
स जीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः ।
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ३३
तं तु नैवंविधः कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति ।
त्वद्विधो मद्विधश्चापि श्रुतवान्बुद्धिमत्तरः ३४
एते बहुविधाः शोका विलापरुदिते तदा ।
वर्जनीया हि धीरेण सर्वावस्थासु धीमता ३५
स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम् ।
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर ३६
यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा ।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ३७

नहीं मिट सकता । जैसे कोई मनुष्य जा रहा हो और कोई मार्गस्थित मनुष्य कहे कि चलो, पीछे हम भी आवेंगे। एवं पूर्वज चले गये, उस मार्गमें चले जानेका कौन शोक उसमें तो एक दिन जानाही पडेगा । (२१-३०)

'जैसे नदी आदिका जल बह कर लौट नहीं आता, उसी प्रकार मनुष्यकी गत आयु भी नहीं लौटती और पिताका तो कभी शोक न करना चाहिये। क्योंकि यज्ञोंके करनेके कारण उनका स्वर्गमें भी सम्मान होता होगा। पिता शरीरको छोड ब्रह्मलोकमें विहार करते होंगे, इससे तुम्हारे हमारे समान पंडितोंको पिताका शोक न करना चाहिये । शोक विलाप बुद्धिमान् तथा धीर पुरुषको न करना चाहिये। इससे शोक छोड स्वस्थचित्त हो अयोध्यामें जा वास करो, पिताकी आज्ञाका उल्लंघन उचित नहीं। मुझको भी पिताने जहां रहनेकी आज्ञा दी है, वहां रह आज्ञाका पालन करूंगा।

न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम।
स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता ३८
तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम्।
कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव ३९
धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ४०
आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभ।
निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः ४१
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा पितुर्निदेशप्रतिपालनार्थम्।
यवीयसं भ्रातरमर्थवच्च प्रभुर्मुहूर्ताद्विरराम रामः ४२

इत्यार्षे श्री०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥ [३९३७]

सप्तोत्तरशततमः सर्गः।

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत्।
ततो मन्दाकिनीतीरे रामं प्रकृतिवत्सलम् १
उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः।
को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम २
न त्वां प्रव्यथयेद्दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत्।
संमतश्चापि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान् ३

हम तुम दोनोंको पिताकी आज्ञाका उलंघन करना उचित नहीं। हे भरत! इससे मैं वनमें रह पिताके वचन पूरे करूंगा। हे भरत! परलोककी इच्छा करनेवाला पुरुष धार्मिक, सज्जन और सद्वर्तनी होना चाहिये। पिताजी उत्तम गतिको प्राप्त हुए है, यह जानकर तुम अपने हितका विचार करो।' इस प्रकार पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए कनिष्ट भाईके साथ भाषण करके वह महात्मा रामचद्र चुप बैठा। (३९-४२)

यहाँ १०६ सर्ग समाप्त हुआ।

जब राम ऐसे वचन कह चुप हो रहे, तो मन्दाकिनीके तट पर स्थित रामसे भरत कहने लगे, 'हे राम! जैसे आप है ऐसा इस लोकमें कौन

यथा मृतस्तथा जीवन्यथासति तथा सति ।
यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात्परितप्येत केन सः ४
परावरज्ञो यश्च स्याद्यथा त्वं मनुजाधिप ।
स एव व्यसनं प्राप्य न विषीदितुमर्हति ५
अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांश्चासि राघव ६
न त्वामेवंगुणैर्युक्तं प्रभवाभवकोविदम् ।
अविषह्यतमं दुःखमासादयितुमर्हति ७
प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् ।
क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ८
धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम् ।
हन्मि तीव्रेण दण्डेन दण्डार्हां पापकारिणीम् ९
कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः ।
जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम् १०
गुरुः क्रियावान्वृद्धश्च राजा प्रेतः पितेति च ।
नातं न परिगर्हेऽहं दैवतं चेति संसदि ११
को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृशं कर्म किल्बिषम् ।

होगा ? आपको न तो दुःख व्यथित करता न प्रीति हर्षित करती है। आपकी बुद्धि, मृत, जीवित वर्तमान अवर्तमानमें राग द्वेष नहीं करती। हे राजन् ! आपके समान सत्त्वज्ञ दुःखको पाकर विषाद नहीं करते। हे राम! आप पराक्रमी, महात्मा, सत्यसङ्कल्प, सर्वदर्शी व बुद्धिमान् हैं। सब संसारकी प्रवृत्ति निवृत्तिका ज्ञान आपमें है इससे दुःख आपको नहीं हो सकता। मेरी क्षुद्र स्वभावकी माताने मेरेही लिये पाप किया उसको भुलाकर आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। धर्ममें बँधे होनेसे पापकारिणी इस अपनी माताको मैं दण्ड नहीं दे सकता। राजा दशरथसे उत्पन्न, धर्मको जानबूझकर मैं ऐसा अधर्म कैसे करूं ? (१-१०)

'क्रियावान् वृद्धावस्थाको प्राप्त, स्वर्गवासी पिताकी सभाके बीचमें निन्दा

स्त्रियः प्रियचिकीर्षुः सन्कुर्यात्धर्मज्ञ धर्मवित् १२
अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुरा श्रुतिः ।
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता १३
साध्वर्थमभिसंधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात् ।
नातस्य यदतिक्रान्तं प्रत्याहरतु तद्भवान् १४
पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते ।
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा १५
तदपत्यं भवानस्तु मा भवान्दुष्कृतं पितुः ।
अति यत्तत्कृतं कर्म लोके धीरविगर्हितम् १६
कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः ।
पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् १७
क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् ।
ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति १८
एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्याभिषेचनम् ।
येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम् १९
कश्च प्रत्यक्षमुत्सृज्य संशयस्थमलक्षणम् ।
आयतिस्थं चरेद्धर्मं क्षत्रबन्धुरनिश्चितम् २०

न करूंगा । हे धर्मज्ञ ! स्त्रीका प्रिय करनेकी इच्छासे ऐसा कौन धर्मवान् है जो इस प्रकारका पाप करे ? मरण-समय मनुष्यकी बुद्धि मोहित हो जाती है, वह राजाने प्रत्यक्ष कर दिखाई । पिताने जो कैकयीके कोप-मोहसे आपका अभिषेक नहीं होने दिया वह क्षमा कीजिये । पिताके अविचारको भी जो श्रेष्ठ समझता है संसारमें पुत्र वही है । इसमें आप पिताके अपराधकी ओर दृष्टि न दें । कैकयी, मेरी, पिता, बन्धुओंकी व पुरवासी देशवासियोंकी आप रक्षा करें । कहां तो वनवास कहां क्षात्रधर्म, कहां जटा और कहां प्रजापालन इन विपरीत कार्योंको आप न कीजिये । क्षत्रियका पहिला कार्य है कि वह प्रजा पालन करे । ऐसा कौन होगा कि जो प्रत्यक्ष सर्व सुखद कार्यको छोड अनिश्चित कार्यको करेगा ? (११-२०)

अथ क्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि ।
धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि २१
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि २२
श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम् ।
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति २३
हीनबुद्धिगुणो बालो हीनस्थानेन चाप्यहम् ।
भवता च विना भूतो न वर्तयितुमुत्सहे २४
इदं निखिलमव्यग्रं राज्यं पित्र्यमकण्टकम् ।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञ सह बान्धवैः २५
इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह ।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रवन्मन्त्रकोविदाः २६
अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यां पालने व्रज ।
विजित्य तरसा लोकान्मरुद्भिरिव वासवः २७
ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन्दुर्हृदः साधु निर्दहन् ।
सुहृदस्तर्पयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम् २८
अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने ।
अद्य भीताः पलायन्तु दुर्हृदस्ते दिशो दश २९

'आप तो क्लेशसे उत्पन्न हुए धर्मको करनेकी इच्छा कर रहे हैं, इससे चारों वर्णोंका पालन कर क्लेश सहन कीजिये, सब आश्रमोंमें गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ है, आप इसके छोड़नेकी क्यों इच्छा करते हैं? मैं आपसे विद्या और अवस्थामें छोटा होनेसे आपके होते भूमिका पालन कैसे कर सकूंगा? मैं आपके बिना जीवनकी भी इच्छा नहीं करता फिर मुझसे प्रजाका पालन कैसे होगा? आप बन्धु बान्धवों सहित पिताके राज्यका धर्मपूर्वक पालन कीजिये, यहीं वसिष्ठ सहित पुरोहित व ऋत्विजगण आपका अभिषेक कर दें। अभिषिक्त होनेके पीछे हम लोगों सहित अयोध्या पालन करनेको चलिये। शत्रुओंका नाश व सुहृदोंका पालन करके मुझको सेवक बनाकर राज

आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ ।
अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किल्बिषात् ३०
शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि ।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ३१
अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः ।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम् ३२
तथाभिरामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ३३
तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः ।
न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ३४
तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः ।
तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ३५
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥१०७॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः । [३६७२]

पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः ।

कीजिये, आपके अभिषेकसे मित्रगण आज आनन्दित हों तथा शत्रुजन भयभीत हों । हे पुरुषश्रेष्ठ ! मेरी माताकी निन्दाको दूर कीजिये तथा पिताको भी पापसे रक्षा कीजिये । मैं आपके चरणोंपर शिर धर कर यह मांगता हूं कि मेरे ऊपर दया कीजिये । यदि मेरी प्रार्थनाको न मान आप वनको चले जायेंगे तो मैं भी आपके पीछे पीछे चलूंगा ।' (२१-३२)

इस प्रकारकी भरतकी प्रार्थना सुनकरभी पिताकी आज्ञा मानकर अयोध्या लौट जाना रामने मनमेंभी नहीं सोचा । तब रामचंद्रका वह अलौकिक धैर्य देखकर वहाँ स्थित दुःखी लोगोंकोभी हर्ष हुआ । राम अयोध्या नहीं आता, इससे उन्हें शोक हुआ और उसकी दृढ प्रतिज्ञा देखके उन्हें हर्षभी हुआ । तब ऋत्विज, नागरिक लोगोंके मुखिया और दुःखी माताओंने भरतकी प्रशंसा की और अयोध्या वापस आनेके लिए प्रणामपूर्वक रामकी प्रार्थना की । (३३-३५) यहाँ १०७ सर्ग समाप्त हुआ ।

प्रत्युवाच ततः श्रीमाञ्ज्ञातिमध्ये सुसत्कृतः १
उपपन्नमिदं वाक्यं यस्त्वमेवमभाषथाः।
जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात् २
पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ३
देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ४
ततः सा संप्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ५
तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा।
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ६
तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ७
सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः।
सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ८
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्।
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ९

एवं कहते हुए भरतसे श्रीराम फिर कहने लगे- 'हे भरत! जो तुम कहते हो सब ठीक है। तुमभी दशरथ व कैकेयीसे उत्पन्न हुये हो। पिता जब तुम्हारी माताको व्याहने गये थे तो तुम्हारे नानासे यह प्रतिज्ञा कर आये थे कि तुम्हारी कन्यासे जो पुत्र होगा उसीको मैं राज्य दूंगा। राजाने प्रसन्न हो देवासुर-संग्राममें तुम्हारी माताको दो वर दान देनेको कहे थे इसीसे तुम्हारी माताने महाराजसे दो वर मांगे। एक वरसे तुमको राज्य मिलना और दूसरेसे हमको वनमें रहना मांगा। इसीसे पिताने मुझको चौदह वर्षका वनवास दिया। इसीसे मैं पिताके वचन सत्य करनेको इस निर्जन वनमें आया हूं। अब तुमभी राज्याभिषेक कराके पिताको सत्यवादी करो। राजा होकर इस ऋणसे पिताका उद्धार करो व माताकोभी आन-

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्।
पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय १०
श्रूयते धीमता तात श्रुतिर्गीता यशस्विना
गयेन यजमानेन गयेष्वेव पितॄन्प्रति ११
पुन्नाम्नो नरकायस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन्यः पाति सर्वतः १२
एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद्गयां व्रजेत् १३
एवं राजर्षयः सर्वे प्रतीता रघुनन्दन।
तस्मात्त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात्प्रभो १४
अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरुपरञ्जय।
शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः १५
प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन्।
आभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च १६
त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम्
गच्छ त्वं पुरवरमद्य संप्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये १७
छायां ते दिनकरभाः प्रबाधमानं वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम्।
एतेषामहमपि काननद्रुमाणां छायां तामतिशयिनीं शनैः श्रयिष्ये१८

न्दित करो। (१–९)

'हे भरत ! राजा गयने गयामें जाकर पितरोंसे जो यशस्विनी श्रुति कही है वह इस प्रकार है कि जिससे पुन्नाम नरकसे बेटा पिताकी रक्षा करता इसीसे वह पुत्र कहलाता है। इसीसे बहुतसे गुणवान् बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न करना चाहिये जिससे उनमेंसे कोई तो गयामें जा श्राद्ध करेगा। इस बात-पर सब राजाओंने विश्वास किया है, इससे तुम नरकसे पिताकी रक्षा करो। शत्रुघ्न सहित अयोध्यामें जा प्रजाका पालन करो। और मैं भी लक्ष्मण सीता समेत जल्द ही दण्डकारण्यको जाऊंगा। हे भरत, सूर्यकिरणोंको निवारण करनेवाला छत्र तेरे सिरपर शीतल छाया धरे और मैं भी वन-

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम्
चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद १९
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिका०ऽयोध्याकाण्डे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥१०८॥

नवोत्तरशततमः सर्गः । [३९९१]

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः ।
उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः १
साधु राघव मा भूत्ते बुद्धिरेवं निरर्थिका ।
प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेस्तपस्विनः २
कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् ।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ३
तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः ।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित् ४
यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चिद्बहिर्वसेत् ।
उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ५
एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु ।
आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः ६

वृक्षोंकी घन छायाका आश्रय करता हूं । महामति शत्रुघ्न तेरा मित्र है और सुमित्रापुत्र लक्ष्मण मेरा मित्र है । हे भरत, हम चारों पुत्र मिलकर महाराज दशरथकी प्रतिज्ञा सफल करेंगे । तुम खेद न करो।' (११-१९)

यहां १०८ सर्ग समाप्त हुआ ।

भरतको एवं समझाते हुए रामसे द्विजश्रेष्ठ जाबालि बोले— ' हे राम ! आप जैसे श्रेष्ठ बुद्धिवाले व तपस्वीकी बुद्धि निरर्थक न होवे । देखिये ! प्राणी एक ही तो उत्पन्न होता फिर अकेले ही चलाभी जाता है, तब किसने किसको कौन वस्तु दी? सो यह सब व्यवहार निरर्थक है। हे राम! यह मेरी माता, यह मेरा पिता है ऐसा मान जो संसारमें फंसता है, उसको पागलसा समझना चाहिये। जैसे कोई यात्री कहींको चलता है तो बीचमें किसी स्थानपर टिका रहता है और प्रातःकाल उस स्थानको

पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम ।
आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ७
समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय ।
एकवेणीधरा हि त्वां नगरी संप्रतीक्षते ८
राजभोगाननुभवन्महार्हान्पार्थिवात्मज ।
विहर त्वमयोध्यायां यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ९
न ते कश्चिद्दशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन ।
अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते १०
बीजमात्रं पिता जन्तोः शुक्लं शोणितमेव च ।
संयुक्तमृतुमन्मात्रा पुरुषस्येह जन्म तत् ११
गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे १२
अर्थे धर्मपरा ये ते तांस्ताञ्शोचामि नेतरान् ।
ते हि दुःखमिह प्राप्य विनाशं प्रेत्य लेभिरे १३
अष्टकापितृदैवत्यमित्ययं प्रसृतो जनः ।
अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति १४

छोड आगेको चला जाता है। एवं मनुष्योंके पिता, माता, घर, धन आदि एकसंग रहनेके लिये स्थानमात्र है। हे नरोत्तम! पिताका राज्य छोड बहुत दुःखदायी वनमें बसनेके योग्य आप नहीं हैं। अयोध्यामें जाकर अपना अभिषेक कराइये, क्योंकि समस्त अयोध्या आपकी प्रतीक्षा कर रही है। बहुमूल्य भोगोंको भोगते हुए आप अयोध्यामें विहार करें। न तो तुम्हारे कोई दशरथ हैं न तुम कोई दशरथहीके हो, राजा तो कोई और हैं और तुम और हो, जो मैं कहता हूं सो करो। (१-१०)

'प्राणीके उत्पन्न होनेके विषयमें पिता बीजमात्र है। जहांको जाना था राजा वहां चले गये, तब आप व्यर्थ दुःखित होते हैं। जो लोग अर्थ धर्मके संग्रह करनेमें परिश्रम कर रहे हैं, मुझे उनका बडा दुःख है। जो लोग श्राद्धादि करना आवश्यकीय समझते हैं, वह मानो अन्नको खराब करते हैं,

यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात्प्रवसतां श्राद्धं न तत्पथ्यशनं भवेत् १५
दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः ।
यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व संत्यज १६
स नास्ति परमित्येतत्कुरु बुद्धिं महामते ।
प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु १७
सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकनिदर्शिनीम् ।
राज्यं स त्वं निगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः १८

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे नवोत्तरशततमः सर्गः ॥१०९॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ।　[४००९]

जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
उवाच परया सूक्त्या बुद्ध्या विप्रतिपन्नया १
भवान्मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान् ।
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम् २
निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः ।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ३

क्योंकि मर जानेपर कौन भोजन करता है ? यदि अन्यका किया हुआ भोजन अन्यको प्राप्त होता हो तो विदेश जानेवालोंको श्राद्धद्वारा अन्न पहुंचाना चाहिये, उन्हें अन्न पकानेकी कोई आवश्यकता नहीं । जो ऐसे वचन लिखे हैं कि यज्ञ करो, दान दो, घरमें अन्नादि भरके संकल्प करो, देवपूजन तथा तप करो, बुद्धिमान् लोगोंने धन मिलनेके लिये बना लिये हैं । हे रामचन्द्र ! इससे इस बुद्धिको छोड प्रत्यक्षमें सुखदायक राज्यको ग्रहण करो । सब लोकोंको दिखलानेवाली पण्डित लोगोंकी बुद्धिको आगे कर भरतकी विनति मान राज्य स्वीकार करो ।' (११–१८)

यहाँ १०९ सर्ग समाप्त हुआ ।

जाबालिके ऐसे वचन सुन राम वेदानुकूल वाक्य बोले कि ' आपने जो मेरे प्रियके लिये ऐसे वचन कहे हैं, वे सब अकर्तव्य होनेपरभी कर्तव्य तथा

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ४
अनार्यस्त्वार्यसंस्थानः शौचाद्धीनस्तथा शुचिः।
लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ५
अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम्।
अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम् ६
कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः।
बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ७
कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम्।
अनया वर्तमानोऽहं वृत्त्या हीनप्रतिज्ञया ८
कामवृत्तोऽन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते।
यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ९
सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः १०
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छति चाक्षयम् ११

अपथ्य होनेपरभी पथ्य जान पडते हैं। जो पुरुष मर्यादारहित होते हैं वे सज्जनोंके समाजमें आदर नहीं पाते है। कुलीन, अकुलीन, वीर, डरपोक, पवित्र तथा अपवित्र पुरुष अपने आचरणहीसे जान पडता है। वेदानुकूल न चलनेपर अनार्य अच्छे मनुष्य, अशौच, पवित्रलक्षणहीन लक्षणवाले तथा दुश्शील शीलवान् कहलावेंगे। यदि शुभ क्रियाको छोड वेदवर्जित किया मैं करूँ तो अधर्म करूं। जब मैं दूषित दुराचार करूंगा, तो कौन पुरुष मुझको श्रेष्ठ मानेगा? यदि मैं इस प्रतिज्ञाहीन वृत्तिमें वर्तमान हुआ तो फिर किससे अपना समाचार कहूंगा, तथा स्वर्गको कैसे जाऊंगा? जो मैं स्वेच्छापूर्वक कार्य करूं तो मेरी देखादेखी यह संसार अपना मनमाना करने लगे। सत्य क्रूर नहीं कहलाता, तथा सत्यही सनातन राज्य है व सत्यही पर लोक स्थित है। (१-१०)

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः ।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते १२
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् १३
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् १४
एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् ।
मज्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते १५
सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये ।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् १६
नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः १७
असत्यसंधस्य सतश्चलस्यास्थिरचेतसः ।
नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम् १८
प्रत्यगात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम् ।
भारः सत्पुरुषैश्चीर्णस्तदर्थमभिनन्द्यते १९
क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम् ।

'ऋषि देवतालोग भी सत्यहीको मानते चले आये हैं। सत्यवादी पुरुषही अक्षय स्वर्गलोकको पाता है। झूठे मनुष्यसे लोग सर्पके समान डरते हैं। सब संसारका मूल सत्यपरही स्थित है। लोकमें सत्यही ईश्वर है तथा सत्यमें ही सदा धर्म रहता है, सत्यही सबकी जड है, सत्यसे बढ़कर और कुछ नहीं है। दान, इष्ट, होम, तपस्या तथा वेद सब सत्यहीमें स्थित हैं। एकही लोककी और एकही कुलकी रक्षा करता है, एकही नरकमें डूबता है और अकेलाही स्वर्गमें पूजित होता है। फिर मैं सत्यप्रतिज्ञ पिताकी आज्ञाका क्यों न पालन करूं? मैं लोभ, मोह तथा क्रोधसे सत्यका सेतु न तोडूंगा। झूठ बोलनेवालेका दिया हव्य कव्यादि देवता व पितरगण नहीं लेते। सत्यरूप इस धर्मको मैं सब प्रकारसे निश्चित रूपेण जानता हूं।

क्षुद्रैर्नृशंसैर्लुब्धैश्च सेवितं पापकर्मभिः २०
कायेन कुरुते पापं मनसा संप्रधार्य तत्।
अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम् २१
भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः २२
श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्याद्यद्भवानवधार्य माम्।
आह युक्तिकरैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह २३
कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः २४
स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ।
प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा २५
वनवासं वसन्नेव शुचिर्नियतभोजनः।
मूलपुष्पफलैः पुण्यैः पितॄन्देवांश्च तर्पयन् २६
संतुष्टपञ्चवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रवाहये।
अकुहः श्रद्दधानः सन्कार्याकार्यविचक्षणः २७
कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम्।
अग्निर्वायुश्च सोमश्च कर्मणां फलभागिनः २८

मैं उस क्षात्रधर्मको जो वास्तवमें अधर्मरूप है त्यागता हूं। (११-२०)

'लोकमें तीन प्रकारका पाप होता है कायिक, मानसिक तथा वाचिक। जो लोग सत्य बोलते हैं उनकी प्रार्थना भूमि, कीर्ति, यश, लक्ष्मी, आदि करते हैं। यह जो तुमने कहा कि राज्य करो, इनका करनाही श्रेष्ठ है, वह अनार्यो-कासा वाक्य है। मैं पिताके आगे जो प्रतिज्ञा कर चुका हूं, उसका तिरस्कार कर भरतकी बात कैसे मानूं? जब मैंने पिताके आगे यह प्रतिज्ञा की थी तब कैकेयी भी बहुत प्रसन्न हुई थी। अतएव वनमें वास कर पवित्रचित्त रह पुष्प फलादि खाकर देवता पितरोंका तर्पण करता हुआ, कपटशून्य हो गुरुवचनमें श्रद्धा रखता हुआ पिताकी आज्ञाका पालन करता रहूंगा। इस कर्मभूमिको प्राप्त होकर इसमें शुभही कर्म करना चाहिये। देखो १०० अश्व-

शतं क्रतूनामाहृत्य देवराट् त्रिदिवं गतः।
तपांस्युग्राणि चास्थाय दिवं प्राप्ता महर्षयः २९
अमृष्यमाणः पुनरुग्रतेजा निशम्य तन्नास्तिकवाक्यहेतुम्।
अथाब्रवीत्तं नृपतेस्तनूजो विगर्हमाणो वचनानि तस्य ३०
सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ३१
तेनैवमाज्ञाय यथावदर्थमेकोदयं संप्रतिपद्य विप्राः।
धर्मं चरन्तः सकलं यथावत्काङ्क्षन्ति लोकागममप्रमत्ताः ३२
निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ३३
यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात् ३४

मेधयज्ञ करनेसे इन्द्र स्वर्गके राजा बन सके तथा कठोर तप कर ऋषिगण स्वर्गको प्राप्त हुए।' (२१-२९)

नास्तिकभावसे परिपूर्ण भाषण करनेहारे जाबालीकी वह वक्तृता सुनकर उस उग्र तेजवाले राजपुत्र रामचन्द्रजीको वह बरदाश्त करना असंभव हुआ और उस कथनका खंडन करते हुए वे कहने लगे– 'देखो भाई' साधुसज्जन एवं सन्तोंका कथन है कि सत्य, धर्म, पराक्रम, भूतदया, प्रियवादिता, एवं ब्राह्मण, देव तथा अतिथिकी पूजासेही स्वर्गपथका सृजन होता है; इस सन्तजन-प्रतिपादनके अनुसार मुख्य फलप्रद धर्मके स्वरूपको यथावत् जानकर निश्चयपूर्वक एवं ध्यानपूर्वक उस धर्मका भली प्रकार आचरण करनेहारे विप्र उत्कृष्ट लोक पहुँचनेकी लालसा रखते हैं। अब चूँकि मेरे पिताजीने आप जैसे पक्के नास्तिक, धर्ममार्गके खिलाफ तथा वेदविरुद्ध भावसे पूर्ण इस तरहका मंतव्य धारण कर भूमंडलपर लोकनाशके लिये भ्रमण करनेहारेको याजकनी हैसियतसे स्वीकृत किया था, सो मेरी रायमें वड़ा निन्दनीय कर्म था। (३०-३३)

'जिस तरह चोर होते हैं वैसेही बौद्धमतवाले होते हैं, ऐसा समझना ठीक

त्यक्तो जनाः पूर्वतरे द्विजाश्च शुभानि कर्माणि बहूनि चक्रुः।
छित्त्वा सदेमं च परं च लोकं तस्माद्द्विजाः स्वस्ति कृतं हुतं च ३५
धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ३६
इति ब्रुवन्तं वचनं सरोषं रामं महात्मानमदीनसत्त्वम्।
उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः ३७
न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन
समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ३८
स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया नास्तिकवागुदीरिता।
निवर्तनार्थं तव राम कारणात्प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम् ३९
इत्यार्षे श्रीमद्वा.वा. आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे दशोत्तरशततमः सर्गः॥११०॥[४०४८]

है और तथागतको नास्तिक मानना उचित है। इसी कारणसे जिस विद्वान्को हो सके वह कडेसे कडा दण्ड नास्तिकको दिलवाये और वैसे नहीं हुआ तो वैसे नास्तिकके सामने खडातक न रहे। आप ध्यानमें रखियेगा कि आपसे भी अपेक्षाकृत ज्यादाही श्रेष्ठ लोगोंने और द्विजोंने ऐहिक तथा पारलौकिक फलकी चाह न रखते हुए बहुतसे शुभ कर्म किये है। इसी कारण, वेद-प्रामाण्य मानकर जो द्विज अहिंसा सत्य वगैरह तप, दान, परोपकार जैसे यज्ञमें लगे रहते हैं, वे धर्मनिष्ठ, दानशूर, अहिंसक, निष्कलंक तथा सज्जनोंके सहवासमें रममाण होनेवाले उच्च कोटिके मुनि लोगही जनतामें सम्माननीय पदपर चढते है। आप जैसे नास्तिक नहीं।' (३४-३६)

जब इस भाँति उदार महात्मा रामचंद्रजी जाबालीसे कुत्सामय भाषण कर रहे थे, तब वह ब्राह्मण जाबाली फिर एकवार अच्छे अर्थसे युक्त, आस्तिकमय सत्य भाषण करने लगा– 'मैं नास्तिकोंकी भाषा बोलनेवाला नहीं हूं और मैं कोई नास्तिक थोडेही हूँ ? मेरी ऐसी राय नहीं है कि परलोक जैसे कोई चीज है ही नहीं। मौका देखकर मैं फिरसे आस्तिक बन गया हूँ और वैसा कोई दूसरा अवसर आ जाये तो पुन नास्तिक बनूँगा। धीरे धीरे वैसा समय आ चुका था, इसलिये मैंने तुझे वनवाससे लौटकर नगरीमें

एकादशोत्तरशततमः सर्गः।

क्रुद्धमाज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्य गतागतिम् १
निवर्तयितुकामस्तु त्वामेतद्वाक्यमब्रवीत्।
इमां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथ निबोध मे २
सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ३
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ४
आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ५
विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम्।
स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ६
यस्येयं प्रथमं दत्ता समृद्धा मनुना मही।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् ७
इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः।

जानेको प्रवृत्त करनेके हेतुसे नास्तिकतामय भाषण दिया और अब तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए मैं इस भाँति कह रहा हूँ।' (३७-३९)

यहाँ ११० सर्ग समाप्त हुआ।

रामको क्रुद्ध हुआ जान कुलगुरु वसिष्ठ बोले—'हे राम! जाबालि भी लोककी गति जानते हैं। आपको लौटानेके लिये इन्होंने ऐसी बातें कहीं हैं। अब लोककी उत्पत्ति सुनिये। सबसे प्रथम जलही जल था, उसपर पृथिवी निर्मित की गई। तब देवताओंके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तदनु विष्णु वराहका रूप धरके जलके बीचसे पृथ्वी निकाल लाये, तब ब्रह्माने सब संसार बनाया। ब्रह्माकी उत्पत्ति आकाशसे है। ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपके विवस्वान् विवस्वान्से वैवस्वत मनु, उनके सबसे बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे। इनको मनुने समस्त पृथ्वी दे दी, इसीसे यहां अयोध्याके प्रथम राजा हुए। इक्ष्वाकुके

कुक्षेरथात्मजो वीरं विकुक्षिरुदपद्यत ८
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् ।
बाणस्य च महाबाहुरनरण्यो महातपाः ९
नानावृष्टिर्बभूवास्मिन्न दुर्भिक्षः सतां वरे ।
अनरण्ये महाराजे तस्करो वापि कश्चन १०
अनरण्यान्महाराज पृथू राजा बभूव ह ।
तस्मात्पृथोर्महातेजास्त्रिशङ्कुरुदपद्यत ११
स सत्यवचनाद्वीरः सशरीरो दिवं गतः ।
त्रिशङ्कोरभवत्सूनुर्धुन्धुमारो महायशाः १२
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो व्यजायत ।
युवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधाता समपद्यत १३
मांधातुस्तु महातेजाः सुसंधिरुदपद्यत ।
सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित् १४
यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु भरतो रिपुसूदनः ।
भरतात्तु महाबाहोरसितो नाम जायत १५
यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः ।
हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः १६
तांस्तु सर्वान्प्रतिव्यूह्य युद्धे राजा प्रवासितः ।

कुक्षि, उनके विकुक्षि, विकुक्षिके बाण, बाणके अनरण्य उत्पन्न हुए। इनके राजमें दुर्भिक्ष कभी नहीं पडा और चोरका कहीं नामही नहीं सुनाई देता था। (८-१०)

'अनरण्यके पृथु तथा पृथुके त्रिशङ्कु हुए। ये राजा अपने वचनका पालन करनेके लिये सशरीर स्वर्गको चले गये। इनके धुन्धुमार, धुन्धुमारके युवनाश्व, युवनाश्वसे मान्धाता उत्पन्न हुए। मान्धाताके सुसन्धि तथा सुसन्धिके ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् दो पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुवसन्धिके भरत और भरतके असित नामक पुत्र उत्पन्न हुए। उनके हैहय, तालजंघ, शूर तथा शशबिन्दु इन जातियोंके राजा वैरी हुए। उन सब राजाओंके साथ

स च शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः १७
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः ।
तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम् १८
ववन्दे पद्मपत्राक्षी काङ्क्षिणी पुत्रमुत्तमम् ।
एका गर्भविनाशाय सपत्न्यै गरलं ददौ १९
भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः ।
तमृषिं साभ्युपागम्य कालिंदी त्वभ्यवादयत् २०
स तामभ्यवदत्प्रीतो वरेप्सुं पुत्रजन्मनि ।
पुत्रस्ते भविता देवि महात्मा लोकविश्रुतः २१
धार्मिकश्च सुभीमश्च वंशकर्ताऽरिसूदनः ।
श्रुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा मुनिं तमनुमान्य च २२
पद्मपत्रसमानाक्षं पद्मगर्भसमप्रभम् ।
ततः सा गृहमागम्य पत्नी पुत्रमजायत २३
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ।
गरेण सह तेनैव तस्मात्स सगरोऽभवत् २४
स राजा सगरो नाम यः समुद्रमखानयत् ।
दृष्ट्वा पर्वणि वेगेन त्रासयन्त इमाः प्रजाः २५

राजाने युद्ध भी किया, पर हार कर हिमालयमें जा तप करने लगे। इनके दो स्त्रियां थीं, दोनों गर्भिणी हुईं, एकने च्यवनऋषिको अभिवादन कर उनसे उत्तम पुत्र मांगा। दूसरी सौतने उसके पुत्रके मारनेके लिये उसको विष पिला दिया। एक दिन जब च्यवनमुनि वहां आये, तो कालिन्दीने मुनिको प्रणाम किया। (११-२०)

उत्तम पुत्रकी इच्छा रखनेवाली रानीसे मुनिने कहा कि 'हे देवि' तेरे लोकविख्यात पुत्र होगा। धार्मिक तथा वंशकर्ताभी होगा।' यह सुन मुनिका रानीने बडा आदर किया। फिर उस रानीने गृहमें आकर ब्रह्माके तुल्य पुत्रको जन्म दिया। सौतके गर अर्थात ज़हर देनेके कारण वह बालक गरसहित उत्पन्न हुआ, इससे उसका सगर नाम पडा। सगरने अपने यज्ञका

असमञ्जस्तु पुत्रोऽभूत्सगरस्येति नः श्रुतम् ।
जीवन्नेव स पित्रा तु निरस्तः पापकर्मकृत् २६
अंशुमानपि पुत्रोऽभूदसमञ्जस्य वीर्यवान् ।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः २७
भगीरथात्ककुत्स्थश्च काकुत्स्था येन तु स्मृताः ।
काकुत्स्थस्य तु पुत्रोऽभूद्रघुर्येन तु राघवाः २८
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ।
कल्माषपादः सौदास इत्येवं प्रथितो भुवि २९
कल्माषपादपुत्रोऽभूच्छङ्खणस्त्विति विश्रुतः ।
यस्तु तद्वीर्यमासाद्य सहसैन्यो व्यनीनशत् ३०
शङ्खणस्य तु पुत्रोऽभूच्छूरः श्रीमान्सुदर्शनः ।
सुदर्शनास्याग्निवर्ण अग्निवर्णस्य शीघ्रगः ३१
शीघ्रगस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रशुश्रुवः ।
प्रशुश्रुवस्य पुत्रोऽभूदम्बरीषो महामतिः ३२
अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषः सत्यविक्रमः ।
नहुषस्य च नाभागः पुत्रः परमधार्मिकः ३३
अजश्च सुव्रतश्चैव नाभागस्य सुतावुभौ ।
अजस्य चैव धर्मात्मा राजा दशरथः सुतः ३४
तस्य ज्येष्ठोऽसि दायादो राम इत्यभिविश्रुतः ।

अश्व ढूंढनेके लिये अपने पुत्रोंसे सागर खुदा गया । सगरके असमञ्जस नामक पुत्र हुआ, यह अयोध्यानिवासियोंके सन्तान सरयूमें डुबा देता था। इससे पिताने उसे घरमें निकाल दिया। असमञ्जसके अंशुमान्, उनके दिलीप, उनके भगीरथ, भगीरथके ककुत्स्थ, ककुत्स्थके रघु हुए। रघुके नामपर इस वंशके लोग राघव कहलाने लगे। रघुके पुत्र प्रवृद्ध, पुरुषादक, कल्माषपाद, सौदास, कल्माषपादके शंखण हुए। ये पिताद्वारा सैन्यसहित नष्ट हो गये।(२१-३०)

'शंखणके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण, उनके शीघ्रग, उनके मरु, मरुके प्रशुश्रुव, उनके अंबरीष हुए। उनके नहुष, नहुषके नाभाग, उनके अज

तद्गृहाण स्वकं राज्यमवेक्षस्व जगन्नृप ३५
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः ।
पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते ३६
स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः सनातनं नाथ विहन्तुमर्हसि ।
प्रभूतरत्नामनुशाधि मेदिनीं प्रभूतराष्ट्रां पितृवन्महायशाः ३७
इत्यार्षे श्री०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥१११॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः । [४०८५]

वसिष्ठः स तदा राममुक्त्वा राजपुरोहितः ।
अब्रवीद्धर्मसंयुक्तं पुनरेवापरं वचः १
पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवः सदा ।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव २
पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात्स गुरुरुच्यते ३
स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप ।
मम त्वं वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम् ४
इमा हि ते परिषदो ज्ञातयश्च नृपास्तथा ।

व सुव्रत दो पुत्र हुए, अजके महाराज दशरथ हुए । हे राम! इनके सबसे बड़े पुत्र आप हैं, इससे अपना अभिषेक कराके राज्य स्वीकार कीजिये । इक्ष्वाकुवंशियोंमें सबसे बड़ा ही पुत्र राजा होता चला आया है। आपके होते हुए छोटा पुत्र राजगद्दीपर कैसे बैठ जाय? इसलिए हे महाकीर्ति राम! रघुवंशका सनातन धर्म नष्ट न करते हुए रत्न और राष्ट्रोंसे संपन्न पृथ्वीका तुम पालन करो ।' (२१-३७)

यहाँ १११ सर्ग समाप्त हुआ ।

वसिष्ठ रामसे एवं कह पुनः और वचन कहने लगे- 'हे राम! पुरुषके माता, पिता तथा आचार्य ये तीन गुरु होते हैं। माता पिता तो उसे जन्म देते हैं और आचार्य ज्ञान देता है, इसीसे ये गुरु कहाते हैं। मैं तुम्हारे पिताका आचार्य हूं, इससे तुम्हारा भी हूं। मेरे वचन मान तुम सन्मार्गका अति-

एपु तात चरन्धर्मं नातिवर्तेः सतां गतिम् ५
वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्यवर्तितुम्।
अस्या हि वचनं कुर्वन्नातिवर्तेः सतां गतिम् ६
भरतस्य वचः कुर्वन्याचमानस्य राघव।
आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम ७
एवं मधुरमुक्तः स गुरुणा राघवः स्वयम्।
प्रत्युवाच समासीनं वसिष्ठं पुरुषर्षभः ८
यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा।
न सुप्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ९
यथाशक्तिप्रदानेन स्वापनोच्छादनेन च।
नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च १०
स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम।
आज्ञापयन्मां यत्तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति ११
एवमुक्तेन रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम्।
उवाच विपुलोरस्कः सूतं परमदुर्मनाः १२
इह तु स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे।

क्रमण न करोगे। इन प्रजाओं, भाई-बन्धुओं तथा सब छोटे छोटे राजाओंका पालन करो। अपनी वृद्ध माताका तिरस्कार न करो, इनकी आज्ञा मानो। हे राम! ये भरत प्रार्थना कर रहे हैं, इनकी प्रार्थना भी माननी चाहिये।' (१-७)

जब महाराज वसिष्ठने ऐसे मीठे वचन कहे, तो उनसे राम कहने लगे- 'माता पिता पुत्रकी जो भलाई करते हैं, उसके बदलेमें जो पुत्र कुछ किया चाहे तो नहीं कर सकता। क्योंकि वे यथाशक्ति पुत्रको उत्तम उत्तम भोजन देते, सदा प्यारे वचन कह स्नेह करते, उसके बढने और जीनेके नाना उपाय करते हैं। महाराज दशरथ मेरे पिता हैं, जो कुछ मुझे आज्ञा दे गये हैं, वह किसी प्रकार अन्यथा नहीं हो सकती।' (८-११)

रामने ऐसा कहा तो बहुत उदास हो भरत सुमन्त्रसे बोले- 'हे सारथे!

आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे संप्रसीदति १३
निराहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः ।
शये पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति १४
स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मनाः ।
कुशोत्तरमुपस्थाप्य भूमावेवास्थितः स्वयम् १५
तमुवाच महातेजा रामो राजर्षिसत्तमः ।
किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे १६
ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान्रोद्धुमिहार्हति ।
[illegible] नि १७
[illegible] ।
[illegible] १८
आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् ।
उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशास्थ १९
ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः ।
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः २०
एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति ।
अत एव न शक्ताः स्म व्यावर्तयितुमञ्जसा २१

इस स्थानपर भूमिमें कुश बिछाओ। जबतक राम प्रसन्न न होंगे, तबतक मैं एक दिनके समान निराहार, अन्धेरेमें बैठ अयोध्याको न जाऊंगा।' भरत सुमन्त्रको कुश बिछानेके लिये रामकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते देख स्वयं कुश बिछाकर बैठे। तब राम भरतसे कहने लगे, 'हे तात! मैंने कौन अन्याय किया जो यह कार्य कर रहे हो? एक करवट पडकर केवल ब्राह्मणही अपने अपकारीको रोक सकता है, यह विधि क्षत्रियोंके लिये उचित नहीं है। हे भरत! इस कठोर व्रतको छोड उठो।' यह सुन भरत पुरवासी व देशवासी लोगोंकी ओर देख वहीं बैठे बोले कि 'आप लोग श्रीरामको क्यों नहीं समझाते?' यह सुन वे सब भरतसे कहने लगे कि 'हम जानते हैं कि आप जो कुछ कह रहे हैं उचित है। पर राम अपने पिता राजा

तेषामाज्ञाय वचनं रामो वचनमब्रवीत् ।
एवं निबोध वचनं सुहृदां धर्मचक्षुषाम् २२
एतच्चैवोभयं श्रुत्वा सम्यक्संपश्य राघव ।
उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम् २३
अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा २४
न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम् ।
एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम् २५
यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः ।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः २६
धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः ।
उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् २७
विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवता मम ।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा २८
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः ।
युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् २९

दशरथके वचनोंपर दृढ हैं, इसीसे नहीं लौट सकते।' (१२-२१)

उनके ऐसे वचन सुन राम भरतसे बोले कि, 'भाई! इनके वचन सुनो, कैसे विचारके साथ बोलते हैं। इन लोगों तथा मेरा कहा दोनोंका सुनकर विचारपूर्वक देखो।' यह सुन उठकर जल छूकर भरत बोले कि '*प्रजा मन्त्री व अन्य सब लोग, सुनो। न तो मैं पिताका राज्य चाहता हूं,* न माता हीको कुछ सिखाऊंगा, न श्रीरामको वनसे लौटाता हूं। यदि इनको पिताका वचन अवश्यही करना है, तो चौदह वर्षतक मैंभी वनमें रहूंगा।' श्रीराम भाईके ऐसे वचन सुन आश्चर्यमें भर गये और बोले, 'अपने जीतेजी पिताने जो वस्तु बेच डाली, किसीके यहां धरोहर रखी या कोई वस्तु मोल ली है तो मैं वा भरत उसका लोप नहीं कर सकते। कैकेयीने मुझको वनके योग्यही समझके वनवास दिलाया, तथा

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम् ।
सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसंधे महात्मनि ३०
अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः ।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ३१
वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् ।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ३२

इत्यार्षे श्री०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११२॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः । [४११७]

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम् ।
विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः १
अन्तर्हिता मुनिगणाः स्थिताश्च परमर्षयः ।
तौ भ्रातरौ महाभागौ काकुत्स्थौ प्रशशंसिरे २
सदार्यौ राजपुत्रौ द्वौ धर्मज्ञौ धर्मविक्रमौ ।
श्रुत्वा वयं हि संभाषामुभयोः स्पृहयामहे ३
ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः ।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः ४
कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः ।
ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे ५

पिताने दिया है, सो मैं स्वयं वनको जाऊंगा, अपना प्रतिनिधि भरतको न भेजूंगा। मैं भरतको जानता हूं ये बडे क्षमाशील हैं। वनसे लौटकर इन्हीं धर्मशील अपने भाईके साथ राज्यको ग्रहण करूंगा। कैकेयीका वचन मान मैंने पिताको असत्यसे छुडाया, अब भरतभी अयोध्याका राज्य कर पिताको असत्यसे छुडाएं।' (२२-३२)

यहाँ ११२ सर्ग समाप्त हुआ।

राम व भरत दोनों भाइयोंका लोमहर्षण संगम देखकर बडे बडे ऋषिगण आश्चर्यमें भर गये। मुनिगण और महर्षिगण उन दोनों भाइयोंकी प्रशंसा करने लगे कि 'ये दोनों राजपुत्र अति श्रेष्ठ व धर्मज्ञ हैं।' तदनु

स्वपादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत्।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् २३
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तवागमनमाकाङ्क्षन्वसन्वै नगराद्बहिः २४
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप।
चतुर्दशे हि संपूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम २५
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् २६
शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति २७
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह २८
स पादुके ते भरतः स्वलंकृते महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मवित्।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि २९
अथानुपूर्व्या प्रतिपूज्य तं जनं गुरूंश्च मन्त्रीन्प्रकृतीस्तथानुजौ।
व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ३०

यह सुन रामने खडाऊँओंपर चरण रखे और फिर हटा लिये, तदुउनको भरतको देदिया। उन खडाऊँओंको प्रणाम कर भरत रामसे बोले कि 'चौदह वर्षतक जटा चीर धारण कर, फल मूल खाते, तुम्हारे आगमनकी राह देखते, नगरके बाहर कहीं स्थित रहूंगा। तथा तुम्हारी पादुकाओंपर राज्यका भार रख जिस दिन चौदहवां वर्ष पूर्ण होगा, उस दिन आपको न देखूंगा तो अग्नि दीप्त कर उसमें प्रवेश कर जाऊंगा।' तब रामने कहा 'बहुत अच्छा! मैं उस दिन आजाऊंगा।' फिर राम बोले, 'हे शत्रुघ्न! कैकेयीकी रक्षा किये रहना, उनपर क्रोध न करना। मैं अपनी तथा सीताकी तुमको शपथ दिलाता हूं।' ऐसा कह भाइयोंको विदा किया। (२२-२८)

तब बहुत उज्ज्वल एवं भली भाँति सजायी हुई उन पादुकाओंको लेकर उस धर्म जाननेवाले भरतने रामकी प्रदक्षिणा कर डाली और वे खडाऊँ एक

तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठ्यो दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः।
स चैव मातॄरभिवाद्य सर्वा रुदन्कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ३१

इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः॥११३॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः। [४१४८]

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा।
आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा १
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिश्च दृढव्रतः।
अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः २
मन्दाकिनीं नदीं रम्यां प्राङ्मुखास्ते ययुस्तदा।
प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम् ३
पश्यन्धातुसहस्राणि रम्याणि विविधानि च।
प्रययौ तस्य पार्श्वेन ससैन्यो भरतस्तदा ४
अदूराच्चित्रकूटस्य ददर्श भरतस्तदा।
आश्रमं यत्र स मुनिर्भरद्वाजः कृतालयः ५
स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान्।

बढ़िया हाथीके सिरपर रख दीं। तदुपरान्त स्वधर्मके पालनमें हिमालयकी भाँति अटल रहनेवाले रामचंद्रजीने क्रमशः उन इकट्ठे हुए लोगों, गुरुजन, सचिव-मंडल, प्रजा-गण एवं छोटे भाई भरत-शत्रुघ्नका भी रीतिके अनुसार संमान करके बिदा किया। दुःखावेगके मारे आँसुओंसे गला रुँध जानेपर माताएँ उससे पूछनेमें अक्षम हुईं। तब ऐसी हालतमें रामचंद्रजी सबको दण्डवत् कर चुकनेपर बिलखते बिलखते अपनी कुटियामें प्रविष्ट हुए। (२८–३१)

यहाँ ११३ सर्ग समाप्त हुआ।

ततः भरत रामके खड़ाऊँ अपने सिरपर रख शत्रुघ्नके साथ रथपर सवार हुए। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि आदि मुनिगण तथा अमात्यगण आगे आगे चले। वे सब मन्दाकिनी नदी तथा चित्रकूटकी प्रदक्षिणा करते चले। भरत नाना सुन्दर सुन्दर धातु देखते हुए सैन्यसहित चले। भरतने चित्रकूटकी

अवतीर्य रथात्पादौ ववन्दे कुलनन्दनः ६
ततो दृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत्।
अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम् ७
एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता।
प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः ८
स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढविक्रमः।
राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ९
पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वतः।
चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम १०
एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत् ११
एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते।
अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव १२
एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः।
पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ १३
निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना।
अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे १४
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः।

के पाससे भरद्वाजका आश्रम देखा और वहां पहुंच रथसे उतर भरद्वाजके चरणोंमें प्रणाम किया। तब भरद्वाज भरतसे बोले, 'हे तात! क्या रामको मिल आये?' जब भरद्वाजने ऐसा पूछा तो भरत उनसे बोले कि 'मैंने व गुरु वसिष्ठने अनेक प्रकारसे कहा, तो राम पुरोहित वसिष्ठसे बोले कि, मेरे चौदह वर्ष वनमें रहनेकी जो मेरे पिताकी प्रतिज्ञा है, उसीका यथावत् पालन करूंगा।' (१-१०)

'इस बातको सुन वाक्यकोविद वसिष्ठ फिर रामसे बोले कि, अपने हेम-भूषित खड़ाऊं दे अयोध्याभरका योगक्षेम कीजिये।' जब कुलगुरुने ऐसा कहा तो रामने प्राङ्मुख हो राज्य करनेके लिये अपनी पादुका दीं। मैं रामकी

भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत् १५
नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदां वरे।
यदार्यं त्वयि तिष्ठेत्तु निम्नोत्सृष्टमिवोदकम् १६
अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः १७
तमृषिं तु महाप्राज्ञमुक्तवाक्यं कृताञ्जलिः।
आमन्त्रयितुमारेभे चरणावुपगृह्य च १८
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः।
भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः १९
यानैश्च शकटैश्चैव हयैर्नागैश्च सा चमूः।
पुनर्निवृत्ता विस्तीर्णा भरतस्यानुयायिनी २०
ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्त्वोर्मिमालिनीम्।
ददृशुस्तां पुनः सर्वे गङ्गां शिवजलां नदीम् २१
तां रम्यजलसंपूर्णां संतीर्य सहबान्धवः।
शृङ्गवेरपुरं रम्यं प्रविवेश ससैनिकः।
शृङ्गवेरपुराद्भूय अयोध्यां संददर्श ह २२
अयोध्यां तु तदा दृष्ट्वा पित्रा भ्रात्रा विवर्जिताम्।
भरतो दुःखसंतप्तः सारथिं चेदमब्रवीत् २३

आज्ञासे लौट पादुका लिये अयोध्याको आ रहा हूं।' भरतकी बात सुन भरद्वाज बोले, 'हे पुरुषसिंह' तुममें जो श्रेष्ठता है यह आश्चर्यकी बात नहीं। जिस महाबाहु दशरथके धर्मवत्सल पुत्र तुम हो वे तुम्हारे पिता उऋण हो गये।' भरद्वाजके ऐसे वचन सुन भरत हाथ जोड़ चलनेके लिये विदा मागने लगे। भरद्वाजकी प्रदक्षिणा कर अमात्योंके सङ्ग अयोध्याको भरत रवाना हुए। उनके पीछे पीछे भरतकी सेना भी चली। (११-२०)

यमुना नदीको पार कर अति निर्मल जलवाली गंगा नदीको उतरे। भरत गंगाको उतर शृंगवेरपुरमें पहुंचे, शृंगवेरपुरसे चल अयोध्यानगरी

सारथे पश्य विध्वस्ता अयोध्या न प्रकाशते ।
निराकारा निरानन्दा दीना प्रतिहतस्वना २४
इत्यार्षे श्री०वा०आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः११४[४१७२]

पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ।

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्प्रभुः ।
अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः १
बिडालोलूकचरितामालीननरवारणाम् ।
तिमिराभ्याहतां कालीमप्रकाशां निशामिव २
राहुशत्रोः प्रियां पत्नीं श्रिया प्रज्वलितप्रभाम् ।
ग्रहेणाभ्युदितेनैकां रोहिणीमिव पीडिताम् ३
अल्पोष्णक्षुब्धसलिलां घर्मतप्तविहंगमाम् ।
लीनमीनझषग्राहां कृशां गिरिनदीमिव ४
विधूमामिव हेमाभां शिखामग्नेः समुत्थिताम् ।
हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखां विप्रलयं गताम् ५
विध्वस्तकवचां रुग्णगजवाजिरथध्वजाम् ।

देखी। परंतु पिता दशरथ और भ्राता रामसे रहित हुई वह अयोध्या नगरी देखकर भरत दुःखसे संतप्त होकर सारथीसे कहने लगा, 'हे सारथे! उध्वस्त हुई यह अयोध्या नगरी अब नहीं प्रकाशती है। यह दीन अयोध्यापुरी दीन, अलंकारहीन और आनंदसे रहित होकर उसमें हलचल भी बंद हो गई है।' (२१-२४)

यहाँ ११४ सर्ग समाप्त हुआ।

गम्भीर शब्द करते हुए रथपर सवार भरत अयोध्यानगरीमें पहुंचे। वह नगरी बिडालव उलूक आदि जीवोंसे व्याप्त काली रात्रिके तुल्य अप्रकाशित थी। जैसे रोहिणी ग्रहणमें राहुसे ग्रसित चन्द्रके पीडित होनेसे शोभाहीन हो जाती है, वैसी ही वह पुरी थी। जैसे धूपसे जल गर्म हो जानेपर नदी व्याकुल हो जाती है, वही अवस्था तब उस नगरी की थी। जैसे पहिले अग्नि देदीप्यमान हो पीछेसे ज्वाला मुन्द जानेसे अच्छा न लगे, वही

हतप्रवीरामापन्नां चमूमिव महाहवे ६
सफेनां सस्वनां भूत्वा सागरस्य समुत्थिताम् ।
प्रशान्तमारुतोद्धूतां जलोर्मिमिव निःस्वनाम् ७
त्यक्तां यज्ञायुधैः सर्वैरभिरूपैश्च याजकैः ।
सुत्याकाले सुनिर्वृत्ते वेदिं गतरवामिव ८
गोष्ठमध्ये स्थितामार्तामचरन्तीं नवं तृणम् ।
गोवृषेण परित्यक्तां गवां पत्नीमिवोत्सुकाम् ९
प्रभाकराद्यैः सुस्निग्धैः प्रज्वलद्भिरिवोत्तमैः ।
वियुक्तां मणिभिर्जात्यैर्नवां मुक्तावलीमिव १०
सहसाचरितां स्थानान्महीं पुण्यक्षयोद्गताम् ।
संहृतद्युतिविस्तारां तारामिव दिवश्च्युताम् ११
पुष्पनद्धां वसंतान्ते मत्तभ्रमरशालिनीम् ।
द्रुतदावाग्निविप्लुष्टां क्लान्तां वनलतामिव १२
संमूढनिगमां सर्वां संक्षिप्तविपणापणाम् ।
प्रच्छन्नशशिनक्षत्रां द्यामिवाम्बुधरैर्युताम् १३
क्षीणपानोत्तमैर्भग्नैः शरावैरभिसंवृताम् ।
हतशौण्डामिव ध्वस्तां पानभूमिमसंस्कृताम् १४
वृक्णभूमितलां निम्नां वृक्णपात्रैः समावृताम् ।

अनन्या अयोध्याकी थी। यह नगरी वीरोंके मारे जानेसे अप्रकाशित वाहिनी के समान लगती है। पवन चलनेके कारण शान्त सागरके समान यह पुरी है। याजकोंसे शून्य यज्ञवेदीके तुल्य यह नगरी शोभा नहीं देती, गोष्ठमें स्थित, वृषभहीन गौके तुल्य यह नगरी जान पड़ती है। उत्तम मणियोंसे हीन गजमुक्ताके तुल्य यह नगरी शोभा नहीं देती। (१-१०)

आकाशसे गिरे हुए तारेके तुल्य यह नगरी दीप्तिहीन हो रही है। जैसे पुष्पशोभित मत्त भ्रमर-गुंजारित लता दावानलसे जल जावे, वैसीही यह नगरी है। यह नगरी चन्द्ररहित बादलोंसे घिरी गगनके समान दीख पड़ती है। मदिराके पात्र टूटे फूटे पड़े हैं, मानों मदिरा पीनेवाले जन नहीं रहे।

उपयुक्तोदकां भग्नां प्रपां निपतितामिव १५
विपुलां विततां चैव युक्तपाशां तरस्विनाम् ।
भूमौ बाणैर्विनिकृतां पतितां ज्यामिवायुधात् १६
सहसा युद्धशौण्डेन हयारोहेण वाहिताम् ।
निहतां प्रतिसैन्येन वडवामिव पातिताम् १७
भरतस्तु रथस्थः सञ्श्रीमान्दशरथात्मजः ।
वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत् १८
किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशाम्यते ।
यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्रनिःस्वनः १९
वारुणीमदगन्धश्च माल्यगन्धश्च मूर्च्छितः ।
चन्दनागुरुगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः २०
यानप्रवरघोषश्च सुस्निग्धहयनिःस्वनः ।
प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथनिःस्वनः २१
नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते ।
चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हांश्च वनस्रजः २२
गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते ।
बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः २३

सब कहीं टूटे फूटे पात्र पडे थे, प्यासे व्याकुल जनयुक्त प्रपाके तुल्य वह पुरी लगती थी। बाणोंसे कटी हुई धनुषसे अलग पडी प्रत्यञ्चाके तुल्य नगरी जान पडती थी। वह पुरी मानों युद्धकुशल अश्वारोहीकी घोडी है, जिसको शत्रुने मार डाला है। (११–१७)

भरतने ऐसी नगरीमें रथपर चढ प्रवेश किया और सारथि सुमन्त्रसे बोले कि 'पहले की तरह आज अयोध्यामें गाने बजानेकी ध्वनि सुनाई नहीं पडती। मदिरा, फूल, चन्दन, अगर, आदि सुगन्धित वस्तुओंकी सुगन्ध भी नहीं आती। यानोंका शब्द, घोडोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंका चिंघाडना भी नहीं सुनाई पडता। चन्दन अगर तगर तथा मालाओंकी गन्धभी नहीं जान पडती। रामके वन चले जानेसे युवा पुरुष फूलोंकी माला आदि शृंगारकी

नोत्सवाः संप्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे ।
सा हि नूनं मम भ्राता पुरस्यास्य द्युतिर्गता　२४
नहि राजत्ययोध्येयं सासारेवार्जुनी क्षपा ।
कदा नु खलु मे भ्राता महोत्सव इवागतः　२५
जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः ।
तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरुन्नतगामिभिः　२६
संपतद्भिरयोध्यायां नाभिभान्ति महापथाः ।
इति ब्रुवन्सारथिना दुःखितो भरतस्तदा　२७
अयोध्यां संप्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः ।
तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव　२८
तदा तदन्तःपुरमुज्झितप्रभं सुरैरिवोत्कृष्टमभास्करं दिनम् ।
निरीक्ष्य सर्वत्र विभक्तमात्मवान्मुमोच बाष्पं भरतः सुदुःखितः२९

इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः ॥११५॥

षोडशोत्तरशततमः सर्गः ।　[४२०१]

ततो निक्षिप्य मातॄस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः ।
भरतः शोकसंतप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत्　१

वस्तुएं नहीं भोगते । रामके शोकसे व्यथित इस नगरीमें कोई भी उत्सव नहीं दिखाई देते। (१८–२४)

'यह अयोध्यापुरी अच्छी नहीं लगती। राम आकर अयोध्यामें कब हर्ष उत्पन्न करेंगे ? ऊंची ऊंची सवारियोंपर चढे भूषण वस्त्र धारे मनुष्योंसे अयोध्यामें राजमार्ग शोभित नहीं होते।' ऐसे कहते अति व्यथित भरत अयोध्यामें प्रविष्ट हो अपने पिताके मन्दिरमें गये, जो महाराज दशरथसे रहित सिंहहीन गुफाके समान दीख पडता था। तब देवोंसे त्यक्त स्वर्गलोकके समान अथवा सूर्यसे रहित और प्रभाशून्य हुआ वह अन्तःपुर इधरउधर संस्काररहित देखकर निग्रही होता हुआ तोभी वह भरत रोने लगा। (२४-२९)

यहाँ ११५ वाँ सर्ग समाप्त हुआ।

ततः अयोध्यामें उन माताओंको उनके मन्दिरोंमें पहुंचा शोकसंतप्त भरत

नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना २
गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम।
रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ३
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः।
अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः ४
सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ५
नित्यं ते बन्धुलुब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे।
मार्गमार्यं प्रपन्नस्य नानुमन्येत कः पुमान् ६
मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलषितं प्रियम्।
अब्रवीत्सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति ७
प्रहृष्टवदनः सर्वा मातॄः समभिभाष्य च।
आरुरोह रथं श्रीमाञ्शत्रुघ्नेन समन्वितः ८
आरुह्य तु रथं क्षिप्रं शत्रुघ्नभरतावुभौ।
ययतुः परमप्रीतौ वृतौ मन्त्रिपुरोहितैः ९
अग्रतो गुरवः सर्वे वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः।
प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतो भवेत् १०

गुरुजनोंसे बोले-'मैं नन्दिग्राममें जाकर रहूंगा और रामके न आनेतक वहां यह सब दुःख सहूंगा। पिता तो स्वर्गवासी हो गये तथा श्रीराम वनमें हैं, सो मैं वहां रह रामकी राह देखूं।' भरतके ऐसे वचन सुन मन्त्री तथा वसिष्ठ बोले, 'हे भरत! तुमने जो कहा ठीक है। तुम्हारा वचन भाईके प्रेमके योग्य है। ऐसा कौन पुरुष है जो भाईके मिलनेकी लालसामें लालायित हो तुम्हारी बात न माने?' मन्त्रियोंके ऐसे प्रिय वाक्य सुन भरत सारथिसे बोले कि 'रथ तैयार करो।' यह कह सब माताओंसे विदा हो शत्रुघ्न समेत रथपर चढ दोनों भाई प्रसन्न हो मन्त्री व पुरोहितोंके सङ्ग रवाना हुए। आगे आगे वसिष्ठादि ब्राह्मण पूर्व दक्षिणकी ओर नन्दिग्रामको चले। (१-१०)

बलं च तदनाहूतं गजाश्वरथसंकुलम् ।
प्रययौ भरते याते सर्वे च पुरवासिनः   ११
रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं शिरस्यादाय पादुके   १२
भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरूनिदमभाषत   १३
एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् ।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते   १४
भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः ।
अब्रवीद् दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम्   १५
छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ ।
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम   १६
भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम् ।
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति   १७
क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् ।
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सह पादुकौ   १८
ततो निक्षिप्तभारोऽहं राघवेण समागतः ।
निवेद्य गुरवे राज्यं भजिष्ये गुरुवर्तिताम्   १९
राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके ।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवाम्यहम्   २०

सब सेना और पुरवासी भरतके पीछे पीछे चले। भ्रातृवत्सल भरत अपने सिरपर रामकी पादुका रख नन्दिग्रामको गये। वहां पहुंच रथसे उतर गुरुजनोंसे बोले कि 'भाईने अपना राज्य मुझको धरोहरके समान सौंपा है और इसकी रक्षा करनेके लिये अपनी पादुका भी दिये हैं।' यह कह खड़ाऊं सिरपर रख दुःखी हो प्रजाओंसे बोले– 'इन खड़ाऊंओंको भाईके चरणारविन्द समझ छत्र लगाओ। भाईने ये खड़ाऊं मुझसे धरोहर रखने को दी हैं। जबतक राम नहीं आते तबतक मैं इनका पालन करूंगा। रामके

अवलिप्तश्च पापश्च त्वां च तात न मृष्यते ११
त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे।
तदाप्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान् १३
दर्शयन्ति हि बीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि।
नानारूपैर्विरूपैश्च रूपैरसुखदर्शनैः १४
अप्रशस्तैरशुचिभिः संप्रयुज्य च तापसान्।
प्रतिघ्नन्त्यपरान्क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान् १५
तेषु तेष्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च।
रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्पचेतसः १६
अवक्षिपन्ति स्रुग्भाण्डानग्नीन्सिञ्चन्ति वारिणा।
कलशांश्च प्रमर्दन्ति हवने समुपस्थिते १७
तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिहासवः।
गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्य माम् १८
तत्पुरा राम शारीरीमुपहिंसां तपस्विषु।
दर्शयन्ति हि दुष्टास्ते त्यक्ष्याम इममाश्रमम् १९
बहुमूलफलं चित्रमविदूरादितो वनम्।
अश्वस्याश्रममेवाहं श्रयिष्ये सगणः पुनः २०

जनस्थाननिवासी सब तपस्वियोंको पीडा देता है। वह बडा दुष्ट है, पुरुषोंको भी खाया करता है, आपको भी कष्ट पहुंचाना चाहता है। हे तात! जबसे आप यहां आये हैं, तबसे राक्षस और भी कष्ट देते हैं। नानाप्रकारसे तपस्वियोंको भय दिखाते हैं, जिससे वे लोग बडेबडे दुःख पाते है। तपस्वियोंके आगे बडेबडे दूषित तथा जघन्य काम करके उनको मारते हैं। (८-१५)

'आश्रमोंपर आ आ राक्षस उन बेचारे ऋषियोंके साथ घूमते व उनको मार भी डालते हैं। ऋषियोंके होम करनेके समय ये दुष्ट अग्निमें पानी डाल देते है, कलश उठा उठा फोड डालते हैं। उमसे पीडित यहांसे दूसरे देशमें चलनेके लिये ऋषिगण मुझसे कहते है। बहुत दिनोंसे ये दुष्ट ऋषियोंको मारते चले आते हैं, इससे अब इस आश्रमको हम छोड

खरस्त्वय्यपि चायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते ।
सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते　　२१
सकलत्रस्य संदेहो नित्यं युक्तस्य राघव ।
समर्थस्यापि सहितो वासो दुःखमिहाद्य ते　　२२
इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम् ।
न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरवरुद्धुं समुत्सुकम्　　२३
अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघवम् ।
स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सह　　२४
रामः संसाध्य ऋषिगणमनुगमनाद्देशात्तस्मात्कुलपतिमभिवाद्य
ऋषिम्
सम्यक्प्रीतैस्तैरनुमत उपदिष्टार्थः पुण्यं वासाय स्वनिलयमुपसंपेदे
आश्रमसृषिविरहितं प्रभुः क्षणमपि न जहौ स राघवः ।
राघवं हि सततमनुगतास्तापसाश्चार्षचरिते धृतगुणाः　२६
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥११७॥
[४२५१]

देंगे। यहांसे थोड़ी ही दूरपर अश्वनाम ऋषिका आश्रम है। वहीं परिवार सहित चले जायगे। हे राम! इच्छा हो तो आप भी हमारे साथ चलिये, क्योंकि वह खर तुम्हारे साथ भी अनुचित ही कर्म करेगा। यद्यपि आप समर्थ भी हैं तो भी नारी समेत यहांपर रहनेमें सन्देह ही है।' मुनिराजके वचन सुन राम उनके जानेका निषेध न कर सके। सो रामकी प्रशंसा कर उस आश्रमको छोड़ साथियोंको सङ्गमे मुनिराज चले गये।(१६-२४)

उस ऋषिसंघको साथ चलते हुए रामचन्द्रजी उस भूभागके उस पार ले चले तथा उन आश्रमाधिपति ऋषियोंको प्रणाम कर सुननेपर प्रसन्न होकर उन ऋषियोंने लौट जानेकी आज्ञा देदी, तथा कहा कि राम वहाँपर न रहें; तब रामचंद्रजी वापिस अपने पुनीत निवासस्थानमें लौट आये। आश्रमसे जब ऋषिगण चले गये तो प्रभु रामने सीताके संरक्षणार्थ क्षणभर भी उसको छोड़ बाहर चले जाना त्याग दिया और ऋषितुल्य वर्ताव रखने-

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ।

राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनुविचिन्तयन् ।
न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा १
इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः ।
सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः २
स्कन्धावारनिवेशेन तेन तस्य महात्मनः ।
हयहस्तिकरीषैश्च उपमर्दः कृतो भृशम् ३
तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः ।
प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः ४
सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः ।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ५
स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसत्कृतम् ।
सौमित्रिं च महाभागं सीतां च समसान्त्वयत् ६
पत्नीं च तमनुप्राप्तां वृद्धामामन्त्र्य सत्कृताम् ।
सान्त्वयामास धर्मज्ञः सर्वभूतहिते रतः ७
अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ।
प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीमब्रवीदृषिसत्तमः ८

वाले रामचंद्रजी अपनी रक्षा करनेकी क्षमता रखते हैं, ऐसा सोचकर कुछ तपस्वी आश्रमका त्याग न करके वहीं रामके साथ रहने लगे। (२४-२६)

यहाँ ११७ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब मुनिगण चले गये तो अनेक कारणसे रामने भी वहांका रहना ठीक न समझा और कहने लगे कि 'यहांपर मैंने भरत, माताओं, आदिको देखा है, इससे उनका स्मरण बार बार होता है। भरतकी सेनाके घोडे हाथियोंकी लीदकी दुर्गन्धि भी आती है। इससे अब यहांसे अलगही चले जाना उचित है।' यह सोच वहांसे चल दिये। वहांसे चल अत्रिके आश्रमपर पहुंचे। अत्रिजीने भी रामको पुत्रवत् समझा, जो कुछ उचित आतिथ्य था सब रामका किया। फिर अपनी अति वृद्धा भार्या अनुसूयाको बुलाया व सत्कार से समझाया ' कि भाग्यवती, धर्मचारिणी अनुसूया ! सीताका स्वागत

राजाय चाचचक्षे तां तापसीं धर्मचारिणीम् ।
दश वर्षाण्यनावृष्ट्या दग्धे लोके निरन्तरम् ९
यया मूलफले सृष्टे जाह्नवी च प्रवर्तिता ।
उग्रेण तपसा युक्ता नियमैश्चाप्यलंकृता १०
दश वर्षसहस्राणि यया तप्तं महत्तपः ।
अनसूयाव्रतैस्तात प्रत्यूहाश्च निबर्हिताः ११
देवकार्यनिमित्तं च यया संत्वरमाणया ।
दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ १२
तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम् ।
अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा १३
एवं ब्रुवाणं तमृषिं तथेत्युक्त्वा स राघवः ।
सीतामालोक्य धर्मज्ञामिदं वचनमब्रवीत् १४
राजपुत्रि श्रुतं त्वेतन्मुनेरस्य समीरितम् ।
श्रेयोऽर्थमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम् १५
अनसूयेति या लोके कर्मभिः ख्यातिमागता ।
तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम् १६

करो ।' (१-८)

ऐसा कह रामसे अत्रि बोले कि 'तुम इन धर्मचारिणी अनुसूयाको जानते हो । एक समय दस वर्षतक जल नहीं बरसा था, तब इन्होंने मूलफल उत्पन्न किए तथा अपनी उग्र तपस्यासे गंगाको अपने पास बुला लिया। इन्होंने दस हजार वर्ष उग्र तपस्या की है, इसीसे इनका अनुसूया नाम पड़ा है । और इसी तपस्विनी अनुसूयाके व्रतोंके सामर्थ्यसे ऋषियोंके तपश्चर्यामें आनेवाले विघ्न नष्ट हो गए हैं । देवकार्यके निमित्त इसी अनुसूयाने त्वरा करके दस रात्रियोंकी एकही रात्रिकी यह तुम्हें माताके समान हैं । इससे परम तपस्विनी इनको सीता प्रणाम करें ।' यह सुन राम जानकीसे बोले, 'हे राजपुत्रि ! अब अपने कल्याणके लिये शीघ्र इन तपस्विनी अनुसूयाकी सेवा करो । जिन्होंने अपने शुभ कर्मोंसे अनुसूया नाम पाया है

सीता त्वेतद्वचः श्रुत्वा राघवस्य यशस्विनी ।
तामत्रिपत्नीं धर्मज्ञामभिचक्राम मैथिली १७
शिथिलां वलितां वृद्धां जरापाण्डुरमूर्धजाम् ।
सततं वेपमानाङ्गीं प्रवाते कदलीमिव १८
तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम् ।
अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत् १९
अभिवाद्य च वैदेही तापसीं तां दमान्विताम् ।
बद्धाऽञ्जलिपुटा हृष्टा पर्यपृच्छदनामयम् २०
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम् ।
सान्त्वयन्त्यब्रवीद्वृद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे २१
त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि ।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि २२
नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाऽशुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः २३
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः २४
नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम् २५

उनकी सेवा कर धर्मकी बातें पूछो । 'सीताने रामकी बात सुन अनुसूयाकी प्रदक्षिणा की । (९-१७)

अनुसूया अति शिथिल-शरीर थीं, सब अंगोंकी खाल सिकुड गई थी, चलनेमें पवनप्रेरित केलाके तुल्य कांपती थीं । सीताने अनुसूयाके पास जा अपना नाम कह अभिवादन किया और हाथ जोड कुशल पूछने लगीं। सीताजीको देख महावृद्धा, अनुसूया बोली कि हे सीता ! जो तुम मान व सत्कारको छोड वनवासी रामके पीछे पीछे फिरती हो सो ठीक ही है । नगरनिवासी, वनवासी, अनुकूल वा प्रतिकूल पति जिन स्त्रियोंको प्रिय है उनका लोकमें महोदय होता है । दुश्शील, कामी निर्धन, पतिको भी आर्यस्वभाव नारियां देवतातुल्यही मानतीं हैं । हे सीते ! स्त्रियोंका पतिसे

नत्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः ।
कामवक्तव्यहृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः २६
प्राप्नुवन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि ।
अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियो याः खलु तद्विधाः २७
त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः ।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा २८
तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी ।
भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि २९

इत्यार्षे श्री० वा० आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥११८॥

एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः । [२२८०]

सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया ।
प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे १
नैतदाश्चर्यमार्याया यन्मां त्वमनुभाषसे ।
विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः २
यद्यप्येष भवेद्भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः ।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत ३

अधिक कोई भी बन्धु नहीं । कामासक्त व पतियोंकी स्वामिनी दुष्ट स्त्रियां गुण दोषका ध्यान नहीं करतीं । ऐसी स्त्रियां लोकमें कीर्ति नहीं पातीं । तुम्हारे तुल्य इस उस लोककी गति जाननेवाली नारियां स्वर्गमें विहार करती हैं । इसलिए पतिको दैवत मानकर, सदाचरणी और पतिकी सेवा करनेमें तत्पर तू अपने पतिकी सहधर्मचारिणी हो । इससे तू यश और पुण्य प्राप्त करोगी ।' (१८-२९)

यहाँ ११८ वाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

जब अनुसूयाने एवं कहा तो सीता उनके वचनोंकी बडाई कर धीरे धीरे कहने लगीं-'आपका उपदेश कि स्त्रियोंका पति ही गुरु है, कुछ आश्चर्य नहीं है, मैं भी इस बातको जानती हूं । पति धनहीन हो, चाहे उसका आचरण कैसाही क्यों न हो, पर उसके प्रति दयायुक्त व्यवहार करना मुझ

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः ४
यां वृत्तिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः ।
तामेव नृपनारीणामन्यासामपि वर्तते ५
सकृद्दृष्टास्वपि स्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः ।
मातृवद्वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित् ६
आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् ।
समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये यत्स्थिरं मम ७
पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ८
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि ।
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ९
सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते ।
तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम् १०

समान नारियोंका आवश्यकीय कर्तव्य है। किन्तु जब पति जितेन्द्रिय हो, अपनेसे अधिक स्नेह करता हो, मातापिताके समान प्रियकारी सुगुणधारी सुन्दर, हो तो उसके प्रति नारी उचित व्यवहार करेगी इसमें आश्चर्यकी कौन बात है ? मेरे महाबली पति अपनी माता कौसल्याके साथ जिस तरहका वर्ताव करते हैं, उसी प्रकारका वर्ताव अन्य राजमहिषियोंसे करते हैं। जिस नारीको महाराजने एक बार भी प्रियाकी दृष्टिसे देखा है, राम उस स्त्रीसे भी तो मातृवत् वर्तते हैं। जब मैं घरसे वनको चली थी तब आपके तुल्य मेरी सासुने जो उपदेश किया था, वह मेरे हृदयपर अङ्कित है। विवाहके समय अग्निके समक्ष मेरी माताने जो उपदेश किया था वह भी मेरे हृदयमें विराज रहा है। धर्मचारिणी ! पतिसेवाके सिवाय स्त्रीको और कोई सेवा नहीं करनी चाहिये, यह उपदेश जो मेरे बान्धवोंने मुझे दिये हैं मैं उनको तनिक भी नहीं भूली। सावित्री पतिसेवासे स्वर्गमें निवास करती हैं, आप भी सावित्रीके तुल्य पतिसेवासे सर्व सिद्धियोंको प्राप्त हो स्वर्गको

वरिष्ठा सर्वनारीणामेषा च दिवि देवता ।
रोहिणी न विनाचन्द्रं मुहूर्तमपि दृश्यते   ११
एवंविधाश्च प्रवराः स्त्रियो भर्तृदृढव्रताः
देवलोके महीयन्ते पुण्येन स्वेन कर्मणा   १२
ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः ।
शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत   १३
नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे ।
तत्संश्रित्य बलं सीते छन्दये त्वां शुचिव्रते   १४
उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि ।
प्रीता चास्म्युच्यतां सीते करवाणि प्रियं च किम् १५
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मिता मन्दविस्मया ।
कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम्   १६
सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराभवत् ।
सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम्   १७
इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च ।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्   १८

जाओगी। नारीश्रेष्ठ रोहिणी मुहूर्त भरके लिये भी अपने पति चन्द्रमासे अलग नहीं पाई जाती। एवं अरुन्धती आदि श्रेष्ठ नारियाँ पतिसेवारूप पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें वास करती हैं।' (१-१२)

सीताके ऐसा कहने पर अनुसूया अति हर्षित हो सीताका शिर सूंघ बोली- 'हे जनकनन्दिनि! मैंने अनुष्ठानोंद्वारा जो तपोबल एकत्र किया है उससे मैं तुमको वर दिया चाहती हूं कोई वर मांगो। हे सीते! तुम्हारा कथन युक्तिसंगत और पवित्र है जिससे मैं सन्तुष्ट हुई हूं, अतः कहो तुम्हारा मैं क्या प्रिय करूं?' अनुसूयाका वाक्य सुन सीता उनसे बोली कि 'आपके अनुग्रहसे मेरी सब कामना पूर्ण हो गई' यह सुन और भी प्रसन्न हो अनुसूया कहने लगीं कि 'हे सीते! तुमको देख मुझे बहुतही आनन्द हुआ है इसलिये कोई उचित वर दे मैं अपने आनन्दको सफल करूंगी।

मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् ।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति १९
अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे ।
शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम् २०
सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा ।
मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् २१
प्रतिगृह्य च तत्सीता प्रीतिदानं यशस्विनी ।
श्लिष्टाञ्जलिपुटा धीरा समुपास्त तपोधनाम् २२
तथा सीतामुपासीनामनसूया दृढव्रता ।
वचनं प्रष्टुमारेभे कथां कांचिदनु प्रियाम् २३
स्वयंवरे किल प्राप्ता त्वमनेन यशस्विना ।
राघवेणेति मे सीते कथा श्रुतिमुपागता २४
तां कथां श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण च मैथिलि ।
यथाभूतं च कार्त्स्न्येन तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि २५
एवमुक्ता तु सा सीता तापसीं धर्मचारिणीम् ।
श्रूयतामिति चोक्त्वा वै कथयामास तां कथाम् २६

हे मैथिली ! यह दिव्य माला, श्रेष्ठ वस्त्राभूषण केशर कर्पूरमिश्रित चन्दन और बहुमूल्य उबटन तुम्हें देती हूं । इन सब वस्तुओंके व्यवहारसे तुम्हारे शरीरकी शोभा निरन्तर बनी रहेगी । हे सीते ! यह केशर आदि मिश्रित अङ्गराग है इसको लगा लक्ष्मी जैसे विष्णुको वैसे तुम रामकी शोभाको बढाओगी ।' ततः सीताने अनुसूयाद्वारा प्रीतिप्रदत्त वह वस्त्राभूषण अंगराग व माला ग्रहण कीं । एवं सीता उक्त वस्तुएं ग्रहण कर अञ्जलि बांध धीर भावसे अनुसूयाकी उपासना करने लगी । (१३-२२)

सीताको देख अनुसूया कोई प्रियवार्ता सुननेकी इच्छासे पूछने लगी- 'हे सीते ! मैंने सुना है कि यशस्वी रामने तुमको स्वयंवरमें प्राप्त किया है । सो मैं तुम्हारे स्वयंवरका हाल विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूं ।' यह सुन सीता अनुसूयासे बोली, 'मैं कहती हूं आप सुनिये । मिथिलापुरीके

मिथिलाधिपतिर्वीरो जनको नाम धर्मवित्।
क्षत्रकर्मण्यभिरतो न्यायतः शास्ति मेदिनीम् २७
तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम्।
अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता २८
स मां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः।
पांसुगुण्ठितसर्वाङ्गीं विस्मितो जनकोऽभवत् २९
अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम्।
ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः ३०
अन्तरिक्षे च वागुक्ता प्रतिमा मानुषी किल।
एवमेतन्नरपते धर्मेण तनया तव ३१
ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा पिता मे मिथिलाधिपः।
अवाप्तो विपुलामृद्धिं मामवाप्य नराधिपः। ३२
दत्त्वा चास्मीष्टवद्देव्यै ज्येष्ठायै पुण्यकर्मणे।
तया संभाविता चास्मि स्निग्धया मातृसौहृदात् ३३
पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता।
चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ३४
सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्यापिता जनात्।

शासक जो महावीर जनक राजा हैं, वह धर्मानुसार पृथिवीका पालन करते हैं। यज्ञके लिये हल ग्रहण कर जब वह खेत जोतने लगे तो मैं पृथिवी विदीर्ण कर हलके आगे प्रकट हुई। मेरा समस्त शरीर धूलसे धूसरित था। पृथिवीमें बीज बोते हुए महाराज मुझे देख अचम्भा करने लगे। उनके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये मुझे वह पुत्री समझ बड़ा प्यार करने लगे। उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि राजन्! यह कन्या तुम्हारे क्षेत्रमें उत्पन्न होनेसे तुम्हारी पुत्री है। धर्मात्मा जनक यह आकाशवाणी सुन बड़े आनन्दको प्राप्त हुए। (२३-३२)

'तदनन्तर उन्होंने मुझे अपनी पटरानीको सौंप दिया, जो मेरा मातृवत् लालनपालन करने लगीं। जब मेरी विवाहयोग्य अवस्था हुई तो पिता

प्रधर्षणमवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि ३५
तां धर्षणामदूरस्थां संदृश्यात्मनि पार्थिवः।
चिन्तार्णवगतः पारं नाससादाप्लवो यथा ३६
अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत्स चिन्तयन्।
सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम ३७
तस्य बुद्धिरियं जाता चिन्तयानस्य संततम्।
स्वयंवरं तनूजायाः करिष्यामीति धर्मतः ३८
महायज्ञे तदा तस्य वरुणेन महात्मना।
दत्तं धनुर्वरं प्रीत्या तूणी चाक्षय्यसायकौ ३९
असचाल्यं मनुष्यैश्च यत्नेनापि च गौरवात्।
तन्न शक्ता नमयितुं स्वप्नेष्वपि नराधिपाः ४०
तद्धनुः प्राप्य मे पित्रा व्याहृतं सत्यवादिना।
समवाये नरेन्द्राणां पूर्वमामन्त्र्य पार्थिवान् ४१
इदं च धनुरुद्यम्य सज्यं यः कुरुते नरः।
तस्य मे दुहिता भार्या भविष्यति न संशयः ४२

व्याकुलचित्त हो चिन्ता करने लगे। क्योंकि इंद्रसमान भी कन्याका पिता वरके पक्षवालोंसे अनादरको प्राप्त होताही है। उस अपमानके होनेमें कुछ देरी न देख पिता जनक चिन्तासागरमें निमग्न हो गये। मुझको अयोनिज देख अनेक प्रयत्न करनेपर भी मेरे समान वह योग्य वर न पा सके अतः वह सदा चिन्तातुर रहते थे। तदनन्तर उन्होंने सोचा कि धर्मानुसार कन्याका स्वयंवर रचना चाहिये। पुराकालमें वरुणने जनकके पूर्वज देवरातको दक्षके यज्ञमें धनुष और अक्षय बाणोंसे पूर्ण दो तरकस दिये थे। यह धनुष् इतना भारी था कि देवतासे लेकर मनुष्यतक कोई भी उसे चलायमान नहीं कर सकता था। मेरे पिता राजा जनकने वह धनुष पा राजाओंको निमन्त्रित किया और उन सबके आगे बोले, आप लोगोंमेंसे जो भी इस धनुषको उठा इसमें प्रत्यञ्चा चढा देगा, मेरी कन्या उसीकी भार्या बनेगी। (३३-४२)

तद्‌ दृष्ट्वा धनुः श्रेष्ठं गौरवाद्गिरिसंनिभम् ।
अभिवाद्य नृपा जग्मुरशक्तास्तस्य तोलने　　४३
सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः ।
विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः　　४४
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामः सत्यपराक्रमः ।
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा मम पित्रा सुपूजितः　　४५
प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ रामलक्ष्मणौ ।
सुतौ दशरथस्येमौ धनुर्दर्शनकाङ्क्षिणौ　　४६
इत्युक्तस्तेन विप्रेण तद्धनुः समुपानयत् ।
तद्धनुर्दर्शयामास राजपुत्राय दैविकम्　　४७
निमेषान्तरमात्रेण तदानम्य महाबलः ।
ज्यां समारोप्य झटिति पूरयामास वीर्यवान्　　४८
तेनापूरयता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः ।
तस्य शब्दोऽभवद्भीमः पतितस्याशनेर्यथा　　४९
ततोऽहं तत्र रामाय पित्रा सत्याभिसंधिना ।
उद्यता दातुमुद्यम्य जलभाजनमुत्तमम्　　५०
दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघवः ।

---

¹ राजन्यगण उस धनुषरत्नको देख उसके उठानेमें उद्यत हुए पर सफल-मनोरथ न हो धनुषको प्रणाम कर चले गये । बहुत समयके पीछे श्रीराम विश्वामित्र ऋषिके साथ राजा जनकका यज्ञ देखनेको वहाँ आये । महाराज जनकने भाई लक्ष्मण सहित समागत राम और विश्वामित्रकी बड़ी पूजा की । तब विश्वामित्रने महाराजसे कहा कि राजा दशरथके पुत्र यह राम और लक्ष्मण आपका धनुष देखना चाहते हैं । महर्षिके ऐसा कहनेपर राजाने वह धनुष सैकड़ों वीरोंसे उठवा रामको दिखलाया । महाबली रामने क्षणभरमें उस धनुषको झुका उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी । बड़े बलसे प्रत्यञ्चा चढ़ानेसे वह धनुष टूट कर दो टुक हो गया । उसी समय सत्य-प्रतिज्ञ पिता जनकने मुझे रामके हाथोंमें सौंपनेकी तयारी की । (४३-५०)

प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ १२
तथा तु भूषितां सीतां ददर्श वदतां वरः।
राघवः प्रीतिदानेन तपस्विन्या जहर्ष च १३
न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली।
प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजाम् १४
प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः।
मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम् १५
ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम्।
अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः १६
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान्।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान् १७
तावचूस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः।
वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम् १८
रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव।
वसन्त्यस्मिन्महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः। १९
उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम्।
अदन्त्यस्मिन्महारण्ये तान्निवारय राघव २०

सिरसे अनुसूयाको प्रणाम कर रामके निकटको गमन किया। बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ रामने सीताको अलंकृत देख अनुसूयाके प्रीतिदानसे आनंद लाभ किया। अनुसूयाने प्रीतिपूर्वक वस्त्र आभूषण और माला जो सीताको दी थीं वह सब सीताने रामसे निवेदन किया। मनुष्योंमें दुर्लभ सीताका सत्कार देख राम-लक्ष्मण बडे प्रसन्न हुए। ततः राम तपस्वियोंसे पूजित हो चन्द्रवदना सीताको देख प्रीतिपूर्वक उस रात्रिमें वहां सोये। उस रात्रिके बीतनेपर स्नानसे निवृत्त हो अग्निहोत्र कर राम-लक्ष्मण दोनोंने वनवासी तपस्वियोंसे अपने योग्य सेवा पूछी। धर्मचारी वनवासी तपस्वी उनसे बोले कि ' इस वनमें राक्षसोंका बडा उपद्रव होता है। नानारूप मनुष्यभक्षक राक्षसगण और मांसाशी जीव इस बडे वनमें बसते हैं। वे अपवित्र वा असावधान तपस्वीको

एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने ।
अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् 　　२१
इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परंतपः ।
वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् २२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे
विंशोत्तरशततमः सर्गः ॥१२०॥ [४३५६]

॥ इति अयोध्याकाण्डं समाप्तम् ॥

खा जाते हैं। हे राम ! इस वनमें उनका निवारण कीजिये। महर्षिगणका वनमेंसे फल लानेका यही मार्ग है, इससे होकर आप दुर्गम वनमें गमन कर सकेंगे।' हाथ जोड़े हुए तापस द्विजोंके ऐसा निवेदन कर चुकनेपर शत्रुको तपानेवाले राम, लक्ष्मण और भार्यासहित, मेघमण्डलमें सूर्यके समान उस वनमें प्रविष्ट हुए। (१२-२२)

॥ अयोध्याकाण्ड समाप्त ॥

रामायण-चरित्र-माला

(१)

राममाता कौसल्या

(लेखक- वाल्मीकिवाक्प्रदीप पं० विष्णु दामोदर पण्डित)

राममाता कौसल्या दक्षिण कोसल देशके राजा भानुमान्‌की कन्या और उत्तर कोसल देशके अर्थात् अयोध्याके राजा दशरथ की श्रेष्ठ महिषी थी। इस कौसल्याके विषयमें आनन्द-रामायणमें ऐसा वर्णन मिलता है-

अयोध्यायास्तु सान्निध्ये देशे श्री कोसलाह्वये।
कोसलायां महापुण्यः कोसलाख्यो नृपोऽभवत्॥ ३२॥
तस्यासीद्दुहिता रम्या कौसल्या पतिकामुका।
तस्यां दशरथेनाशु विवाहो निश्चितो मुदा॥३३॥

(आनंद-रामायण, सारकाण्ड अ. १)

अर्थात् उत्तर कोसल देशके साथ दक्षिण कोसल देश लगा हुआ था। उत्तर कोसलकी राजधानी अयोध्या थी। दक्षिण कोसल देशकी राजधानी कोसला थी। यहां पुण्यशील राजा राज्य करता था। उसकी रूपवती सुन्दरी कन्या कौसल्या नाम की थी। वह कन्या उपवर होनेपर उसका विवाह दशरथके साथ करनेका निश्चय हुआ और थोड़े समयके पश्चात् यह विवाह हुआ। इससे दशरथ और कौसल्या ये भाई बहन थे, ऐसा जैनबौद्ध ग्रंथोंके आधारपर जो कई विद्वान् कहते हैं, वह असंगत है, ऐसा सिद्ध होता है। इस कोसल राजाका नाम अर्थात् कौसल्याके पिताका नाम भानुमान् था।

कौसल्याको उस समयके रिवाजके अनुसार एक सहस्र ग्राम 'स्त्रीधन' रूपमें पितासे मिले थे। (देखो अयोध्या-काण्ड, सर्ग ३१ श्लोक २२-२३)

कौसल्याका वैवाहिक जीवन

दशरथ राजा का प्रेम कैकेयी राणीपर था, अतः वह प्रायः कैकेयीके

महलमेंही रहता था। इसलिये कौसल्याके विषयमें वह उतना प्रेम नहीं दिखाता था। कैकेयीके साथ विवाह होनेतक जो पतिसुख कौसल्याको मिला होगा वही होगा, क्योंकि कैकेयी भी कौसल्याका अपमान बारबार करती रहती थी। तथापि शीघ्रही रामको राज्य मिलेगा, तब मुझे सुखके दिन आयेंगे, ऐसा विचार करके कौसल्या सब दुःख सहन करती रहती थी। यह बात कौसल्याके भाषणमेंही स्पष्ट होती है–

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे।
अपि पुत्रे विपश्येयं इति रामास्थितं मया।
(अयोध्याकाण्ड स. २०)

पर रामका वनवास होनेके कारण कौसल्याकी सब आशाएं विनष्ट हो गयीं और वह पूर्ण रूपसे उदास बनी।

गृहिणी कौसल्या

जब अनेक बार प्रार्थना करनेपर भी कैकेयीने कुछ भी न सुना और रामको वनवासके लिये अरण्यमें भेजना अनिवार्य हुआ, तब दशरथको कौसल्याका स्मरण हुआ। तब उसने कहा–

यदा यदा हि कौसल्या दासीव च सखीव च।
भार्यावत् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति॥ ६९॥
(अयो॰ १२)

'मेरी रानी कौसल्या दासीके समान, सखीके समान, भार्या और बहनके समान, तथा माताके समान हर एक प्रकारकी मेरी सेवा शुश्रूषा करनेके लिये उपस्थित रहती है। मैंने उनके साथ उदासीनताका व्यवहार किया, पर उसके अन्दरकी पतिनिष्ठा कम नहीं हुई। इस दशरथके भाषणसे स्पष्ट होता है कि कौसल्या आदर्श गृहिणी थी।

कौसल्याका शील

जिस दिन श्रीराम वनवासमें गये, उसी दिनसे राजा दशरथ कौसल्याके मंदिरमें रहने लगे। श्रीराम और सीताके वनवास जानेके दिन कौसल्याने

पुत्रशोकसे संतप्त होकर राजा दशरथको बहुत कुछ बुराभला कहा (देखो अयोध्या० स ४३-४४)। तब राजा दशरथने कौसल्याके सामने हाथ जोडे और उससे क्षमा मांगी। तब कौसल्याको मालूम हुआ कि "मेरा यह भाषण पतिव्रता स्त्रीके लिये योग्य नहीं हुआ, पति कैसा भी हुआ तो भी उसकी निन्दा करना पत्नीके लिये कदापि योग्य नहीं है। अत: अपना भाषण कुलीन पतिव्रता स्त्रीके लिये अयोग्य हुआ।" जब यह विचार कौसल्याके मनमें आया, तब उसको पश्चात्ताप हुआ और वह बडो जोरसे रोने लगी और उसने कहा कि "केवल पुत्रशोकसे विवश होकर मैंने ऐसा भाषण किया, मैं क्षमाकी याचना करती हूं।" इसके पश्चात् कभी कौसल्याने ऐसा भाषण नहीं किया। अन्ततक पतिके साथ रहकर वह उसकी उचित सेवाही करती रही।

कैकेयी कौसल्याकी वारवार निंदा करती थी, पर कौसल्याका वर्ताव कैकेयीके साथ बहिनके समानही होता था। देखो—

तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते ॥
(अयो. ७३।१०)

भरतने कैकेयीसे कहा कि 'माता कौसल्या तेरे साथ भगिनीके समान वर्ताव करती है और तुम्हारा वर्ताव इस तरह क्यों हुआ ?'

कौसल्याका पुत्रवात्सल्य

श्रीराम वनमें जानेके पश्चात् कौसल्या पुत्रशोकसे संत्रस्त हुई और वह दशरथसे बोली—

अथास्मिन्नगरे रामः चरन् भैक्ष्यं गृहे वसेत्।
कामकारो वरं दातुं अपि दासं ममात्मजम् ॥ (अयो. ४३।४)

'यदि कैकेयी अपने पुत्र-भरतके लिये राज्य देना चाहती थी, तो वह भले ही राज्य ले लेती, पर श्रीरामचन्द्रके लिये वनवासका वर मांगनेकी उसके लिये कोई आवश्यकता नहीं थी। राम यहीं घरमें रहता और घरघरमें

भीख मांगकर अपना निर्वाह कर सकता था। इससे भरतको राज्य मिल जाता और राम मेरे पास रहता और पुत्रशोकके कष्ट मुझे न होते।' यथा—

त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन च ।
त्वया सह मम श्रेयः तृणानां अपि भक्षणम् ॥
(अयो. २१।२६)

'हे राम! तेरे वियोगसे मुझे सुखमय जीवन कदापि प्राप्त नहीं होगा, परंतु तेरे साथ रहते हुए मैं घास खाकर भी आनन्दसे रहूँगी।' इससे कौसल्याका पुत्रप्रेम प्रकट होता है। इतना शोक होनेपर भी कौसल्याकी मनोवृत्ति धर्ममार्गसे भ्रष्ट नहीं हुई। वह पुत्रशोकसे दशरथको कठोर भाषण बोली, पर तत्कालही पश्चात्तापपूर्वक उसने क्षमाकी भी याचना की। इससे स्पष्ट होता है कि वह पूर्ण रूपसे पतिव्रता-धर्मपर सुदृढ थी और साथ साथ पुत्रवत्सला भी थी।

कैकेयीके कहनेके अनुसार रामको वनवास हुआ, यह देखकर लक्ष्मण बहुतही क्रोधित हुआ और बोला कि—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥
अमित्रभूतो निःसंगं वध्यतां वध्यतां अपि ।
(अयोध्या. २१।१३)

'पिता भी क्यों न हो, वह कार्याकार्य न जानता हो और टेढे मार्गसे जाने लगे, तो उसको शासन करना योग्य है। जो शत्रु होगा उसका वध किया जाय, अथवा उसको बंधनमें रखा जाय, यही योग्य है।' ऐसा जब क्रोधित लक्ष्मणने कहा, तब कौसल्या बोली—

भ्रातुस्ते वदतः सौम्य लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया ।
यदत्रानंतरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते ॥ (अयो. २१।२१)

'हे राम! तेरे भाई लक्ष्मणका यह भाषण तुमने सुना ही है, अब यदि तुझे यह पसंद है, तो ऐसा कर।' ऐसा कहनेमें कौसल्याने वैसा करनेकी आज्ञा नहीं दी, प्रत्युत 'मुझे यह पसंद नहीं। पर यदि तू चाहता

है तो कर' ऐसे भाव यहां स्पष्ट हैं। पिताज्ञाके अनुसार वनगमन करनेके लिये रामचन्द्र कितना सिद्ध है, यह देखनेका भी यहाँ कौसल्याका उद्देश्य होगा।

कई लोग कहते हैं कि, कौसल्याने यहां लक्ष्मणके कहनेके अनुसार करने के लिये अनुज्ञा दी, यह ठीक प्रतीत नहीं होता। कौसल्या जैसी धर्मनिष्ठ पतिव्रता अपने पतिका वध या कारावास करनेके लिये आज्ञा देगी, यह संभवही नहीं है।

इस समय कौसल्या के सामने दो प्रश्न थे, एक पतिभक्ति और दूसरा पुत्रप्रेम! वृद्धावस्थामें कौसल्याको पतिसे दूर रहना भी योग्य नहीं था और पुत्रका वियोग भी उसके लिये असह्य ही था। पर क्षणमात्र उसने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि 'तू मुझे अपने साथ वनमें ले चलो' तब श्रीरामने कहा कि—

कैकेय्या वंचितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते।
त्वया चैव परित्यक्तः स नूनं वर्तयिष्यति॥ (अयो. २४।११)

'कैकेयीसे वंचित हुआ राजा, मेरे अरण्यमें जानेके बाद यदि तू भी यहां न रही, तो निःसंदेह मर जायगा।' इसलिये तेरा यहां रहना राजाके हितके लिये आवश्यक है, ऐसा कहनेपर कौसल्याने वह मान लिया है। इससे उसकी पतिभक्ति उत्तम रीतिसे व्यक्त होती है। ऐसी पतिव्रता स्त्री पतिका वध करनेके लिये अनुज्ञा देगी, यह संभवही नहीं है।

कौसल्याका सीताके लिये उपदेश

जब सीता रामके साथ वनमें जानेके लिये सिद्ध हुई तब कौसल्याने उसको अपने हृदयके साथ मिलाया और प्रेमसे जो उपदेश किया, वह प्रत्येक स्त्रीको अन्तःकरणमें धारण करने योग्य है। यहां कौसल्याने सीता को प्रथम असती स्त्रियोंके लक्षण कहे और पश्चात् सतीके लक्षण बताये हैं–

असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन् सततं सत्कृता प्रियैः।
भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः॥२०॥

एष स्वभावो नारीणां अनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥२१॥
असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदयः सदा।
असत्यः पापसंकल्पाः क्षणमात्रविरागिणः ॥२२॥
न कुलं न कृतं विद्यां न दत्तं नापि च श्रुतम्।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयं अनित्यहृदया हि ताः ॥२३॥
(अयोध्या ३९)

'जो स्त्रियां पतिव्रता नहीं, उनको कितना भी सुख दिया तोभी वे कष्टके समयमें पतिकी सेवा नहीं करतीं, उस कठिन समयमें वे पतिका तिरस्कार भी करती हैं। असती स्त्रियां ऐश्वर्यके समयमें सुख भोगती हैं, पर चिरकालमें पतिकी तिरस्कारपूर्वक निंदा करती हैं। असती स्त्रियाँ असत्यभाषणी, कुकर्म करनेमें तत्पर, दुष्ट पुरुषोंके पीछे जानेवाली, अपने पतिपर प्रेम करती नहीं और पर पुरुषपर प्रेम करती हैं। अल्प कारणसे ही पतिका द्वेष करने लगती हैं। असती स्त्रियां अपने पतिके कुल, पुरुषार्थ, ज्ञान, दान, बहुश्रुतपन आदिकी पर्वाह नहीं करतीं। ऐसी असन्मार्गप्रवृत्त स्त्रियां पुरुषके कुलकी अथवा यशकी पर्वाह नहीं करतीं, वे पर पुरुषपर रत रहती और पापकर्म करती हैं। इसका कारण यह है कि, इनका चित्त अत्यंत चञ्चल रहता है और उनका प्रेम भी क्षणभंगुरही रहता है।'

इस तरह कौसल्याने असती स्त्रियोंके लक्षण कहकर पश्चात् साध्वी स्त्रियोंके लक्षण कहे, सो अब देखो–

साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥ २४ ॥

'सती स्त्रियां शीलयुक्त तथा सदाचारयुक्त होती हैं, वे सत्यनिष्ठ रहती हैं, श्रेष्ठ पुरुषोंके उपदेशोंपर उनकी श्रद्धा होती है, कुलमर्यादाका पालन वे करती हैं, कुलके यशका संरक्षण करती हैं। सब धर्मोंमें एक पतिव्रताधर्मका पालनही श्रेष्ठ धर्म है।' अतः हे सीते–

स त्वया नावमंतव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम्।
न च दैवसमस्त्वेषो निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ २५ ॥

'तू इस (रामचन्द्र) का कभी अपमान न कर, यद्यपि यह वनमें भेजा गया है, तथापि यह तेरे लिये आदरणीयही है, देवताके समान यह तेरे लिये पूजनीय है। यह धनवान् हो अथवा निर्धन, यह तेरे लिये सेवा करने योग्य ही सदा है।'

इस तरह कौसल्याने प्रथम दुर्वृत्त स्त्रियोंके दुर्गुणोंका वर्णन करके सीताको बताया कि इन दुष्ट भावोंसे तुम्हें बचना चाहिये। तथा आगे सद्वृत्त स्त्रियोंके सुलक्षण कहकर उसको कहा कि इन सुलक्षणोंको धारण करना चाहिये।

कौसल्याका दातृत्व

कौसल्याका दातृत्व बहुतही बडा था। प्रतिवर्ष गुरुकुलसे सेकडों स्नातक कौसल्याके पास आते थे और अपने विवाहके लिये सहायता मांगते थे। कौसल्या उन सबका विवाह करा देती थी और उनको और भी यथेष्ट द्रव्य देती थी, जिससे उनका संसार अच्छी तरह चल सकता था। राम वनवास को जाने लगा, उस समय वह लक्ष्मणसे कहता है-

मेखलीनां महासंघः कौसल्यां समुपस्थितः।
तेषां सहस्रं सौमित्रे प्रत्येकं संप्रदापय ॥ २१ ॥
(अयो० ४२)

'स्नातकोंका संघ कौसल्याके पास दान मांगने आया है, उनमेंसे प्रत्येक को हे लक्ष्मण! सहस्र सुवर्ण मुद्राओंका दान कर।' अर्थात् इससे उनका विवाह भी होगा और उनका संसार भी अच्छी तरह चलेगा।

इससे पता लगता है कि कौसल्याके पास कितनी संख्यामें दान मांगनेके लिये स्नातक आते थे। इतना दानधर्म कौसल्या करती थी।

राममाता कौसल्या और युधिष्ठिरमाता कुन्तीकी तुलना

कौसल्याका पुत्रप्रेम अन्धा है, ऐसा प्रतीत होता है। अपना पुत्र

अपनेसे दूर न होवे, पुत्रसे अपना वियोग न हो, पुत्रको भीक मांगनेका अवसर आ गया तो भी हर्ज नहीं, पर वह अपनेसे दूर न हो। उसको दीन अवस्थामें रहनेका समय आ गया तो भी हर्ज नहीं, परंतु वह दूर न जाय, ऐसी इच्छा कौसल्याकी दीखती है। अर्थात् कौसल्याके पुत्रप्रेममें पुत्रकी अभ्युदयकी इच्छा दीखती नहीं है।

'मेरा पुत्र राम बडा होकर जब राजा होगा, तब मुझे सुखके दिन दीखेंगे' यही कौसल्याकी इच्छा प्रतीत होती है। 'अपने पुत्रपर अन्याय है, उसका राज्य छीना गया है, यह अयोग्य हुआ है। निष्कारण वह दुःखमयी अवस्थातक गिराया गया है, इसका राज्य उसको शीघ्र मिलना चाहिये' इत्यादि बातें कौसल्याके मनमें आयी नहीं है। देखिये, कौसल्या ऐसा बोल रही है—

त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन वा।
त्वया सह मम श्रेयः तृणानामपि भक्षणम् ॥२६॥
(अयोध्या २१)

अथास्मिन्नगरे रामः चरन्भैक्ष्यं गृहे वसेत्।
कामकारो वरं दातुं अपि दासं ममात्मजम् ॥४॥
(अयोध्या. ४३)

'हे राम' तेरा वियोग होनेपर मुझे जीवनसे क्या कार्य है और सुखसाधनोंसे भी क्या करना है? तेरे साथ मैं घास खाकर भी आनंदमें रहूंगी। मेरा राम इस नगरमें रहे और चाहे भीख भी मांगे, अथवा दास बनकर भी रहे, पर मुझसे दूर न हो। कैकेयीका पुत्र चाहे राज्य प्राप्त करे और मेरा पुत्र उसका दास बने।' यह कौसल्याका भाषण स्पष्ट है। इस में उसका पुत्रप्रेम अन्धा है ऐसा स्पष्ट दीखता है। इसमें वीरताकी झलक बिलकुल नहीं है। पुत्रके जीवितकी दुर्दशाकी कल्पना भी बिलकुल नहीं, पुत्र अपने पास रहे इतनी ही इच्छा यहां है। इसमें राजकारण कुछ भी नहीं है। इसके साथ कुन्तीकी तुलना करो।

कुन्ती वनमें न जाय, अपने पास रहे, इस इच्छासे युधिष्ठिरका भाषण ऐसा है-

यदा राज्यमिदं कुन्ति भोक्तव्यं पुत्रनिर्जितम्।
प्राप्तव्या राजधर्मास्ते तदेयं ते कुतो मतिः ॥२५॥
किं वयं कारिता कुन्ति भवत्या पृथिवीक्षयम्।
वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम् ॥२६॥
प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि।
श्रियं यौधिष्ठिरीं तावत् भुंक्ष्व मातर्बलार्जिताम् ॥२८॥
(म० भा० आश्रमवासिक पर्व, कुन्ती-प्रस्थान, अ. १६।१७)

'हे कुन्ती! तेरे पुत्रोंने शत्रुका पराभव करके राज्य प्राप्त किया है, ऐसे समयमें राज्यश्रीका भोग करना छोडकर वनमें जानेकी बुद्धि तेरी क्यों हुई है? यदि तुम्हें राज्य नहीं चाहिये था, तो इतना वीरोंका संहार क्यों हमसे करवाया? हम वनमें गये ही थे, फिर हमें वापस क्यों लाया? हे माता! प्रसन्न हो, वनमें न जा। मैंने स्वपराक्रमसे प्राप्त की राज्यसंपदाका भोग कर।' इस पर कुन्ती क्या कहती है, सो देखो-

एवमेतद् महाबाहो यथा वदसि पाण्डव।
कृतं उद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतां नृपाः ॥१॥
द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि।
ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतं उद्धर्षणं मया ॥२॥
कथं पाण्डोर्न नश्येत सन्ततिः पुरुषर्षभाः।
यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम् ॥३॥
यूयं इन्द्रसमा लोके देवतुल्यपराक्रमाः।
मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थ इत्येवं तत्कृतं मया ॥४॥
कथं धर्मभृतां श्रेष्ठः राजा त्वं धर्माश्रितः।
पुनर्वने न दुःखी स्याः इति चोद्धर्षणं कृतम् ॥५॥
नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्रनिर्जितम्।
पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा कृतान् ॥६॥

श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने त्वहम्।
गांधारीसहिता वन्ये तापसी मलपंकिनी ॥७॥

(म. भा. आश्रमवासिकपर्व, सर्ग १७)

'हे युधिष्ठिर! तेरा कहना सत्य है। तुम्हारी अवनति हो रही थी, इसलिये तुम्हारे उद्धारके लिये मैंने तुम्हें उन्नतिका उपदेश किया था। द्यूतमें तुम्हारे शत्रुओंने तुम्हारे राज्यका अपहरण किया था, इसलिये तुम सब ऐश्वर्योंसे वंचित हो गये थे, अपने ज्ञातिबांधवोंसे तुम पीडित हुए थे, इसलिये तुम्हारे उद्धारका उपदेश मैंने तुम्हें किया था। किस उपायके करनेसे पाण्डुकी संतान नष्ट नहीं होगी, और उनका यश भी विनष्ट नहीं होगा, इसका विचार मैं रातदिन करती थी और उसके परिणामस्वरूप मैंने तुम्हारा उत्साह बढाया था। तुम इन्द्रके समान तेजस्वी और देवोंके समान पराक्रमी हो, अतः तुम्हें उचित नहीं था कि तुम दूसरेके मुखकी ओर ताकते रहे, इसलिये मैंने तुम्हारा उत्साह बढाया था। तुम सब धर्माचरण करनेवालोंमें श्रेष्ठ और धर्मानुकूल आचरण करनेवाला सच्चा राजा है, ऐसे तुझे वनवास जैसी आपत्ति फिरसे प्राप्त न हो इसलिये मैंने तुम्हारा उत्साह बढाया था। तुमने कमाये राज्यका उपभोग लेते हुए बैठनेकी मेरी इच्छा नहीं है। परंतु मैं अपने तपोबलसे पतिलोककी प्राप्तिकी इच्छा करती हूं। अब पाण्डुका वंश नष्ट होने लगा था उसका उद्धार हो चुका है। तुम विनाशके गढेमें गिर रहे थे, उनकी उन्नति हो गयी है। इस तरह मेरे जीनेका सार्थक हुआ है। इसलिये पतिव्रताधर्मका आचरण करके गांधारी और धृतराष्ट्रकी सेवा करनेमें अपना अन्तिम आयुष्य व्यतीत करनेकी मैं इच्छा करती हूं, इस हेतु मैं अब तपोवनमेंही जाऊंगी।'

अब कौसल्या और कुन्तीके वचनोंकी तुलना कीजिये-

(१) कौसल्या-

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे।
अपि पुत्रे विपश्येयं इति रामास्थितं मया।

(मैंने पतिसे सुख या कल्याणका अनुभव नहीं किया था अब मेरा

पुत्र बडा होगा और मुझे सुख देगा, इस विश्वाससे मैंने जीवित धारण किया था।)

कुन्ती—

नाहं राज्यफलं पुत्राः कांक्षये पुत्रनिर्जितम्।
पतिलोकानहं पुण्यान् कांक्षये तपसार्जितान्॥

(मैं पुत्रोंसे प्राप्त किये राज्यसुखकी इच्छा नहीं करती, परंतु तपसे प्राप्त पुण्य पतिलोककी प्राप्ति करनेकी इच्छा करती हूं।)

(२) कौसल्या—

अथास्मिन्नगरे रामश्चरन्भैक्ष्यं गृहे वसेत्।
कामकारो वरं दातुं अपि दासं ममात्मजम्॥

(इस अयोध्या नगरीमें राम भीक मांगता हुआ भी घरमें रहे, अथवा मेरा पुत्र दासही क्यों न बने, पर राम घरमें रहे ऐसा वर लेना था।)

कुन्ती—

यूयं इन्द्रसमा लोके देवतुल्यपराक्रमाः।
मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येयं तत्कृतं मया॥

(तुम इन्द्रके समान तेजस्वी और देवोंके समान पराक्रमी हो, इसलिये दूसरोंके मुख ताकते न रहो इसलिये मैंने तुम्हें वैसा उत्साह बढानेका उपदेश किया था।)

(३) कौसल्या—

त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन वा।
त्वया सह मम श्रेयः तृणानामपि भक्षणम्।

(तेरा वियोग होनेपर मेरे जीवितसे और सुखसे मुझे क्या प्रयोजन है? तेरे साथ मैं घास खाकर भी आनंदसे रहूंगी।)

कुन्ती—

कथं पांडोर्न नश्येत सन्ततिः पुरुषर्षभाः।
यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम्।

(पाण्डुकी संतान किस उपायसे नष्ट न हो और उनका यश जिस

तरह विनाशको प्राप्त न हो, इसलिये मैंने वह उत्साहवर्धनका उपदेश तुम्हें किया था।)

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कौसल्याकी मनोदशा अत्यंत उत्साह-हीन हो चुकी थी, उनका उत्साह मारा गया था और उनमें महत्वा-कांक्षा बिलकुल ही नहीं रही थी। संभवतः यह बात ऐसी इसलिये बनी थी कि राजा दशरथका उनसे बर्ताव ठीक न था और कैकेयी भी उनका द्वेष करती थी और कौसल्याका कुछ चलता नहीं था।

पर कुंतीका अभिमान और उत्साह कैसा जाग्रत था और महत्त्वाकांक्षा कैसी तीव्र थी, वह उनके भाषणसेही प्रकट हो रहा है। कुन्तीके स्वभावमें जो वीरता है, उसके लिये इतिहासमें दूसरा तुलना करनेके लिये स्थानही नहीं है। वैसी तेजस्विता कौसल्यामें नहीं थी।

(२)

लक्ष्मणमाता सुमित्रा

सुमित्रा मगध देशके शूरसेन राजाकी कन्या थी और दशरथकी तीन रानियोंमें बीचकी रानी थी। कौसल्यासे नीचे और कैकेयीसे ऊपर इसका स्थान था। इसके विषयमें आनन्द-रामायणकार ऐसा लिखते हैं—

ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम्।
विवाहेनापरां पत्नीं चकार दयितां प्रियाम्॥

(आनन्द सारकांड १।७०)

"मगध राजाकी कन्या सुमित्राके साथ दशरथ राजाने अपना विवाह किया और उसे अपनी प्रिय पत्नी कर लिया।" इससे स्पष्ट होता है कि *सुमित्रा राजकन्या नहीं थी, वह हीन कुलकी कन्या थी,* ऐसा जो कइ-योंने प्रचार चलाया है, वह निराधार है। यदि सुमित्रा राजकन्या न होती और हीन कुलमें उत्पन्न हुई कन्या होती, तो उसका मुख्य रानियोंमें समा-वेश होना असंभव ही था। वह मुख्य तीन रानियोंमेंसे एक थी, इससे भी सिद्ध है कि वह राजकन्या थी।

कैकेयीके साथ विवाह होनेके पश्चात् जैसा कौसल्यासे तथा सुमित्रासे भी दशरथका मन वैसा प्रेमपूर्ण नहीं रहा जैसा कि रहना चाहिये था। पर सुमित्रा अत्यंत गम्भीर स्वभावकी थी, इसलिये कैकेयीके विवाहसे जो परिस्थितिमें बदल हुआ, वह उसने ठीक तरह जान लिया और अपना मन शान्त रखकर जैसा कौसल्याके साथ वैसाही कैकेयीके साथ अपना सुचारु संबंध रखा और अपना सुमित्रा नाम सार्थ किया।

इस सुमित्राने अपने एक पुत्र लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्रजीके साथ और दूसरे पुत्रको भरतके साथ रखकर अपना दोनोंके साथ संबंध जोड दिया। राम राजा हो या भरत, अपना पुत्र उसमेंसे प्रत्येकके साथ है, इसलिये अपनी स्थिति भावी राजाके साथ उसने सुरक्षित कर दी। यह प्रसंगके अनुकूल बर्ताव करनेका कौशल्य सुमित्रामें स्पष्ट दीखता है और वह उसकी बुद्धिमत्ताकी उत्तम साक्षी दे रहा है।

सुमित्रा शान्तताप्रिय थी, इसलिये राजकारणसे सदा पृथक् ही रहती थी। तथापि प्रसंग आनेपर सत्पक्षको सहाय्य भी करती थी। जब श्रीराम वनमें जाने लगे, उस समय उसने अपने पुत्र लक्ष्मणको उसके साथ जानेका उपदेश करते समय कहा–

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ५
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ।
एष लोके सतां धर्मः यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ६
इदं हि वृत्तं उचितं कुलस्यास्य सनातनम्।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु च ७
लक्ष्मण त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम्।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ८
(अयोध्या. सर्ग २०)

" हे लक्ष्मण! तेरा प्रेम रामपर विशेष ही है। इसलिये उसके साथ

वनवासमें जानेकी आज्ञा में तुम्हें देती हूं। राम अपने मित्रोंपर अत्यंत प्रेम करनेवाला है, वह वनमें जाता है, उसके साथ तू जा, पर सदा सावध रहकर उसकी सेवा कर। राम आपत्तिमें हो या संपत्तिमें हो, वही तेरे लिये सेवा करने योग्य है। ज्येष्ठ भाईकी सेवा करनाही सज्जनोंका सर्वसंमत धर्म है। ज्येष्ठ भाईके अनुकूल वर्ताव करनाही तुम्हारे कुलके अनुकूल है, यही तेरे कुलकी परंपरा है, वैसेही सत्पात्रमें दान, यज्ञ-दीक्षा और युद्धमें देहत्याग ये इस क्षत्रिय कुलके आचार है।"

ऐसा उपदेश करनेके पश्चात् सुमित्राने लक्ष्मणसे कहा कि 'हे लक्ष्मण, तू जा, अवश्य जा' तथा उसने और भी कहा—

> रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
> अयोध्यां अटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

"हे लक्ष्मण! रामको दशरथ समझो, सीताकोही मेरे स्थानमें मानो और वनको अयोध्या जानो और सुखसे अरण्यमें जाओ।"

इस तरह सुमित्रा दोनों रानियोंके साथ समभावसे व्यवहार करती थी। तथापि वह सत्पक्षका पालनभी करती थी। इसलिये कौसल्याके साथ अन्याय किया जा रहा है यह देखकर भी अपने प्रिय पुत्र लक्ष्मणको श्रीरामके साथ वनमें जानेके लिये उसने आज्ञा दी।

जब रामचन्द्र कौसल्याके मन्दिरमें गया और अपने वनवास जानेका वृत्तान्त उसने कौसल्यासे कहा, तब सुमित्रा वहां थी, कौसल्याके शोक करनेपर उसका सुमित्राने सान्त्वन किया। इतनाही नहीं, परंतु राम वापस आनेतक कौसल्याकी सेवा शुश्रूषा भी उसीने यथोचित रीतिसे की।

दशरथका प्राणोत्क्रमण कौसल्याके मंदिरमेंही हुआ, उस समय सुमित्रा वहीं थी। इससे पता लगता है कि वह रामके वनवास-गमनसे वहीं कौसल्याकी सहायतार्थ रही थी।

श्रीरामके साथ वनमें जानेके लिये लक्ष्मणको उत्साहित करनेमें सुमित्राकी बडी दूरदर्शिता दिखाई देती है। क्योंकि लक्ष्मण स्वभावसे तीक्ष्ण

स्वभावका था और बडा क्रोधी भी था। कैकेयीके इस तरहके बर्तावके कारण लक्ष्मणका मन भरतके विषयमें बडा दूषित हुआ था और भरतपर तथा कैकेयीपर वह बडाही क्रुद्ध हुआ था। उसने कहा भी था कि—

भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते १४
(अयोध्या सर्ग २१)

"भरत, उसका हित करनेवाला अथवा उसके पक्षका जो भी होगा, उसका अथवा उन सबका मैं वध करूंगा। अब नरमीसे काम नहीं लिया जायगा।" तथा और—

अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत्।
त्वया राघव संप्राप्तं सीतया च मया तथा २१
यन्निमित्तं भवान् राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतात्।
संप्राप्तोऽयं अरिर्वीर भरतो वध्य एव हि २२
भरतस्य वधे दोषं नहि पश्यामि राघव।
पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते २३
पूर्वापकारी भरतः त्यागे धर्मश्च राघव।
एतस्मिन् निहते कृत्स्नां अनुशाधि वसुन्धराम् २४
अद्य पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राज्यकामुका।
मया पश्येत् सुदुःखार्ता हस्तिभिन्नामिव द्रुमम् २५
कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम् २६
शराणां धनुषश्चाहं अनृणोऽस्मिन् महाहवे।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ३०
(अयोध्या. सर्ग ९६)

"हे रामचन्द्र! जिस भरतके कारण आप राज्यसे भ्रष्ट हो गये हैं और आप को, सीताको और मुझको यह बडा संकट प्राप्त हुआ है, वह भरत यदि मेरे सम्मुख आयेगा, तो बडाही अच्छा होगा। यह भरत यहां अब सम्मुख

आगया है, अब यह वधके लिये योग्य है। हे राघव ! भरतका वध करनेमें तो किसी तरह दोष नहीं है। जो प्रथम अपराध करता है, उसका वध करनेमें कोई दोष नहीं है। इसलिये उसका वध करना इस समय योग्यही है। इसका वध करनेसे तुम संपूर्ण पृथ्वीका अधिपति हो जाओगे। राज्यकी अभिलाषा करनेवाली यह कैकेयी अपने पुत्रका वध होनेसे दुःखी हो जावे। इतनाही नहीं परंतु उनके बन्धु-बान्धवोंके समेत कैकेयीका भी वध मैं कर डालूंगा। यह देखो मैं आज सेनाके समेत भरतका वध करके अपने बाणोंके और धनुष्यके ऋणसे मुक्त हो जाऊंगा।"

लक्ष्मणके इस भाषणसे पता लगता है कि यदि केवल रामही अकेला वनमें चला जाता और लक्ष्मण अयोध्यामें रहता, तो लक्ष्मण क्रोधके मारे भरतादिकों वध करनेके लिये भी प्रवृत्त होता और आपमी युद्धमें अयोध्या में बडा रक्तपात हो जाता। यह देखकर दूरदृष्टिसे सुमित्राने लक्ष्मणको रामके साथ वनमें जानेके लिये आज्ञा दी और आपसी झगडा बढने नहीं दिया और राज्यके ऊपर आनेवाला बडा संकट दूर किया। साथ साथ राम और सीताकी रक्षा भी की और रामके साथ मित्रताभी संपादन की।

कैकेयी और सुमित्राकी तुलना।

कैकेयी अत्यंत स्वार्थी और सुमित्रा अत्यंत स्वार्थत्यागी थी। अपने पतिके प्राणोंकी भी पर्वा न करके अपने पुत्र भरतको राज्य प्राप्त हो, इस इच्छासे कैकेयी घोर कर्मसे पीछे नहीं हटती है, परंतु सुमित्रा राज्यका संकट दूर करने, आपसके झगडे दूर करने और श्रीरामचन्द्रकी सहायता करनेके लिये अपने पुत्रको वन भेजती है।

कैकेयी अति क्रोधी थी तो सुमित्रा अत्यंत शान्त थी।

कैकेयी और सुमित्रा दोनों पुत्रवात्सल्यवती थीं, परंतु कैकेयी स्वार्थी और सुमित्रा निःस्वार्थी थी।

कैकेयी स्वभावसे दुष्ट दीखती नहीं है, पर सारासार विचार करनेमें पूर्णतया असमर्थ दीखती है, अतः वह मन्थराके कहनेसे ऐसा घोर कर्म

करनेमें प्रवृत्त हुई। परंतु सुमित्रा गंभीर व स्वतंत्र विचार करनेवाली थी, इसलिये उसने अच्छा मार्ग निकाला और अपने पुत्रको रामके साथ वन भेज दिया।

इस तरह कैकेयी और सुमित्राके स्वभावकी तुलना है।

(३)

भरतमाता कैकेयी

कैकेयी केकय देशके अश्वपति राजाकी कन्या और दशरथकी तृतीय धर्मपत्नी थी और इसपर दशरथकी अत्यंत प्रीति थी। देवासुर-संग्राममें दशरथ राजा देवोंकी सहायतार्थ गया था, वह युद्धमें घायल होकर मूर्च्छित हुआ और उसका सारथी मारा गया, ऐसे समयमें कैकेयीने सारथ्य-कर्म किया और बडे धैर्यसे दशरथका रथ रण-क्षेत्रसे बाहर निकाला और दशरथको सुरक्षित स्थानमें पहुंचा दिया और वहां उसकी अत्यंत सेवा-शुश्रूषा करके उसको मृत्युसे बचाया। इस कारण भी दशरथ राजा कैकेयीपर अति प्रसन्न था।

इस तरह दशरथ राजाके प्राण रक्षण करनेके कारण कैकेयी रानी कौसल्या, सुमित्रा और तीन सौ पचास अन्य रानियोंके सौभाग्यका संरक्षण करनेके लिये कारण बनी थी। अर्थात् सभी रानियोंपर उसके बडे उपकारही थे, अतः वह सबसे अधिक राजाको प्रिय थी, इसमें क्या संदेह हो सकता है? इस कारण कैकेयी अन्य रानियोंका अपमान ही करती थी, परंतु मुख्य रानी कौसल्याको भी वह अपमानित करती थी। तथापि मन्थरा द्वारा कुविचारका फैलाव करनेतक कैकेयीके मनमें रामके विषयमें किसी तरह बुरा विचार उत्पन्न नहीं हुआ था। इतनाही नहीं, परंतु श्रीरामपर कैकेयी प्रेमही करती थी। इस विषयमें वाल्मीकिकाही वचन देखिये—

मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात् सा शुभानना।
उत्तस्थौ हर्षसंपूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी ३१
अतीव सा तु सन्तुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता।
दिव्यं आभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम् ३२

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा।
कैकेयी मन्थरां दृष्ट्वा पुनरेवाऽब्रवीत् इदम् ३३
इदं तु मन्थरे मह्यं आख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ३४
रामे वा भरते वाऽहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात् तुष्टास्मि यत् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ३५
न मे परं किञ्चिदितो वरं पुनः।
प्रियं प्रियार्हे सुवचो वचोऽमृतम्॥
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरम्।
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ३६
(अयोध्याकांड सर्ग ७)

" रामको दशरथ राजा यौवराज्यका अभिषेक करनेवाला है, यह वचन श्रवण करके कैकेयी अत्यंत प्रसन्न हुई और शयनसे उठकर मन्थराको अत्यंत मूल्यवान् आभूषण अर्पण करके बोली, हे मन्थरे। तूने यह अत्यंत प्रिय वृत्त मुझे इस समय कहा है। इसलिये मैं तेरा और अधिक प्रिय क्या करूं, कह। राम और भरतमें मुझे कुछ भी न्यूनाधिक प्रतीत नहीं होता है। रामके लिये कल राज्याभिषेक होगा यह सुनकर मैं अत्यंत संतुष्ट हो गयी हूं। अतः कह कि मैं तेरा और कौनसा प्रिय करूं ? "

कैकेयीका यह भाषण मन्थराको बिलकुल पसंद नहीं आया और कैकेयीकी मूर्खता देखकर उसको बहुतही बुरा लगा। तथा उसने कैकेयीसे कहा कि- ' हे कैकयी ' यदि राम राजा हुआ तो तेरा और भरतका कितना अधःपात होगा, इसका तू विचार तो कर। तू भी कौसल्याकी दासी बनकर रहेगी। भरत तो रामका दासही होगा। इत्यादि अनेक प्रकारसे उस कुब्जाने कैकेयीके मनमें विष भर दिया। तथापि कैकेयीने नहीं माना और मन्थरासे अन्तमें कहा—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवान् शुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यं अतोऽर्हति १४

भ्रातॄन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पुत्रवत् पालयिष्यति ।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् १५
भरतश्चापि रामस्य ध्रुवं वर्षशतात् परम् ।
पितृपैतामहं राज्यं अवाप्स्यति नरर्षभः १६
सा त्वं अभ्युदये प्राप्ते दह्यमानेव मन्थरे ।
भविष्यति च कल्याणे किमिदं परितप्यसे १७
यथा वै भरतो मान्यः तथा भूयोऽपि राघवः ।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु १८
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा ।
मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः १९
(अयोध्या. सर्ग ८)

कैकेयी मन्थरासे कहती है कि– "राम बडा धर्मज्ञ, गुणवान्, मनोनिग्रही, कृतज्ञ और पवित्र आचारवाला है। तथा सब भाईयोंमें ज्येष्ठ है। इसलिये वही युवराज-पदके लिये योग्य है। यदि राम राजा हुआ तो वह सब भाइयोंका और सब अन्योंका अच्छा पालन करेगा। रामका राज्याभिषेक होगा, यह सुनकर हे कुब्जे! तुझे दुःख क्यों हो रहा है? रामके पश्चात् अपना पितृपितामहसे चला आया राज्य भरतको भी प्राप्त होगा। यह तो अत्यंत शुभ समय है, ऐसे समयमें आनन्द करनेके स्थानपर तू दुःख क्यों करती है? जैसा भरत मुझे प्रिय है, वैसाही राम मुझे उससे भी अधिक प्रिय है। वह मेरा अधिक प्रिय करता है। अतः रामको राज्य प्राप्त होनेसे वह भरतको ही प्राप्त होनेके समान है। राम सब भाइयोंको समानही मानता है।"

इस भाषणसे कैकेयीका मन प्रथम कैसा शुद्ध था, इसका पता लग सकता है। कौसल्याका अपमान कैकेयी करती थी, पर रामके विषयमें उसका मन दोषयुक्त नहीं था। मन्थराने उसके मनमें जो विष भर दिया, उससे वह दोष आगे उत्पन्न हुआ। यद्यपि कैकेयी स्वभावतः बुरी नहीं थी, तथापि दूसरेके द्वारा भडकाई जानेपर भडक उठनेवाली थी। अर्थात् वह स्वयं सत्य असत्य निर्णय करनेमें असमर्थ थी।

कैकेयीके विवाहके समय राजा दशरथने कैकेयीके पिताको, कैकेयीके पुत्रको राज्य देनेका वचन दिया था। इस विषयमें श्रीरामकाही वचन देखने योग्य है—

> पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
> मातामहे समाश्रौषीत् राज्यशुल्कं अनुत्तमम् ॥ ३
>
> (अयोध्याकाण्ड, सर्ग १०७)

'हे भरत ! तेरे पिताने तेरी माताके साथ विवाह करनेके समय तेरे मातामहको ऐसा वचन दिया कि राज्य कैकेयीके पुत्रकोही दिया जायगा।'

यह रामचन्द्रका भाषण उस समयका है जिस समय भरत चित्रकूट पर्वतपर जाकर रामको वापस आनेका आग्रह कर रहा था और इसके लिये प्रायोपवेशन करनेके लिये भी सिद्ध था।

यदि यह वचन सत्य माना जाय, तो सत्यप्रतिज्ञ दशरथ राजाने भरतको राज्य न देते हुए, रामकोही राज्य देनेकी कारवाही क्यों की ? (बा. कां ६।२-५) तथा यदि इस वचनका पता श्रीरामको था, तो उसने दशरथको अपना वचन सत्य करनेकी सूचना क्यों नहीं दी ? कदाचित् ऐसा होना सम्भव है कि पुत्रने 'पिताकी आज्ञा' मान्य करनी चाहिये, अन्य बातें करनेकी पुत्रको क्या आवश्यकता है ?

मन्थराको भी इस वचनका पता नहीं था, नहीं तो कैकेयीको बहकानेके लिये इस वचनका वह अवश्यही उपयोग कर लेती। संभव है इस वचनका पता मन्थराको न हो अथवा उसी वचनको सुदृढ करनेके लिये दूसरे दो वरोंका उसने आश्रय लिया हो। तथापि मन्थराको इसका पता होता तो वह उसका उल्लेख अवश्य करती, अतः यही अनुमान हो सकता है कि उसको इस वचनका पता नहीं था।

संभव है कि विवाहके समय उसके सामने यह वचन न दिया गया हो। इससे पता चलता है कि यह वचन दशरथ और कैकेयीका पिता राजा अश्वपतिके बीचमें एकान्तमें ही दिया गया होगा और रामको उसका पता

पीछेसे किसी तरह लगा होगा। इस वचनको शपथका स्थायी स्वरूप भी प्राप्त न हुआ होगा। क्योंकि वचन एक बार बोलना और बात है और प्रतिज्ञापूर्वक उसका त्रिवार उच्चार करके शपथ करना और बात है। तथापि इस वचनका आश्रय करके राजा युधाजित्– अश्वपतिका पुत्र- युवराज भरतका पक्ष लेकर इस वचनकी पूर्ति करानेके लिये रामके राज्याभिषेकमें विघ्न उत्पन्न करनेका संभव था। इसीलिये रामका राज्याभिषेक भरतको मामाके घर रखकर ही करानेकी इच्छा दशरथने की थी।

शादी आदिके समय दिये वचन प्रतिज्ञाके स्वरूपके नहीं होते, ऐसा भी एक पक्ष है। इस विषयमें स्मृतिवचन देखिये—

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्षे तथेन्धने।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्॥
(मनु अ. ८, श्लोक ११२)

विवाहमैथुननर्मार्तसंयोगेषु अदोषं एके अनृतम्॥
(गौतम अ ६)

उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥
(वसिष्ठ स्मृ. अ. १६)

न नर्मयुक्तं वचनं हिनास्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले॥
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥
(म. भा. आ पर्व ८२-१६)

इन वचनोंके अनुसार विवाह-समय, रतिकाल, सर्व धनका अपहार होनेके समय, प्राण जानेके समय, विद्वान् ब्राह्मणका बचाव करनेके लिये असत्य बोला जाय, तो वह दोषकारी नहीं होता। इस वचनके अनुसार दशरथने अपने विवाहके समय दिया हुआ वचन उसके लिये बंधनकारी नहीं हो सकता, ऐसा कई कहते हैं।

ये सब वचन हैं। विद्वान् वाचक इनका विचार करें। अस्तु।

मन्थराने कैकेयीके मनमें स्वार्थका विष भर दिया, तब वह स्वार्थवश

होकर अन्ध बन गयी। अपने पतिकी मृत्युकी भी उसे पर्वाह न रही। ऐसी कैकेयीकी अवस्था देखकर वृद्ध मंत्री सुमंत्र बडे क्रोधसे कहने लगा कि- 'हे कैकेयी ! तू अपने स्वार्थके लिये अपने पतिका बलिदान करनेके लिये भी तैयार हो गयी है, यह तेरी माताका दुष्ट स्वभाव तेरे अन्दर उतरा है।' ऐसा कहकर कैकेयीकी माताका वर्णन उसने कहा। वह वर्णन ऐसा है-

"कैकेयीका पिता अश्वपति राजा सिद्ध पुरुषके प्रसादसे सब पशुपक्षियोंकी भाषाओंको जानता था। उस सिद्ध पुरुषने यह विद्या राजाको सिखा देनेके समय यह भी उसे कहा था कि 'यदि तू इस भाषाका मतलब किसी दूसरेसे कहेगा, तो उसी क्षण तेरी मृत्यु होगी।' एक समय एक जृम्भ नामक पक्षीका भाषण सुनकर वह राजा अश्वपति हंस पडा। कैकेयीकी माताने वह देखकर हंसनेका कारण पूछा। राजाने कहा कि 'यदि मैं यह तुम्हें बता दूं तो तत्काल मेरी मृत्यु होगी। अतः तुझे मैं यह बता देनेमें असमर्थ हूं।' उसपर वह बोली, 'चाहे तू मर जा, पर मुझे इसका आशय बता दे। अन्यथा मैं अभी मर जाऊंगी।' तब वह राजा बडा दुःखी हुआ और साधुके पास जाकर उसने साधुको सब वृत्तान्त कह सुनाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिये। तब उस सिद्ध पुरुषने कहा कि 'वह चाहे मर जाय। यदि तू जीवित रहना चाहता है, तब तो तुम्हें उचित है कि यह बात उससे न कहो।' इस तरह राजा अश्वपतिने कैकेयीकी माताका त्याग किया, जिससे उसका प्राण बचा और वह आनन्दसे रहने लगा।

सुमन्त्रने यह बात इस समय राजा दशरथको इसलिये सुनाई कि वह भी अपने बचावके लिये ऐसाही करे। वह कैकेयीका त्याग करे और अपनी जान बचावे। पर दशरथमें यह धैर्य नहीं था और रामने भी कैकेयीके वचनका स्वीकार करके वनमें जानेके लिये अपनी सिद्धता की थी। इस कारण सुमन्त्रके इस सूचनाका कोई परिणाम दशरथपर नहीं हुआ। (अयो. स. ३५ श्लो. १७-२८ देखो)

इस तरह कैकेयीकी माताका वृत्तांत भी कैकेयीके समानही तिरस्करणीय है। इसीलिये कहते हैं कि विवाहमें कुलशील देखना चाहिये।

श्रीवाल्मीकि-रामायण

अयोध्याकाण्डके उत्तरार्धका निरीक्षण

१. रावणके साम्राज्यका नाश करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषि और मुनि

रावणके आसुरी साम्राज्यका नाश करनेकी आयोजना ऋषि और मुनियोंने श्रीरामके जन्मके पूर्वही राजा दशरथके राजसूय और पुत्रकामेष्टि यज्ञमें की थी। देवजातिके नेता इसकी सहायता गुप्त रूपसे कर रहे थे, पर भारतके उस समयके ३०० राजगण इस आयोजनामें किसी तरह शामील नहीं हुए थे। इस विषयमें इस समयतक बहुत लिखा गया है। अब ऋषि मुनि इस आसुरी साम्राज्यके नाशके लिये किस तरह यत्न करते थे, यह बात यहां देखिये–

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम्।
विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः ॥ २
अन्तर्हिता मुनिगणाः स्थिताश्च परमर्षयः।
ततस्त्वृषिगणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः।
भरतं राजशार्दूलं इत्यूचुः संगता वचः ॥ ४
कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः।
ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे ॥ ५
सदानृणमिमं रामं वयमिच्छामहे पितुः।
अनृणत्वाच्च कैकेय्याः स्वर्गं दशरथो गतः ॥ ६
एतावदुक्त्वा वचनं गंधर्वाः समहर्षयः।
राजर्षयश्चैव तथा सर्वे स्वां स्वां गतिं गताः ॥ ७

(अयोध्या. सर्ग ११३)

"उन असीम तेजस्वी बन्धुओंका शरीरपर रोंवें खडे करनेवाला यह वार्तालाप श्रवणकरके वहां गुप्त रूपसे (अन्तर्हिताः मुनिगणाः)इकट्ठे हुए मुनि और ऋषिगण आश्चर्यसे गद्गद हुए। गुप्त रूपसे संचार करनेवाले वे ऋषिमुनि राम और भरतकी बहुत प्रशंसा करने लगे। रावणका आसुरी साम्राज्य नष्ट करने उस दुष्ट रावणका वध करनेकी इच्छा करनेवाले वे मुनिगण वहां इकट्ठे होकर भरतसे बोलने लगे– 'हे भरत! तुम कुलीन, ज्ञानी, सदाचारी और बडा यशस्वी हो। इस कारण तुम वैसाही आचरण करो जैसा कि श्रीरामचन्द्रजी महाराज कह रहे हैं। ऐसा करना तुम्हें योग्य है। राम कदापि पिताके ऋणमें न रहें। हम तो यही चाहते हैं। रामके वनवाससे आनेसे राजा दशरथ कैकेयीके ऋणसे मुक्त हो गये और सरल स्वर्गधामको पधारे हैं। इसलिये रामचन्द्रजी वनमेंही रहें और भरत अयोध्यामें जाकर राज्य करें।' ऐसा बोलकर वे ऋषिमुनि जैसे गुप्त मार्गसे आये थे, वैसेही गुप्त रीतिसे चले गये।

इससे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि ये ऋषिमुनि रावणके आसुरी साम्राज्यका नाश करनेकी आयोजनामें लगे थे। उस आयोजनाकी सफलताके लिये राम और लक्ष्मणका वनमें रहना आवश्यकही था। रामचन्द्र वनमें न रहते तो आगेका प्रबंध सफल होना सर्वथा असंभव था। भरतके कहनेके अनुसार यदि उस समय रामचंद्र अयोध्यामें चले जाते और वनमें न रहते, तो ऋषियोंकी आयोजना सफल न होती। इसलिये ऋषि मनसे यही चाहते कि श्रीरामचन्द्रजी वनमेंही निवास करें। रामायणका वर्णन देखनेसे ऐसा स्पष्ट मालुम होता है कि ऋषिमुनि रामचन्द्रजीकी हलचलपर अपनी दृष्टि रखते थे। जहां जहां श्रीरामचन्द्रजीके वापस अयोध्या आनेका संभव उत्पन्न होता था वहां कहींसे अचानक ऋषि आते थे और किसी न किसी युक्तिसे उनको वनमेंही रहनेकी सलाह देते थे। उसी तरह राम और भरतके संवाद होनेके समय ऋषियोंका अचानक आना और भरतको अयोध्यामें रहने तथा रामको वनमेंही रहनेकी मंत्रणा देना, यह प्रसंग अनेक प्रसंगोंमेंसे एक है।

संपूर्ण रामायणमें ऋषि-मुनियोंकी यह गुप्त हलचल देखने योग्य है।

को यथावत् जानते थे, तथापि इनमेंसे किसीने भी श्रीरामचन्द्रजीको इस समयतक इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा था, क्योंकि इस समय कहना उचित भी नहीं था।

भरद्वाज ऋषि तथा दूसरे गुप्त रूपसे संचार करनेवाले ऋषिमुनि ये सब भरतसे इतनाही कहते थे कि 'कैकेयीपर क्रोध न करो,' राम भी वैसाही कहते थे। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीको ऋषियोंकी हलचलका बिलकुल पता नहीं था, तथापि ऋषिमुनि सब उस बातको जानते थे। ये सब एकही बात कहते हैं और ऐसा भी कहते हैं कि रामके वनवाससे सब जगत्का कल्याण होगा, इसलिये इनको वह कल्याण किस परिणाममें होनेवाला है, इसका पता अवश्य ही था। श्रीरामचन्द्रजीको यद्यपि ऋषियोंके अन्दरकी बातका पता नहीं था तथापि राक्षसोंका उपद्रव कम करना चाहिये, इतना तो वे अच्छी तरह जानते ही थे।

ऋषि विश्वामित्रने जो श्रीरामचन्द्रजीको शिक्षा दी थी, उसमें राक्षसनाश करनेकी बात बीजरूपसे थी। उसके पश्चात् उसने स्वयं वनवासमें राक्षसोंका उपद्रव प्रत्यक्ष देखा था और अनेक ऋषिमुनियोंने उसे कहाभी था। संभव है कि वे ऋषि भी आयोजनाका स्वरूप जानते ही होंगे। रामचन्द्रजी अत्यंत बुद्धिमान् थे, अतः जो देखा उससे उन्होंने अवश्यही सब परिस्थिति जानही ली होगी। सब ऋषि तो रावणका नाश करनेके लिये बद्धपरिकर थेही, इस लिये श्रीरामचन्द्रजीसे ऋषिमुनियोंके जो जो वार्तालाप हुए होंगे, उन सबका एकही परिणाम श्रीरामचन्द्रजीपर होना था। यह मान लिया जायगा कि ऋषियोंने वैसी प्रकट बात नहीं की होगी, तथापि सबका संकेत एकही होगा और वह यह कि राक्षसोंके विषयमें उनके मनमें अप्रीति उत्पन्न करना। यह तो ऐसाही श्रीरामचन्द्रजीके मनमें बन चुका था।

ऋषियोंके कथन

चित्रकूटसे चलकर श्रीरामचन्द्रजी अत्रि ऋषिके आश्रमको पहुंचे। अत्रि ऋषि तथा उनकी धर्मपत्नी अनुसूयाने राम, लक्ष्मण और सीताका बड़ा

स्वागत किया और उनको कुछ समयके लिये अपने आश्रममें ठहराया। सती अनुसूयाने सीताको पुष्पमाला, वस्त्र तथा आभूषण दिये, तथा उबटना भी ऐसा दिया कि जिसके लगानेसे शरीर सतेज रह सके। साध्वी सीताने उस सबका स्वीकार किया। यह पुष्पमाला सदा ही उत्तम अवस्थामें रहनेवाली थी, वस्त्र ऐसा था कि जो कभी मलिनही न हो सके और उबटना तो शरीरका तेज बढानेवाला था।

अत्रि ऋषिकी आज्ञा लेकर जब रामचन्द्रजी आगे चलने लगे, तब यहांके सभी ऋषि रामसे बोले कि "यहां राक्षसोंका बहुत ही उपद्रव होता है, उसका निवारण करना तुम्हें योग्य है।" (अयोध्या० ११९-२०)

ऋषियोंने आगे जानेका मार्ग श्रीरामचन्द्रजीको बता दिया। तब राक्षसोंका नाश करनेका विचार करते हुए श्रीरामने उस वनमें प्रवेश किया। श्रीरामचन्द्रजीका इसके आगेका प्रयत्न राक्षसोंका नाश करनेके विषयमें ही हुआ है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इन राक्षसोंका केन्द्र कहां है, इसकी भी खोज उन्होंने की होगी। क्योंकि वालीके वधके समय रामचन्द्रजीने कहा है कि "इस वनका राज्य मुझे राजा दशरथ ने दिया है और इस वनमें जो दुष्ट हैं, उनको दण्ड देना मेरा कर्तव्य ही है। मैं यहांका राजा हूं और उस अधिकारसे मैंने तुम्हारा वध किया है अर्थात् इसी तरह अन्य दुष्टोंका भी मैं नाश करूंगा।" यहां यही सूचित हो रहा है।

रामके कारण राक्षस अधिक क्रुद्ध हुए

चित्रकूट पर्वतपर रामचन्द्रजीका निवास होनेके पूर्व और निवास होनेपर भी उस स्थानमें बहुतही तापसी रहते थे। रामचन्द्रजीका निवास वहां होनेपर तो तापसियोंकी संख्या बहुत ही बढ गयी। पर जैसा जैसा रामचन्द्रजीका निवास वहां होने लगा और उनके शौर्यवीर्यका प्रभाव राक्षसोंको मालूम होने लगा, वैसा वैसा राक्षसोंका उपद्रव अधिकाधिक होने लगा। तापसी इससे बडे दुःखी हुए। वे आपसमें इस बारेमें बोलते थे, पर रामचन्द्रजीके सम्मुख आकर बोलनेमें संकोच करते थे,

क्योंकि वह राजपुत्र थे और उनका बर्ताव भी उत्तम था। इसलिये वे तापसी उनको कैसे कह सकते थे कि 'तुम्हारे कारण यह राक्षसोंका उपद्रव हमें पूर्वकी अपेक्षा अधिक हो रहा है।' इसलिये वे आपसमें बातें करते थे, पर खुले तौरपर कोई न बोलता था। पर प्रतिदिन राक्षसोंका उपद्रव बढने लगा, इसलिये अन्तमें कई ऋषियोंने रामचन्द्रजीसे कहा—

त्वन्निमित्तमिदं तावत्तापसान्प्रतिवर्तते ।
रक्षोभ्यस्तेन संविग्नाः कथयन्ति मिथः कथाः १०
रावणावरजः कश्चित्खरो नामेह राक्षसः ।
उत्पाट्य तापसान्सर्वाञ्जनस्थाननिवासिनः ११
धृष्टश्च जितकाशी च नृशंसः पुरुषादकः ।
अवलिप्तश्च पापश्च त्वां च तात न मृष्यते १२
त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे ।
तदाप्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वन्ति तापसान् १३
प्रतिघ्नन्त्यपरान् क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान् ।
तैर्दुरातमभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिघांसवः ।
गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्य माम् १८
खरस्त्वय्यपि चायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते ।
सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते २१
सकलत्रस्य संदेहो नित्यं युक्तस्य राघव ।

(अयोध्या. सर्ग ११७)

"हे रामचन्द्रजी! तुम्हारे कारण ही ये ऐसे घोर कष्ट इन तापसियोंको राक्षसोंद्वारा दिये जा रहे हैं। इस कारण ये सब तापस गण इस चित्रकूटको छोडकर दूसरे स्थानपर जानेकी इच्छा कर रहे हैं और कई गये भी हैं। रावणका एक छोटा भाई खर इस नामवाला है, वह यहां रहता है और इन ऋषियोंको सताता है। आपका यहांका निवास उसको पसंद नहीं है। वह राक्षस निडर, क्रोधी, दुष्ट, मनुष्यभक्षक, घमंडी, पापी और भयं-

कर दे। अब ये राक्षस तापसीको देखते हैं, तब वे उसका वध करते हैं, इस लिये उनके डरसे ये तापसी दूसरे स्थानको जा रहे हैं। यह खर जब तक तुम्हारे ऊपर हमला नहीं करता तब तक तुम यहांसे दूसरे स्थानमें चले जाओ। यही तुम्हारे लिये अच्छा है। क्योंकि स्त्रियोंका साथ रहना कष्ट देनेवाला ही है। अतः चाहे तुमभी हमारे साथ चलो।"

ऐसा रामसे बोलकर बहुतसे तापसी वहांसे चले गये। पर कुछ श्रीरामचन्द्रके पास ठहरते भी थे। यहां ऋषियोंने रावणका पता रामको दिया था, खरका और रावणका संबंध भी बताया था। राक्षस भी रामचन्द्रका नाश करनेके लिये तत्पर थे और रामचन्द्र भी राक्षसोंका नाश करनेका विचार कर रहे थे।

राक्षस रामका द्वेष करते थे

रामचन्द्रजीने मारीचको घायल किया था और दूर फेंक दिया था, सुबाहुका वध भी उसीने किया था, ताटिका राक्षसीका भी रामबाणसे वध हो चुका था। इसलिये रामपर राक्षसोंका क्रोध हो चुका था और रावणतक रामका वृत्तांत पहुंच चुका था।

खर राक्षस विश्रवा ऋषिका पुत्र राकासे उत्पन्न हुआ था और यह रावणका सौतीला भाई था और शूर्पणखा रावणकी बहिन थी। (म. भा. वन०) खर राक्षस रावणका सीमा-संरक्षक सेनापति था, जिसके अधीन चौदह सहस्र राक्षसोंकी सेना सतत जागरूक थी। उसके नीचे चौदह सेनापति भी थे। इस तरह यह खर रावणके आदेशसे वहां रहता था और आर्य राजाओं और वानर राजाओंका मेल नहीं होने देता।

मारीच राक्षस सुंदसे ताटिकामें पहिला जन्मा पुत्र था। सुमालीके चार प्रधानोंमें मारीच भी एक प्रधान था। ऋषि विश्वामित्रके यज्ञके संरक्षण करनेके लिये राम लक्ष्मण गये थे, इन्होंने मारीचको घायल किया था। इसके पश्चात् वह रावणके पास ही रहने लगा था। इस तरह रामचन्द्रके प्रभावका वृत्त रावणने सुना था और रावणने भी खर राक्षससे कहा ही

होगा, कि रामचन्द्रकी हलचल पर ख्याल रख। इस तरह रामके विषयमें रावणको अच्छा पता लगा था और रावणका रामको भी।

सुबाहु भी सुंदसे ताटिकामें जन्मा पुत्र था। इसका वध विश्वामित्रके यज्ञके संरक्षण करनेके प्रसंगमें रामकेही बाणसे हो चुका था। जब यह बात रावणने सुनी तब उसने खरको आदेश दिया था कि रामका वध करना चाहिये। अर्थात् ताटिका-वधके समयसे ही रामके पराक्रमकी बातें रावण सुन रहा था और रामके रूपमें एक शक्ति राक्षसोंके विरुद्ध बढ रही है, इसको दूर करना आवश्यक है, इतनी बात रावणके ध्यानमें आ चुकी थी।

इधर श्रीरामचन्द्र वनपर अपना राज्यही है, ऐसे पितृप्राप्त अधिकारसे बर्ताव कर रहे थे, यह राक्षसोंसे सहन होना असंभवही था। अतः राक्षसों के हमले वारंवार बढने लगे थे। प्रत्यक्ष रामपर हमले अभीतक नहीं हुए थे, पर ऋषिमुनियोंपर होते थे, क्योंकि उनकीहि हलचल रावण-साम्राज्यके नाश करनेके लिये बढ रही थी। ऋषियोंपर हमले होनेका तात्पर्य ही रामचन्द्रको आह्वान देना है। रावणको रामचन्द्रजीके सामर्थ्यका पता अच्छी तरह हो चुका था। राक्षसोंपर शस्त्र चलानेका धैर्य रामचन्द्रके पूर्व समयमें किसी भी आर्य कुमारमें नहीं रहा था। रावणका नाम सुनते ही आर्यवीर भागते थे। इस नव युवकसें भागनेका नामतक न रहा, पर एकके पीछे एक राक्षसोंका वध इस युवकसे होने लगा। राक्षसोंका प्रतिकार करनेके लिये ये आर्य युवक स्थान स्थानपर खडे होते थे और इनके शस्त्रोंसे राक्षसोंका वध भी होता था। यह बात रावणने इससे पूर्व कभी नहीं देखी थी, वह उसके आंखके सामने अब होने लगी। इससे रावणने जान लिया था कि इन आर्य कुमारोंमें कुछ नयी विचार-प्रणाली शुरू हुई है, जो राक्षसोंके साम्राज्यके लिये बाधक होगी। इन आर्य युवकोंका उत्साह प्रतिदिन बढ रहा था और राम-लक्ष्मणोंने इस समय तक कई राक्षस मार दिये थे, कईयोंको घायल करके छोड दिया था। घायल करके शत्रुको छोड देनेका तात्पर्य यही दीखता है कि इस नव शक्तिका पता राक्षसोंके केन्द्र-स्थानमें शीघ्रातिशीघ्र पहुंच जाय। और इसी तरह बना भी।

अयोध्यामें राम, भरत, कैकेयी, कौसल्या आदिकोंके ज्ञातियोंके संघ प्रबल थे और वे एक दूसरेके विरुद्ध कार्वाइयां करते थे। रामचन्द्र और भरतमें वैरका लेश भी नहीं था, तथापि उनके ज्ञातियोंके संघोंमें न्यूनाधिक संघर्ष अवश्य था। राजगद्दी इसको मिले और उसको न मिले, इस बारेमें इन संघोंमें स्पर्धा थी। यह स्पर्धा ऋषि, मुनि और देवोंने बढा दी थी। क्योंकि उससे ही रामचन्द्रजीका वनवास सिद्ध होनेवाला था। वैसा ही हुआ और रामचन्द्र वनमें चले गये। भरत अन्तःकरणसे शुद्ध था, इसमें संदेह ही नहीं है, पर उसके विषयमें भी विरुद्ध विचार अयोध्यामें कैसे फैले थे, देखिये—

भरतके विषयमें कौसल्याके विचार

यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति।
जह्याद्राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते ॥११॥
(अयोध्या. ६१)

'पंदरहवें वर्ष रामचन्द्रके वनसे वापस आनेपर, भरत राज्य और कोश उनको सुखसे वापस देगा, ऐसा दीखता नहीं है।' यह कौसल्याका कथन है। इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्याके मनमें भी भरतके विषयमें कुछ न कुछ संदेह था। यद्यपि कौसल्याने ऐसा कहा और अन्योंने भी भरतके विषयमें संदेह प्रकट किया, तथापि भरतके आचरणमें ऐसा एकभी स्थान नहीं दीखता कि जिससे उक्त संदेहका समर्थन हो जाय। इससे इतनाही सिद्ध हो सकता है कि अयोध्यानगरीमें कैकेयी, कौसल्या, राम आदिकोंके अनुयायियोंके संघ थे। दशरथ राजा होनेके कारण उसका भी एक प्रबल अनुयायी-संघ था और इस समय इन पक्षोंमें बडी स्पर्धा थी, बडा संघर्ष था और ये अनुयायी लोग दूसरोंके विषयमें बुरी भली बातको फैलाते थे। इस तरह इन्होंने भरतके विषयमें भी संदेह फैलाये रखे थे। ये बातें कौसल्या तक पहुंची होंगीं और उनके कारण कौसल्याको भी वैसा संदेह प्रतीत हुआ होगा। चौदह वर्ष राज्य करनेके बाद भरतके मनमें राज्य, धन और

अधिकारका लोभ उत्पन्न होना संभव है और ऐसा लोभ उत्पन्न हुआ, तो यह भरत श्रीरामचन्द्रको राज्य वापस नहीं करेगा, ऐसी शंका मनमें उठाकर कौसल्या शोक कर रही है। अयोध्याके जनसंघोंमें कौनसे विचार कितने प्रबल हुए थे, इसका यह एक उदाहरण है।

भरद्वाज मुनिभी भरतके विषयमें संदेह प्रकट करते हैं।

भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबंधनात्।
किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ९
एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः।
भ्रात्रा सह सभार्यो यश्चिरं प्रव्राजितो वनम् ११
कच्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च १३
(अयोध्या० स. ९०)

" रामचन्द्रके विषयमें मनमें अत्यंत आदर-भाव होनेके कारण भरद्वाज ऋषि भरतसे बोलने लगे– ' हे भरत! राज्यका शासन करनेके समय ही तुम्हारे यहां वनमें आनेका कारण क्या है? तुम्हारे मनमें शुद्ध हेतु है, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। इस बारेमें मेरे मनमें बडा संदेह उत्पन्न हुआ है। रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण वनमें चली गयीं हैं। अब तुम उन निष्पापों का और कौनसा अहित करना चाहते हैं? उनको जडसे उखाड देनेका तो तुम्हारे मनमें विचार नहीं है ना? " यह भरद्वाज ऋषिका भाषण उस समय भरतके संबंधमें कैसे विचारप्रवाह फैले हुए थे, इसका द्योतक है।

भरद्वाज जैसे ऋषि भी अपने विषयमें ऐसा संदेह मनमें धारण कर रहे हैं, यह देखकर भरतको बडाही दुःख हुआ और वह बोला– "हे ऋषिवर! आप भी मेरे विषयमें ऐसा ही संदेह अपने मनमें धारण करते हैं, तब तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हुआ, इसमें क्या संदेह है? मेरी माता कैकेयीने जो किया, वह मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। मैं वनमें इसलिये जा रहा हूं कि

मैं रामचन्द्रको वापस लाकर राजगद्दीपर उनको बिठाऊंगा। मैंने ऐसा ही निश्चय किया है। " यह भरतका भाषण श्रवण करके भरद्वाज ऋषिको बडा आनन्द हुआ और पश्चात् उन्होंने भरतको प्रेमसे आशीर्वाद भी दिया।

गुहके मनमेंभी भरतके विषयमें संदेह

भरतके चतुरंग सेनाको गंगा नदीके तटपर देखकर गुह अपने अनुयायियोंसे बोला- " हे धीवरो ! यह महासागरके समान बडीभारी सेना यहां (नास्यान्तं अवगच्छामि) किस उद्देश्यसे आयी है, इसका पता मुझे नहीं लगता। यह ' कोविदारध्वज ' दीख रहा है, इससे स्पष्ट है कि (दुर्बुद्धिः भरतः स्वयं आगतः) दुष्ट बुद्धिवाला भरत ही दुष्ट भावसे यहां आया है। इसमें संदेह नहीं कि यह रामचन्द्रजीका घातपात अवश्य ही करेगा। मैं श्रीरामचन्द्रजीका मित्र हूं। (बन्धयिष्यति वधिष्यति वा) अतः यह भरत हमारा बन्धन करेगा अथवा वध भी करेगा। कदाचित् यह (रामं हन्तुं) रामचन्द्रजीका वध करनेके लिये भी आया होगा। राम मेरा मित्र है, इसलिये हे धीवरो ! उस रामका हित करनेके लिये तुम सब यहाँ तैयार और सज्य होकर रहो। (अयोध्या. स. ८४।२-८) प्रत्येक नौकामें सौ सौ तरुण कैवर्त वीरोंको तैयार रखो और ऐसी पांच सौ नौकाएं तैयार रखो। यदि भरत शुद्ध हेतुसे आया होगा, तो हम सब सहाय्य करके उसको पार कर देंगे। पर यदि उसमें कुछ कपट-भाव हो, तो उसे नदी पार होनेमें हम सहायता नहीं करेंगे। " (अयोध्या. स. ८४।९-१०) ऐसा कहकर निषाद-राज गुह भरतके पास आया और भरतसे बोला—

अब्रवीत् प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो गहन-गोचरः।
दाशास्त्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः ५
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल।
कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ६
इयं ते महती सेना शंकां जनयतीव मे।
(अयोध्या. स. ८५)

भरतने जब भरद्वाज ऋषिके आश्रमके पास पहूंचनेका मार्ग पूछा, तब अरण्यनिवासी गुह हाथ जोडकर भरतसे कहता है— "हे राजपुत्र भरत! हमारे सब धीवरोंको साथ लेकर मैं तुम्हारी सहायता करूंगा और तुम्हें नदीपार पहुंचाऊंगा। पर मुझे इस बातका पूरा पता होना चाहिये कि तुम जो इतनी बडी सेना लेकर रामके पास जानेके लिये वनमें आये हो, तो उसमें तुम्हारा उद्देश्य पापमूलक तो नहीं है? तुम्हारे साथ इतनी बडी सेना है, इसलिये मनमें संदेह उत्पन्न होता है।"

इसके पश्चात् भरतने उसे अपने आनेका उद्देश्य कहा और स्पष्ट कह दिया कि 'रामचन्द्रजीको वापस ले जाकर राजगद्दीपर बिठलाना है, इस लिये मैं सब मंत्रियों और सैनिकोंके साथ आया हूं।' जब इस तरह गुहका निश्चय हुआ, तब नदीपार जानेके लिये गुहने भरतकी संपूर्ण सहायता की।

परंतु इससे पूर्व गुहने ५००० पांच सहस्र सैनिकों द्वारा भरतका प्रतिकार करनेकी तैयारी की थी। पांच सहस्र सेना तैयार रखनेके पश्चात् ही गुह भरतके पास पहूंचा था। अयोध्याके पक्षोपपक्ष आपसमें कितनी स्पर्धा कर रहे थे और प्रतिपक्षके संबंधमें कैसी अपवार्ताएं फैलायीं गयीं थीं इसका पूर्ण पता यहां लगता है। भरद्वाज ऋषि और गुह जैसा कुलमित्र ये सब भरतके विषयमें संदेह कर रहे हैं और इनमेंसे एक भी भरतके साथ शुद्ध भावसे बोलता नहीं, यह यहां देखने योग्य है। इतना प्रतिकूल वायुमण्डल होने पर भी भरत अन्तर्बाह्य शुद्ध था, इसी लिये वह विशेष प्रशंसा योग्य है—

भरतका शुद्ध भाव

चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः।
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत् ॥ ११ ॥
कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ॥ १२ ॥
(अयोध्या. स. ८२)

'ब्रह्मचर्य पालन करके जो स्नातक हुआ है, जो बुद्धिमान् है और जो प्रयत्नपूर्वक धर्मका पालन करना चाहता है, उस रामचन्द्रका राज्य मेरे जैसा भाई किस तरह हरण करेगा ? दशरथसे उत्पन्न हुआ सुपुत्र अपने श्रीरामचन्द्र जैसे भाईके ही राज्यका कैसे हरण करेगा ? हे वसिष्ठ ऋषे ! आपको तो उचित है कि आप हमें ठीक धर्मका मार्गही कहें ।'

इस तरह वसिष्ठ ऋषिसे भरतने सबसे प्रथमही कहा था । दशरथके बीजसे उत्पन्न हुआ पुत्र कभी लोभी नहीं हो सकता, ऐसा भरत यहां कहता है। अपने कुलमें ऐसे लोभी कोई नहीं हुए, ऐसा वह यहां कह रहा है । इससे उसके अन्तःकरणकी शुद्धताका पता लगता है ।

जिस समय भरतने यह भाषण किया था, उस समय वहां कोई भी भरतके राज्य स्विकार करनेके विरुद्ध नहीं था । बाह्यतः क्यों न हो, पर सब मन्त्री इसके राज्यके स्वीकार करनेके अनुकूल ही थे । पर भरतने ही स्वेच्छासे प्राप्त हुआ राज्य लिया नहीं, इससे भरतके अन्तःकरणकी पवित्रता अधिक ही प्रकट हो रही है ।

भरतका अन्तरङ्ग

भरतका अन्तःकरण कितना शुद्ध और निष्कलंक था, यह नीचे लिखे उसके भाषणसे स्पष्ट हो सकता है-

> किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।
> विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ॥ २ ॥
> राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ।
> कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता ॥ ३ ॥
> अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैः बुद्धिबलेन वा ।
> सकामां न करिष्यामि त्वां अहं पुत्रगर्धिनीम् ॥ १७ ॥
> एव त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे ।
> निवर्तयिष्यामि वनाद्भ्रातरं स्वजनप्रियम् ॥ १६ ॥
> (अयोध्या. स. ७३)

" पिता तथा पिताके समान मेरे भाई श्रीरामचन्द्रजीका वियोग हो जानेपर मेरा सर्वस्वही विनष्ट हुआ है, इसलिये शोकाकुल हुए मेरे लिये राज्य लेकर क्या करना है ? राजाका वध करके और प्रभु रामचन्द्रजीको वापसी वनाकर तू इस हमारे कुल-वंशका नाश करनेवाली कालरात्रिहि यहां प्राप्त हुई है ! मुझे यद्यपि मंत्रियोंकी सलाहसे राज्य करनेका सामर्थ्य प्राप्त होनेकी संभावना होगी, तथापि तेरी जैसी पुत्रके लिये लोभवश होकर ऐसे घोर कर्म करनेवाली माताका दुष्ट मनोरथ मैं कदापि सफल होने नहीं दूंगा। इसलिये जो तुझे पसंद नहीं है, वही करनेके लिये मैं रामचन्द्रजीको वनसे वापस ले आऊंगा। "

इस समय भरत सहजहीसे प्राप्त हुआ राज्य छोडनेके लिये तैयार हुआ है और रामचन्द्रजीको प्रयत्नसे वनसे वापस लाकर राजगद्दीपर बिठलानेके लिये सिद्ध हुआ है। इस समय अयोध्यामें जो परिस्थिति थी, वह सर्वथा भरतके लिये प्रतिकूल थी, इसकाभी अनुभव भरतने किया ही होगा। परंतु प्रारंभसेही भरतका आचरण पूर्णतया निर्दोष दीखता है। भरत ने रामचन्द्रजीका चित्र अपने पास रखा था, तथा उस चित्रका वह परम आदर करता था। इस तरह रामभक्ति भरतके अन्तःकरणमें थी। कैकेयीके ज्ञातिबान्धवोंने जो षड्यन्त्र अयोध्यामें रचा था, उस पक्षका मत बोलनेवाली मन्थरा वहां थी, इस मंथराको ऋषि-मुनि तथा देवोंने प्रभावित किया था। यह तो स्पष्ट ही है। पर पहिलेसेही आपसमें स्पर्धा न होती, तो ऋषि-मुनियोंको भी मन्थरापर प्रभाव डालना असंभवही था।

भरत यद्यपि पितामहके घरमें था, तथापि उसका हृदय दशरथ और रामचन्द्रके साथ मिला हुआ था। इस तरह एकतानता होनेसे ही इधरके विचार उधर पहुंचते और कार्य कर दिखाते हैं। इसी तरह दशरथकी मृत्युका और इधरके शोकपूर्ण वायुमण्डलका प्रतिबिंब भरतके अन्तःकरणमें पडा और उससे जो उसके मनकी अवस्था बनी, उसीसे उसको वह घोर स्वप्न आया था, जिसका वर्णन इस तरह किया गया है—

भरतका घोर स्वप्न

राजा दशरथकी मृत्यु अयोध्यामें हुई, जिसकी खबर दूतोंद्वारा भरतको पहुंचाई गई। उसी समय भरत अपने स्वप्नका विचार करके बडा दुःखी हुआ था। अर्थात् अयोध्याके दुःखी अन्तःकरणोंका प्रभाव भरतके कोमल अन्तःकरणपर हो चुका था। भरतको रात्रिके समय जो स्वप्न आया था, वह इस प्रकार था—

'समुद्र सूख गया, चांद भूमिपर गिर पडा, पृथ्वीपर बडा अन्धेरा छाया है, राजा दशरथ जिस हाथीपर सवार होता था, उस हाथीके दांत टूटकर टुकडे टुकडे होकर इतस्ततः गिर पडे हैं, भूमिके दो भाग हो गये है, लोहेके आसनपर राजा बैठ गया है, लाल फूलोंकी मालाएँ उसके गलेमें है, शरीरपर लाल चन्दन लगा है, गधोंके रथमें बैठकर राजा दक्षिण दिशामें जा रहा है, भयानक मूँहवाली राक्षसी राजाको खींचकर ले जा रही है।'

ऐसा यह भयानक स्वप्न भरतने रात्रिमें देखा था। यह स्वप्न अशुभ-सूचक है, ऐसा उसके मनमें विचार उठा था, जिससे वह बडा दुःखी हुआ था। भरत इस स्वप्नके संबंधमें अपने मित्रोंके साथ बातचीत कर रहा था, इतनेमें अयोध्यासे रवाना हुए दूत वहां पहुंचे और उन्होंने बुलानेका संदेशा भरतको दिया।

किसीकी मृत्यु होनेपर ऐसे भयानक स्वप्न सहृदय संबंधियोंको आते ही हैं। ये स्वप्न सबको नहीं आते, पर उनकोही आते हैं कि जो प्रेमसे भरे रहते हैं। इस स्वप्नसे भरतके शुद्ध अन्तःकरणका पता लग सकता है।

भरतका प्रायोपवेशन

वसिष्ठ ऋषिने रामचन्द्रजीसे कहा कि 'हे राम ! मैं तो तुम्हारा गुरु हूं। तथा मैं तुम्हारे पिताका भी गुरु हूं। इसलिये मेरी आज्ञा है, इसलिये तुम इस राज्यका स्वीकार करो। इससे सत्य मार्गका उल्लंघन होनेका पाप तुम्हें नहीं लगेगा।' (अयोध्या. स. १११।१-८)

इसपर श्रीरामचन्द्रजीने जो उत्तर दिया वह यह है- 'मातापिता अपने

बालबच्चोंपर जो उपकार करते हैं, उनका बदला उनको कभी नहीं दिया जा सकता। पुत्रको जो चाहिये वह वे देते हैं, उसको सुलाते हैं, उसके शरीर को तेल लगाते हैं, मीठा भाषण करते हैं, हंसी खेल करते हैं, इस प्रकार मातापिता बच्चोंकी पालना करते हैं। इन उपकारोंके बदले पुत्रोंसे प्रत्युपकार किसी तरह हो नहीं सकता। इसलिये मेरे जनक पिताने जो आज्ञा मुझे की है, उसका पालन मुझे करना अत्यावश्यक ही है, उसमें किसी तरह अन्यथा नहीं हो सकता।" (अयोध्या. ११२।८-११)

इस तरह श्रीरामचन्द्रका निश्चययुक्त भाषण सुनकर भरतने उसी पर्णशालाके द्वारमें बैठकर उपवास करते हुए मर जानेका निश्चय किया और इस सत्याग्रहसे रामचन्द्रजीको अपने अनुकूल बनानेका अन्तिम यत्न उसने किया। भरतने ऐसा निश्चय किया, पर वैसा बननेवाला न था। कारण यह था कि रामचन्द्रजी इस समय राक्षसोंका संपूर्ण नाश करके दण्डकारण्य को राक्षसोंसे मुक्त करनेकी आयोजना सिद्ध करनेका विचार कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीकी महत्वाकांक्षा इस समय बढ रही थी। राज्यके मोहमें अटक कर इस कार्यको दूर करना अब उनके लिये असंभवसा ही था।

श्रीरामचन्द्रकी प्रतिज्ञा

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञां अहं पितुः॥
(अयोध्या. स. ११२।१८)

'चन्द्रमाका तेज उससे कदाचित् दूर होगा, हिमालय हिमसे रहित भी होगा, समुद्र अपनी वेलाका अतिक्रमण भी कदाचित् करेगा, पर मैं पिताकी आज्ञाका कदापि उल्लंघन नहीं करूंगा।'

रामचन्द्रजीकी यह कठोर प्रतिज्ञा है। इनकी प्रतिज्ञा सदा अटलही होती थी। वनवासकी प्रथम रात्रिमें श्रीरामचन्द्रको बहुतही दुःख हुआ था, यह सत्य है, पर उनका संबंध ऋषिमुनियोंसे होनेके अनंतर उनके सामने कर्तव्यका एक महाक्षेत्र ही खुला हुआ, तब पुरुषार्थी और कर्तव्यतत्पर

रामचन्द्रजीको राज्य-वैभव तुच्छ प्रतीत हुआ और उस कर्तव्यको निभाना ही उनको अपने जीवनका सर्वस्व प्रतीत हुआ। अपने स्वकीय पराक्रमसे राक्षसोंका समूल नाश करके दण्डकारण्यको सुरक्षित तपोवन बनाना, यह कार्य राज्य-शासनसे कई गुणा महत्त्वका है। यह बडा दैवकार्य था और ऋषि-मुनियोंकी सेवा भी इसीसे होनेवाली थी। इसलिये रामचन्द्रजीकोभी राजगद्दीपर बैठनेसे यह अधिक श्रेष्ठ कर्तव्य था, ऐसा उनको प्रतीत हुआ।

पिताका वचन

उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् २७
विक्रीतं आहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवता मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा २८
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः।
युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् २९
(अयोध्या. स. ११२)

" पिता जीवित थे, उस समय उन्होंने जो कुछ किसीको बेचा हो, जो कुछ धरोहर रखा हो, अथवा जो मोल लिया हो, वह मुझे अथवा भरत को बदल देना असंभव है। कैकेयीने जो कहा, वह योग्य ही था और पिताजीने जो आज्ञा की, वह भी योग्य ही थी। "

इसलिये हमें उचित है कि हम दोनों भाई अपने पिताजीको असत्य प्रतिज्ञासे मुक्त करें। पिताको सत्य-प्रतिज्ञ करनेसेही हम अपने जानपद-विषयक अपने कर्तव्यको अच्छी तरह निभा सकते हैं। यह जानपदविषयक कर्तव्यकी बात इस समय रामचन्द्रजीके मनमें प्रमुख स्थान रखती थी। इसलिये यह इसके बाद किसी भी प्रलोभनमें फंस जाने की संभावना नहीं थी। इस समय इस तरह रामचन्द्रजी अपनी प्रतिज्ञापरही स्थिर रहते हैं, इसका कारण यह है।

लक्ष्मणका क्रोध

जब लक्ष्मणने सालवृक्षपर चढकर भरत अपनी बडी सेनाके साथ आ रहा

है ऐसा देख लिया, तब उसका क्रोध बेहद बढ गया और वह रामसे कहने लगा—

"हे रामचन्द्रजी! इस भरतके कारणही आप राज्यसे भ्रष्ट हुए हैं, वही हमारा शत्रु भरत आज हमारी ओर पहले आ रहा है। इस समय इस का वध करनाही योग्य है। इसके वध करनेमें कोई भी दोष नहीं है। प्रथम उसीने हमारा अपकार किया है, अतः उसका वध करना धर्मके अनुकूलही है। ... उनके अनुयायियोंके साथ कैकेयीकाभी वध मैं करूंगा। आजही यह पृथ्वी इन पापी लोगोंसे विमुक्त हो जावे।" (अयोध्या स. ९७)

रामने लक्ष्मणका यह भाषण सुना और उसका क्रोध शान्त करनेके लिये उसको सुयोग्य बोध किया। वह लक्ष्मणसे बोले—

"इस तरह वध करके जो भोग मिलेंगे, उनको मैं विषके समान ही त्याज्य समझता हूं। अधर्मसे प्राप्त होनेवाला राज्य मुझे नहीं चाहिये। भरत जो आ रहा है वह मुझे ले जाने और राज्यपद मुझे (राज्यं मे दातुं) वापस देनेके लिये आ रहा है। भरतने कभी तेरा या मेरा कोई अहित किया तो नहीं? फिर उसके आनेसे डरनेका क्या भला प्रयोजन है? इस लिये तू भरतके साथ कठोर भाषण न करना।" (अयोध्या. स. ९८)

इस तरह भाषण करके श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणका क्रोध दूर किया और भरतके साथ प्रेम-भावसे मिलनेके लिये रामचन्द्रजी तैयार हुए। अस्तु, इस लक्ष्मणके भाषणसे इस बातका अवश्य पता लगता है कि भरतके विषयमें कहांतक अविश्वास लक्ष्मण जैसे राजपुत्रोंमें फैला था।

"दूसरेके द्वारा भोगा हुआ राज्य राम नहीं लेगा"

राणी कौसल्या रामचंद्रके वनवासके विषयमें शोक करती हुई कहती है—

(१) जिस तरह अपने बान्धवोंको पहिले भोजन दिया गया और श्रेष्ठ

ब्राह्मणोंको पीछेसे भोजन करने बिठलाया, तो वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पसंद नहीं करते। (अयोध्या. ६१।१२-१३)

(२) जिस तरह सींगोंको उखाड देना बैलोंको पसंद नहीं होता। (अयोध्या. स. ६१-१४)

(३) जिस तरह दूसरेने वध किये पशुका मांस वाघ नहीं खाता। (अयोध्या. स. ६१।१५-१६)

(४) जिस तरह हविर्द्रव्य, घी, पुरोडाश, दर्भ, खादिर वृक्षका यूप एकवार यज्ञमें बर्तने पर पुनः बर्ते नहीं जाते। (अयोध्या. स. ६१।१७)

इसी तरह भरतके द्वारा उपभोग किया हुआ राज्य मेरा राम कभी नहीं स्वीकार करेगा—

तथा ह्यात्तमिदं राज्यं०। नाभिमन्तुमलं रामो० १८ ७।८

(अयोध्या. स. ६१।१८)

यहां राणी कौसल्या ऐसा कहती है कि छोटे भाईके द्वारा प्रथम भोगा गया राज्य बडा भाई किस तरह उपभोगेगा? वस्तुतः राज्यके संबंधमें ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। पर स्त्रियोंमें ऐसे भाव होना संभव है। कौसल्याका मन कैकेयीके विषयमें अत्यंत संत्रस्त होनेके कारण कौसल्याके मुखसे ऐसे शब्द प्रकट हो रहे हैं।

शत्रुघ्नका मत

स रामः सत्त्वसंपन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम् २
बलवान् वीर्यसंपन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वाऽपि पितृनिग्रहम् ३
पूर्वमेव तु निग्राह्यः समवेक्ष्य नयानयौ।
उत्पथं यः समारूढो नार्या राजा वशं गतः ४

(अयोध्या. स. ७८)

" इतना बलवान् राम, पर एक स्त्रीने उसे वनमें भेज दिया! उसका भाई लक्ष्मण भी बडा बलवान् था, उसने पिताको बंधनमें रखकर रामको मुक्त

करना योग्य था। न्याय अथवा अन्यायका विचार न करते हुए एक स्त्रीके अधीन होकर ऐसा अन्याय करनेवाले राजाको उसने अवश्य बंधनमें रखना चाहिये था। "

शत्रुघ्न भी लक्ष्मणके समान ही यहां बोल रहा है। सुमित्राके दोनों पुत्र समानही विचारके दीख रहे हैं।

मंत्रियोंसे पूछातक नहीं

रामचन्द्र जैसे लोकप्रिय राजपुत्रको वनवासमें भेजनेके पूर्व राजा दशरथ ने अपने मंत्रियों तथा वृद्धोंसे मंत्रणाभी नहीं की थी। देखिये—

कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभावया।
मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम् १७
न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा न नैगमैः।
मयायमर्थः संमोहात् स्त्रीहेतोः सहसा कृतः १९
भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत्।
कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया २०
(अयोध्या. सर्ग ५९)

राजा दशरथने वहां उपस्थित सूतसे कहा– "दुष्ट कुलमें तथा दुष्ट लोगोंमें उत्पन्न हुई कैकेयीने रामचन्द्रको वनमें भेजनेके लिये प्रेरणा की, परंतु मैंने इसका विचार अपने मंत्रियों, इष्ट-मित्रों और विद्वानोंसे करना चाहिये था, वह मैंने नहीं किया। स्त्रीके कारण यह बडा अनर्थ मुझसे बन चुका है। इसका परिणाम अब निःसंदेह कुलका नाश होनेमें होगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं है। "

राजा दशरथ जैसे धर्मात्मा राजाने इतने बडे विवादास्पद विषयका विचार अवश्यही अपने मन्त्रियोंके साथ करना चाहिये था। एक स्त्रीने कहा और राजाने श्रीरामचन्द्रजीको एकदम वनमें भेजा और नगरसे बाहर कर दिया, यह ठीक नहीं हुआ। रामचन्द्रको यौवराज्यका अभिषेक करनेका निश्चय लोक-सभाने किया था, इसलिये उसी रामचन्द्रको नगरसे

बाहर निकालने और वनमें भेजनेके विषयमें तो अवश्यही उन लोक-सभाके सदस्योंसे परामर्श करना चाहिये था। पर दशरथने यहां जनमत की पर्वाह नहीं की, यह उचित नहीं हुआ।

राजपुत्रको राजगद्दीपर बिठलानेके लिये इस समय जनताके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी पडती थी। इस समय ऐसी ही प्रथा थी। यह परिपाटी उत्तम है, इसमें संदेह नहीं है। इससे राजपुत्रकोभी अपना आचार-व्यवहार लोकप्रिय होने योग्य उत्तम रखना पडता था, जिससे राजपुत्रोंका सुधार ही होता था। जन्मके कारण राज्य नहीं मिलेगा, परंतु जनताकी अनुमतिसे ही राज्य मिलेगा, ऐसा होना अत्यंत आवश्यक है। जनताकी संमतिकी अपेक्षा राजपुत्रकी पसंदगीके लिये होनेसे इस पद्धति का दबाव राजपुत्रपर रह सकता है, जिससे उसका सुधार होना संभव है। इस पद्धतिके अनुसार राजा दशरथने जनताके मुख्य प्रतिनिधियों की एक सभा बुलायी थी और उस सभाने श्री रामचन्द्रजीको यौवराज्यपर बिठलानेके लिये अपनी संमति भी दी थी। सब राजमन्त्री भी वहां थे, उन्होंने भी अपनी अनुकूल संमति प्रदत्त की थी, जनताके प्रतिनिधियोंकी संमति तो अनुकूल थी हि। ऐसे जनसंमतिसे नियुक्त हुए राजपुत्रको एक पत्नीके आग्रहके कारण वनवासमें भेजना और किसी योग्य कारणके बिना नगरसे बाहर करना कदापि योग्य नहीं था। ऐसे समयमें राजाने अपने सब मंत्रियों और जनताके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी चाहिये थी। जनताकी संमति मिलनेके कारण रामचन्द्रजी जनताके चुने थे, उसपर केवल पिताकाही अधिकार नहीं रहा था। ऐसा होनेपर भी राजाने एकदम रामचंद्रजीको वनमें भेज दिया, यह राज्यशास्त्रके नियमोंके अनुकूल नहीं हुआ। सब जनताने इसीलिये उस दिन राजा दशरथका निषेध और धिक्कार किया था। केवल निषेध करकेही जनता चुप नहीं रही, परंतु श्रीरामचन्द्रके साथ सब लोग वनमें गये और अयोध्या उस दिन जनशून्यसी ही हो चुकी थी। जनताके द्वारा इतनाही हो सकता था, वह जनताने उत्तम रीतिसे किया।

१. योग्य समयमें प्रतिदिन यज्ञशालामें जाकर होमहवनकी, और ध्यान देना,

२. राजाकी योग्य रीतिसे सेवा करो और दक्षतासे रहो,

३. मेरी अन्य माताओंके साथ अहंकार छोडकर शान्तियुक्त मनके साथ व्यवहार कर,

४ कैकेयी माताकी इच्छाके अनुसार राजा चलता है, इसलिये उसके साथ कभी विरोध न कर,

५ कुमार भरतके साथ राजाके साथ बर्तनेके समानही बडे आदरके साथ वर्ताव करो, क्योंकि आयुसे छोटे भी क्यों न हो, राजा पूजनीयही होता है, यह राजधर्मका तत्त्व है, इसका अवश्य स्मरण रखो,

६. कुमार भरतको मेरा यह संदेश कहो कि तू सब माताओंके साथ यथान्याय वर्ताव करो। यौवराज्यपर आरूढ होनेके पश्चात् भी वृद्ध राजाकी आज्ञाका यथायोग्य पालन करो, राजासे कभी विरोध न करो।

इस संदेशमें श्रीरामचन्द्रने दशरथ राजाका वर्णन 'कैकेयीके मतानुसार वर्तनेवाला' ऐसा किया है, यह वर्णन उसके अन्तःकरणके आन्तरिक भावोंका सूचक है। तथा युवराजके स्थानपर कार्य करनेवाला आयुसे छोटा हुआ तो भी सन्मान देने योग्य है, ऐसा जो कहा है तथा भरतके साथ भी राजाके समान आदर-भावसे बर्ताव कर, ऐसा जो अपनी मातासे कहा है, वह भी श्रीरामचन्द्रके आन्तरिक भावोंका सूचक है।

श्रीरामचन्द्रजी अपनी माताको (अ-प्रमादं) प्रमाद न करते हुए सावध रहनेकी सूचना कर रहे हैं। राजमहलमें उस समय बडी विकट समस्या बनी थी, यह इससे स्पष्ट दीख रहा है। राजा मृत्युके वश होगा अथवा निर्बल होगा, कैकेयीका महत्त्व बढ जायगा, इस कारण कौसल्याको बडा दुःख सहना पडेगा, यह जानकर ही श्रीरामचन्द्रजी ऐसा संदेश अपनी माताको भेज रहे हैं। अभिमान छोडकर, नम्रतासे बर्ताव करनेकी बात इस संदेशमें है। इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्याकी परिस्थिति बडी शोचनीयसी हो चुकी थी। वास्तवमें देखा जाय तो सम्राट्की पट्टाभिषिक्त

महारानी कौसल्या थीं, परंतु कैकेयीके अधीन राज्यके सब सूत्र आनेके समान ही व्यवस्था बनी थी। इसलिये वह बडी घमण्ड करने लगी थी। राजा दशरथ तो उसके अधीनसा बन गया था, इस कारण कौसल्या बडीही दुःखी बन चुकी थी। यह सब परिस्थिति इस रामचन्द्रके संदेशमें स्पष्ट दिखाई दे रही है।

भरत आयुसे छोटा हुआ तो भी राजाके समान सन्मान के योग्य है, क्योंकि आयुसे छोटा भी राजा क्यों न हो, वह सन्मानके योग्य है, ऐसा रामचन्द्रजी कह रहे हैं, वह राजाकी अमर्याद सत्ताका द्योतक है। राजाका थोडासा भी अपमान हो जाय तो वह अपमानकर्ताका नाश करता है, इसीलिये श्रीराम अपनी मातासे कह रहे हैं कि भरत अब कुमार नहीं रहा, वह राजा हो चुका है, यह जानकर उसका सुयोग्य संमान करो और उसके साथ नम्रताका व्यवहार करो। राजाओंकी घातक शक्ति कितनी थी, इसका परिचय इस संदेशमें मिलता है। भरत इस नियमका अपवाद सिद्ध हुआ, यह बात और है। तथापि परिस्थिति कैसी थी, इसका पता यहां लगता है।

भरतके विषयमें रामचन्द्रके मनमें किस तरहके विचार आते थे यह बात यहाँ स्पष्ट हो गयी है। रामचन्द्रजी और भरतका संबंध १०।१२ वर्ष नहीं था, क्योंकि भरत मातामहके घरमें १२ वर्ष था। तथापि रामचन्द्रजी को भरतकी माता कैकेयी और उसके ज्ञातिबांधव कैसा बर्ताव करते थे उसका पता था, इस लिये उसको भरतके विषयमें भी संदेह हुआ तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

दशरथ कैकेयीसे डरता था

देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम्॥

(अयो. स. ५७।३१)

कौसल्या राजा दशरथसे बोली कि– 'हे राजन्! आप जिसके भयसे

नहीं मिलता है, ऐसा भाव है, क्योंकि राजा सर्वथा कैकेयीके महलमें रहता था, उसके कहनेके अनुसार करता था, इसलिये पतिका जो आश्रय पत्नीको मिल सकता है, वह मुझे नहीं मिल रहा है। अर्थात् मैं निराधार हूं, ऐसा कौसल्या कहती है। इसका परिणाम आज ऐसा बना है—

हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ॥
(अयोध्या स. ६१।२६)

'हे राजन्! राष्ट्रका, राज्यका, सब प्रजाओंका और हम सबका विनाश हो चुका है। केवल (तुम्हारी प्रिय) पत्नी (कैकेयी और उसका) पुत्र (भरत) इनकोही आनन्द हो रहा है।'

इस स्थानपर दशरथको (तव भार्या) तेरी पत्नी और (तव सुतः) तेरा लडका ये शब्द क्रमशः कैकेयी और भरतके लिये कौसल्याने प्रयुक्त किये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्याके मनमें कितना जलन हो रहा था। पर यह सब पुत्रवियोगके असह्य शोकावेगके कारण हुआ था, इसमें संदेह नहीं है।

स्त्रीके आश्रय

स्त्री परतंत्र है। उसके लिये तीन आश्रयस्थान हो सकते हैं—

पतिरेका गतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजन् चतुर्थी नैव विद्यते ॥ २४
(अयोध्या. स. ६१)

'स्त्रीका पहिला आश्रय पति है, दूसरा आश्रयस्थान पुत्र है, तीसरा आश्रयस्थान ज्ञातिबांधव हैं, स्त्रीके लिये चौथा आश्रय नहीं है।'

स्त्री पूर्णतासे स्वतंत्र है, ऐसा उस समय कोई मानते नहीं थे। कौसल्या के लिये पतिका आश्रय नहीं था, वनमें जानेके कारण पुत्रका भी आश्रय नहीं रहा था, ऐसी शोकमय अवस्थामें वह इस समय पडी थी, इसलिये हताश होकर वह ऐसा बोल रही है। स्त्री कितनी भी शान्त क्यों न हो, वह ऐसी भयानक परिस्थितिमें ऐसीही हताश होना स्वाभाविक है।

नगरसे बहिष्कृत करनेके कारण

[illegible]

१ [illegible] (७७) [illegible]

२ ब्राह्मणघ्नं हन्ते। (७३)= [illegible]

३ परदारान् अभिनन्दते। (७५)= परस्त्रीपर बुरी दृष्टि रखनेसे।

इस प्रकार भरतने [illegible] स्वतंत्र करनेको [illegible] करनेके कारण [illegible] कारागार और नगरसे बहिष्कृत करनेके दण्ड दिये जा रहे हैं। इससे कल्पना तक भरतके मनमें नहीं थी। इसलिये भरत समझता है कि पापका आचरण करनेके कारणही नगरसे बहिष्कार होना संभव है।

कुछ पापोंकी गणना

रामचन्द्रजीको वनमें भेजनेके कार्यके साथ मेरा कोई संबंध नहीं है, जिसका संबंध होगा उसको ये पातक लगेंगे, ऐसा भरतने कहा। भरतके इस भाषणमें जो पापोंकी गणना की गयी है, उसमें ये पाप संमिलित हैं। (सर्ग ७५)

१ पापीयसां प्रैष्यं (२१)- पापी लोगोंकी सेवा करना.

२ सूर्यं प्रति मेहतु (२१)- सूर्यके सामने मुख करके मूत्र करना.

३ कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यं अनर्थकम् । (२१)- बहुत काम करवाकर मालिकका मजूरको कम वेतन देना अथवा बिलकुल वेतन न देना,

४ हन्तुं पादेन सुप्तां गां- सोयी गायको लाथ मारना,

५ परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् । ततस्तु द्रुह्यतां

ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियाः।
रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः २६
(अयोध्या. स. ६५)

'हे पापिनी कुलघातकी कैकेयी! हे मेरे शत्रुरूपिणि! ऐसे शब्द उच्चार करता हुआ, रोने पीटने चिल्लाने और शोक करनेकी अवस्थामें राजा दशरथ कौसल्या तथा सुमित्राके समीपवर्ती स्थानमें मृत्युके वश हो गया। इस समय कौसल्या और सुमित्रा अतिशोकके कारण निद्रित हो गयी थीं, इस कारण दशरथके प्राण चले गये हैं, इसका उनको भी पता नहीं लगा था। अन्तःपुरकी स्त्रियोंने राजा मर चुका है ऐसा मालूम होतेही रोने पीटनेके लिये प्रारंभ किया, तब उस आक्रोशके शब्दसे कौसल्या और सुमित्राको जाग आयी, तब उनको पता लगा कि राजा गतप्राण हुआ है। यह समझतेही 'हे नाथ!' ऐसा चिल्लाते हुए शोक करके मूर्च्छासे भूमिपर गिर गयीं। इसके पश्चात् कैकेयी और अन्य राणियां वहां आगयीं और वे सब भी अत्यंत शोक करने लगीं।'

राजा दशरथ सार्वभौम सम्राट् था। परंतु उसकी मृत्युके समय अर्थात् प्राण जानेके समय उसके पास देखनेके लिये भी कोई जागता हुआ आदमी वहां नहीं था। कौसल्या और सुमित्रा पतिसेवामें तत्पर थीं, पर राजाका मृत्यु मध्यरात्रिके समय हुआ, उस समय शोकातिरेकसे आयी थकावटके कारण वे निद्रित थीं। दशरथके प्राण चले जानेके पूर्व कौसल्या और सुमित्रा जो सो गयीं वे सबेरे जाग उठीं अर्थात् राजाका प्रेत प्रायः ४-६ घण्टे वैसाही वहां पडा रहा। कोई देखनेके लिये भी वहां न था।

कैकेयी तो मृत्युके समय वहां थीही नहीं। सब अन्तःपुरवासिनी स्त्रियों का शोकका आक्रोश सुनकर वह वहां आगयी। तबतक कैकेयी अपनेही महलमें सोती रही थी। उसने इन पांच या छः दिनोंमें राजाकी खबर भी नहीं ली थी।

राजाका सिर

कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधं शोककर्शिता।
उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्यभाषत १ (अयोध्या.स. ६६)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] —

> ब्रह्महत्याकृतं पापं हृदयादपनीयताम्। [illegible]
> न द्विजातिरहं राजन् मा भूत्ते मनसो व्यथा।
> शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो [illegible] [illegible]
>
> [illegible]

'मैंने वधके दुःखं ब्रह्महत्याका [illegible] ब्राह्मण होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है मैं शूद्रा स्त्रीके पेटसे वैश्यसे उत्पन्न हुआ हूं। मैं द्विजाति नहीं हूं, मैं ब्राह्मण नहीं हूं।'

जिस समयका यह इतिहास है उस समय ब्राह्मणका वध बड़ा पाप और तापदायक है, ऐसा समझा जाता था। इसलिये ब्राह्मणका वध होनेसे ब्राह्मणकी हत्या हुई, ऐसा माननेका कारण नहीं, ऐसा [illegible] दशरथको समझा दिया। क्यों कि यह शूद्रीका पुत्र था और वैश्यसे उत्पन्न हुआ था। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय ब्राह्मण जातिके लिये परम आदर था। उस समय ब्राह्मणत्व जन्मसिद्ध माना जाता था। जातिसे ब्राह्मण्य माननेके समयही ऐसी कल्पना हो सकती है। यदि गुणकर्मसे ब्राह्मण्य होता, तो वह मुनिपुत्र तो होही चुका थी। पर गुण कर्मसे ब्राह्मण्य माननेका यह समय नहीं था। तथा गुणकर्मोंकी परीक्षा करना और ब्राह्मण्यका निश्चय करना, यह एक [illegible] कार्य है।

मुनिका शाप

एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ५४
अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ५५
त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति।
जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणाम् ५६
(अयोध्या. स. ६४)

'हे राजन्! तेरी भी मृत्यु इसी तरह पुत्रके शोकसेही होगी। तुमने यह वध न जानते हुए किया है, इसलिये तुम्हें ब्रह्महत्याका पातक नहीं लगेगा। पर जैसी हमारी मृत्यु पुत्रशोकसे हो रही है, वैसीही तुम्हारी भी मृत्यु पुत्रशोकसेही होगी।'

किसीको निष्कारण बहुत दुःख हुआ, तो वह जो शापवाणी बोलता है, वैसा ही बनता है। ऐसा ही यहां हुआ।

छोटी आयुमें किया पाप

कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम् ११
एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम्।
देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् १३
(अयोध्या. स. ६३)

'हे कौसल्ये! तुम्हारे साथ मेरा विवाह भी नहीं हुआ था, मैं कुमार अवस्थामें था, तब मैं शब्दवेध करनेमें प्रवीण था। उस युवराज अवस्थामेंही यह पाप मुझसे हुआ था।'

यह पाप श्रावणका वध ही है। श्रावण अपने अन्धे और वृद्ध माता-पिताओंके लिये जल लानेके लिये नदीपर गया था। वहां वह कमण्डलुमें पानी भर रहा था, उस जलमें कमण्डलु डुबानेका जो शब्द हुआ, उसे दशरथने सुना। दशरथको वह शब्द हाथीके पानी पीने जैसा प्रतीत हुआ। हाथी समझकर राजाने बाण चलाया, वह बाण श्रावणके मर्मपर लगा,

उस कारण वह मरा। तब श्रावणके मातापिताओंने राजाको ऐसा शाप दिया कि 'हे राजन्! तू भी हमारे जैसाही पुत्रशोकसे मरेगा।'

इस पूर्व-वृत्तका स्मरण राजाको इस समय हुआ और वह इस समय बोल रहा है कि 'इस पूर्व समयमें किये पापका फल आज मुझे मिल रहा है।'

जिस समय श्रावणका वध हुआ, उस समय दशरथ कुमार था, युवराज था। उसका विवाह भी नहीं हुआ था। इस कारण दशरथको इस शापसे आनन्द हुआ, ऐसा जो कई ग्रंथोंमें लिखा है, वह अशुद्ध है, ऐसा दीखता है। विवाहके पूर्वका यह अपराध है, उस समय राजाको पुत्र न होनेका दुःख होना संभवही नहीं है। अर्थात् पुत्रशोकसे मृत्यु होनेका शाप सुननेसे, पहिले पुत्र होगा, पश्चात् उसका शोक होगा, ऐसा मानकर पुत्रहीन राजाको यह शाप सुखकारक लगा, ऐसा जो कहते हैं, वह सब कल्पना मात्र है, इसमें सचाई नहीं है, यह यहां स्पष्ट हुआ है।

वानप्रस्थी व्रतीका वध

वानप्रस्थाश्रममें रहनेवाले व्रतीका वध करनेसे राजाका नाश होता है, ऐसा श्रावणका पिता कहता है—

> क्षत्रियेण वधो राजन् वानप्रस्थे विशेषतः।
> ज्ञानपूर्वं कृतः स्थानाच्च्यावयेदपि वज्रिणम् ॥ १३
> सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति।
> ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि ॥ १४
> अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे।
>
> (अयोध्याकांड सर्ग ६४)

'यदि क्षत्रियने जानबूझकर वानप्रस्थी मुनीका वध किया तो वह राजा अपने स्थानसे पदच्युत होगा, उसके सिरके टुकडे टुकडे हो जायंगे। तुमने यह वध न जानते हुए किया है, इसलिये जी रहे हो।'

ऐसा श्रावणके पिताका वचन है। मुनिका वध हुआ, तो राजाको इतना

बड़ा भय प्राप्त होता है। इससे उस समय राजाकी शक्ति कम थी और ऋषि मुनि व्रतीकी संघटना अच्छी थी, यही निश्चित होता है।

अराजक राष्ट्र

राष्ट्रमें अराजकता नहीं होनी चाहिये, क्योंकि अराजक अवस्था राष्ट्रकी हानि करती है। इस विषयमें इस रामायणके अयोध्या-काण्डके ६७ वें अध्यायके विधान विशेष ध्यानसे देखने योग्य हैं। उनमेंसे कुछ नमूनेके लिये देखिये—

१ अराजक राष्ट्रका नाश होता है। (८)

२. राष्ट्रमें अराजकता हुई तो कोई भी थोडासा भी धान भूमिमें बोना नहीं चाहता। इससे किसीको खानेके लिये अन्न नहीं मिलता। (१०)

३. अराजकता होनेपर न पुत्र पिताकी आज्ञामें रहता है तथा स्त्री पतिकी आज्ञामें रहती है। अराजकतामें किसीका धन सुरक्षित नहीं रहता। (११)

४. अराजक देशमें व्यापारधंधा ठीक नहीं चलता। (१३)

५ अराजक देशमें परिषदें नहीं होती, रमणीय उद्यान नहीं होते, तथा यज्ञ-याग भी नहीं होते। (१४)

६. अराजक देशमें राष्ट्रका संवर्धन करनेवाले महोत्सव नहीं होते तथा किसी संघटनाकी उन्नति भी नहीं होती। (१५)

७. अराजक देशमें देशदेशान्तरका व्यापार-व्यवहार नहीं होता। (१६)

८. अराजक देशमें सुवर्णालंकार धारण करके कुमारिकाएं उद्यानोंमें सायंकाल खेलकूद और भ्रमणादिके लिये नहीं जा सकती। (१७)

९. किसान वा अन्य कोई रातके समय अपने घरके द्वार खुले रख कर अराजक देशमें नहीं सो सकते। (१८)

१०, अराजक देशमें स्त्री-पुरुष वेगवान् यानोंमें बैठकर दूरतक भ्रमण करनेके लिये नहीं जा सकते। (१९)

११. अराजक प्रदेशमें मुनि संचार नहीं करते, क्योंकि किसीका योगक्षेम वहां चलता नहीं। (२३-२४)

१२. अराजक देशमें किसीका भी जीवन और धन सुरक्षित नहीं रहता। वहांके लोग मछलियोंके समान एक दूसरोंको खाते रहते हैं। (३१)

राष्ट्रमें नियमन और शासन करनेवाली संस्था अवश्य चाहिये, यही इसका तात्पर्य है। यह संपूर्ण अध्याय राष्ट्रकी सुव्यवस्थाकी दृष्टिसे विचारपूर्वक देखना चाहिये। यह अध्याय बहुतही मनन करने योग्य है।

जनसंमत राजा

यदि प्रव्राजितो रामो लोभकारणकारितम्।
वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम् २८
असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात्।
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ३०
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ३१
सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रतं।
सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा ३२
सर्वप्रजाभिरामं हि रामं प्रव्राज्य धार्मिकम्।
सर्वलोकविरोधेन कथं राजा भविष्यति ३३
(अयोध्या. स. ५८)

राजपुत्र लक्ष्मण कहता है—

१. श्रीरामचन्द्रको लोभसे अथवा वरदानके कारण वनमें भेजा होगा, तो वह नितान्त अयोग्य है।

२. क्षुद्र बुद्धिसे किया हुआ यह कार्य महा शोकके लिये कारण होगा।

३. दशरथ राजासे अब मेरा पितृत्वका संबंध रहा नहीं है।

४. मेरा भाई, पोषणकर्ता, बन्धु और पिता रामही है।

५. जनताका हित करनेवाले लोकप्रिय रामचन्द्रको नगरसे बहिष्कृत करके जनताकी प्रीति राजाके लिये कैसी प्राप्त होगी?

६. सब जनताके लिये प्रिय रामचन्द्रको वनमें भेजकर और इस कारण

सब जनताका विरोध करके कौन भला राजा हो सकता है ?

इस लक्ष्मणके कथनमें यह स्पष्ट कहा है कि जनताकी अनुकूलताके बिना कोई भी राजा नहीं हो सकता। जनता की संमतिसेही कोई भी राजगद्दीपर स्थिर रह सकता है। जनतामें, स्वभावतः यह शक्ति है, यह लक्ष्मणको पता था। इसी लिये वह कहता है कि जनताकी प्रीति रामचन्द्र पर है, वैसी भरतपर नहीं है, इस कारण दशरथ वा भरत इनमें से कोई भी राजा नहीं हो सकता। इस लक्ष्मणके कथनमें एक अटल राजनैतिक सिद्धान्त कहा गया है।

दशरथके साथ उसका पितृत्वका संबंधभी तोडनेके लिये वह तैयार हो चुका था। इतना इस समय लक्ष्मण क्रोधके अधीन हुआ था। इसलिये यदि लक्ष्मण अयोध्यामें रहता, तो भरत सुखसे राज्य कर सकता था, ऐसा दीखता नहीं।

राजाका प्रेत

दशरथकी मृत्यु होनेके समय उसकी ओर देखनेके लिये वहां कोई भी नहीं था। इतनाही नहीं, परंतु उसका प्रेतसंस्कार मृत्युके पश्चात् ७ वें दिन हुआ था। देखो—

> व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः १३
> तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
> राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् १४
> न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः।
> सर्वज्ञाः कर्तुमीयुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् १५
> तैलद्रोण्यां शायितं तं सचिवैस्तु नराधिपम्।
> (अयोध्या. स. ६६)

'राजाकी मृत्यु होनेके पश्चात् व्यवहारकुशल मन्त्रियोंने कौसल्याको वहांसे दूर करके राजाका प्रेत तेलकी कढाहीमें रख दिया। पश्चात् वसिष्ठ आदि ऋषियोंकी आज्ञासे करने योग्य प्रेत-कर्म किये गये। पुत्रके बिना

प्रेतसंस्कार करना योग्य नहीं है, ऐसा उन्होंने ठहराया। इसीलिये भरतके आनेतक राजाके प्रेतको तेलकी कडाहीमें रख दिया और उसका संरक्षण करनेका प्रबंध भी उन्होंने किया।'

भरतको बुलाया

दशरथ राजाका प्रेत तेलकी कडाहीमें रख दिया और वह न सडे इसका तथा उसकी सुरक्षाका प्रबंध कर दिया। पश्चात् वसिष्ठ आदिकोंने भरतको बुला लानेका निश्चय किया। उसको बुलानेके लिये दूत भेजे और उनके साथ बडे बडे उपहारके रूपमें बहुतसी सुयोग्य सामग्री भेजी। वे दूत केकय देशमें गये। पर सब दूतोंसे यह कहा गया था कि राजाकी मृत्यु और रामका वनवास आदि खबर किसीसे नहीं कहना। उपहारोंको दूतोंके साथ भेजनेका तात्पर्य इधर सब कुशल है, ऐसाही होता है। बहुतही आवश्यक कार्य उत्पन्न होनेके कारण भरतको बुलाया है, ऐसाही संदेशा दूतोंके साथ दिया गया था।

छोटी छोटी बातोंमें कितनी सावधानता रखनी पडती है, सो यहां पाठक देखें। भरत अयोध्यामें आनेतक भरतको तथा केकय देशमें किसीको दशरथकी मृत्युकी खबर नहीं थी। इतनी यह मृत्युकी खबर गुप्त रखी गयी थी।

इसका कारण भी वैसाही था। यदि इसी समय दशरथकी मृत्युकी खबर फैल जाती तो कोई शत्रु आक्रमण करता, अथवा केकय राजा भी भरतको राज्यपर बिठलानेके लिये सेनाके साथ आजाता। इस आपत्तिको टालनेके लिये राजाकी मृत्युकी खबर अत्यंत गुप्त रखी गयी थी। दशरथ नेभी भरतको न बुलाकर अथवा केकयराजको निमंत्रण न देकर एकदम रामचंद्रजीको यौवराज्याभिषेक करनेकी शीघ्रता की थी। इसका संबंध जोडनेसे मृत्युकी गुप्तता रखनेका कारण स्पष्ट दीखने लगता है।

भरतके आनेका मार्ग

१. राजकुमार भरत अपने मामाके महलसे अयोध्यासे पहुंचनेकी इच्छासे पूर्व दिशाके मार्गसे चल पडा.

२. वहांसे वह सुदामा नदीपर पहुंचा,

३. पश्चात् वह विस्तृत और विशेष फैली ह्लादिनी नदीपर आया,

४. वहांसे भरत शतद्रु नदीपर आया,

५. पश्चात् वह ऐलधान ग्रामके पास पहुंचकर अमरपर्वतके समीप पहुंचा

६. नंतर वह शिला नदीको लांधकर आगे बढा, वहांसे आग्नेयी दिशासे शल्यकर्षण प्रदेशमें पहुंचा।

७. इसके बाद वह शिलावहा नदीमें स्नान करके चैत्ररथ नामक बन पहुंच गया,

८. पश्चात् गंगा और सरस्वतीके संगमपर पहुंच कर उसने वहां स्ना॰ किया,

९. नंतर वीरमत्स्य देशकी उत्तर दिशामें पहुंचकर भारुंद वनमें पहुं॰ गया,

१०. पश्चात् कुलिंगा नदीके पार जा कर यमुनाके तटपर आगया औ॰ वहां उसने अपने सैनिकोंको विश्राम करनेके लिये कहा,

११ इसके बाद वह घने बनसे पार होकर अंशुधान ग्रामके पास पहुंचा, प्राग्वट नगरके पासके प्रदेशको पार करके सेनाके साथ गंगाके पार हुआ, वहांसे वह धर्मवर्धन ग्रामको पहुंचा,

१२. वहांसे वह तोरण ग्रामके दक्षिण दिशामें अवस्थित जंबुप्रस्थ नामक नगरके पास पहुंचा, वहांसे वह वरूथ नगरीके पास गया और वहांसे रम्य बनको लांधकर उज्जिहान नगरीको पंहुचा।

१३ वहांसे अपनी राजधानी अयोध्या पास है, ऐसा देखकर उसने वेगवान् घोडे अपने रथको जोड दिये, और अनुयायियोंको शनैः शनैः आनेके लिये कहकर, स्वयं जलदी पहुंचनेकी इच्छासे वेगसे आगे बढा

१४. आगे सर्वतीर्थ ग्राममें थोडा विश्राम करके, अनेक नदियोंको लांघकर हस्तिपृष्ठ ग्रामके पास कुटिका नदीके पार हुआ,

१५. पश्चात् लौहित्य ग्रामके पास कपीवती, एकसाल ग्रामके पास स्थानुमती और विनत ग्रामके पास गोमती नदीको लांघकर भरत आगे

चलने लगा,

१६. नंतर कलिंग नगरके पासके सालवनके पास पहुंचकर, रातही रात में उसने वह वन लांघ दिया और सवेरे अरुणोदयके समय उसने अयोध्या नगरीका दर्शन किया,

१७. थोडेही समयमें उसने अयोध्यामें प्रवेश किया। (अयोध्या. स.७१)

केकय देशसे चलकर अयोध्याको पहुंचनेके लिये भरतको (सप्तमी रात्रिः। अयोध्या. स. ७२।८) सातवीं रात्रि आ गयी अर्थात् इसका मार्ग सात दिनोंका था। रथके घोडे अधिकसे अधिक दिनमें ३०।४० मैल जाते हैं, ऐसा माननेसे केकय देशसे अयोध्यातक जाने आनेका अन्तर दो ढाई सौ मील अधिकसे अधिक होगा, ऐसा अनुमान हो सकता है।

सूतने चार दिन राह देखी थी

श्रीरामचन्द्रको गंगा-तीरपर पहुंचानेके बाद वह गंगापार होकर वनमें चल गया। सूतने समझा था कि श्रीरामचन्द्रजी वनवाससे तंग आकर वापस चले आयेंगे और तब मैं उनको वापस ले जाऊंगा। इस इच्छासे वह वहीं चार दिन रहा।

> गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान् बहून्।
> आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ३
> (अयोध्या. स. ५९)

'गुहके साथ मैं वहीं गंगातीरपर इस इच्छासे रहा कि राम वापस आवेंगे और मुझे कहेंगे कि 'वापस चलो,' तो मैं उनको वापस ले आऊं, इस इच्छासे मैं बहुत दिन वहीं ठहरा, पर वह नहीं लौट आये।' 'बहुत दिन' के माने तीन दिन,

१ पहिले दिन श्रीरामचन्द्रजी गंगा किनारे पहुंचे, दूसरे दिन पार हुए,
२ दूसरे दिन वे चित्रकूटपर पहुंचे,
३ तिसरे दिन गुहके दूतोंने वे चित्रकूटपर पहुंचनेकी खबर लायी,
रामचन्द्रजी जिस दिन गंगापार हुए उससे पूर्वदिन शामको वे गंगा

तटपर पहुंचे थे। इससे पता चलता है कि सारथी गंगातटपर चार दिन इंतजार करता रहा। सूतने (बहून् दिवसान्) बहुतदिन मैं वहां रहा ऐसा कहा है। श्रीरामभद्रके विरहसे कारण चार दिनही उसको बहुत दिन करके प्रतीत हुए। ऐसा होना दुःखके कारण अत्यंत स्वाभाविकही है।

रामचन्द्रजी वनमें जाकर पांच दिन हुए

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते ।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम १७

' राम वनवासमें जाकर आज पांच रात्रियां हो गयीं। ये पांच रात्रियाँ दुःखके कारण पांच वर्षोंके समान प्रतीत हुई, ' ऐसा कौसल्या कहती है। दुःखसे ऐसाही होता है।

छठीं दिन भी इसी तरह चला गया। सूर्यका अस्त हुआ और छठी रात्रि प्रारंभ हुई। तब दशरथ राजाको शोकसे थोडीसी निद्रा या बेहोशी-सी आगयी। (अयोध्या. ६२।१८–२०)

स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम् ।
अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम् ४
(अयोध्या. स. ६३)

इस छठी रात्रिके समय मध्यरात्रिमें दशरथको उस श्रावणवधके अपनेही दुष्कृत्यका स्मरण हुआ और वह वृत्तांत उसने कौसल्यासे कहा।

दो दिनका प्रवास

श्रीरामचन्द्रको गंगानदीतक पहुंचाकर रथको वापस अयोध्यामें आनेके लिये दो दिन लगे, यह मार्ग दोही दिनका है।

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः ।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ५
(अयो. स. ५७)

' दूसरे दिन सायंकालमें सुमंत्र रथ लेकर आनन्दरहित अयोध्यामें आ पहुंचा। ' छत्तीस घण्टे उसको आनेके लिये लगे, ऐसा इससे स्पष्ट होता

है। यह मार्ग अयोध्यासे अधिकसे अधिक ५० या ६० मील होगा।

रामकी स्त्रीवधके लिये घृणा

अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति २१
हन्यामहं इमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् २२
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् २३
(अयोध्या. स. ७८)

भरतने शत्रुघ्नसे कहा– 'स्त्रियोंका वध करना सर्वथा निषिद्ध है। धर्मात्मा राम यदि मुझे मातृघातकी कहकर दोष न देगा, तो मैं इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीका वध करूंगा। यदि मैंने उस कुब्जा मंथराका वध किया तो वह धर्मात्मा राम मुझसे भाषण भी नहीं करेगा।' इसलिये मैं इनका यहां वध नहीं करता, नहीं तो मेरा जी तो चाहता है कि मैं इनका वध करूं।

भरतने शत्रुघ्नसे कहा कि इस कारण तू इसका वध न कर। श्रीरामचन्द्रका भय भरत और शत्रुघ्न मानते थे। श्रीरामचन्द्रका आदर्श वर्ताव ऐसाही उत्तम था।

सीता जेवर पहनती थी

नूपुरोत्कृष्टलीलेव खेलं गच्छति भामिनी।
इदानीमपि वैदेही तद्रागान्यस्तभूषणा १९
(अयोध्या. स. ६०)

'नूपुरोंकी आवाजसे सीतादेवीके चलनेमें अधिक लालित्य प्रतीत होता था। सीता जेवरोंके धारण करनेकी इच्छा करके वनमेंभी वह अपने शरीरपर जेवर धारण करती थी।'

स्त्रियां जेवर पहनना सदा पसंद करती हैं, यह बात यहां कविने बडे लालित्यके साथ बतायी है। सीता जेवर पहनती थी, ऐसा कहनेसे वह

वनवाससे उदास नहीं हुई थी, ऐसा यहां कविने सूचित किया है।

मुझे स्मरण नहीं

' मुझे स्मरण नहीं ' ऐसा सूतने सीताका संदेश कहनेके समय कहा—

कैकेयीसंश्रितं जल्पं नेदानीं प्रतिभाति माम् १४
(अयोध्या. स. ६०)

'कैकेयीके संबंधमें सीताने क्या कहा, सो मुझे अब याद नहीं है।' इस संबंधमें कविका कथन ऐसा है—

ध्वंसयित्वा तु तद्वाक्यं प्रमादात् पर्युपस्थितम्।
ह्लादनं वचनं सूतो देव्या मधुरमब्रवीत् १५
(अयोध्या. स. ६०)

कैकेयीके संबंधमें सीता देवीने जो भाषण किया था, उसका स्मरण सूतको अच्छी तरह था, कहनेके लिये वह भाषण उसकी जिह्वापर आया भी था। पर वह बडा अप्रिय था, इसलिये सूतने कहा नहीं और जिससे आनंद प्रतीत होगा वही भाषण उसने वहां कहा। चतुर दूतके येही लक्षण हैं।

स्त्रियोंके साथ भ्रमण

स्त्रियोंको साथ लेकर एक कोसतक (दो तीन मील) लोक घूमनेके लिये जाते थे। ऐसा उस समय रिवाज था, ऐसा प्रतीत होता है—

रामं वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी।
अयोध्याक्रोशमात्रे तु विहारमिव संश्रिता १३
(अयोध्या. स. ६०)

सीतादेवी रामचन्द्रको वनके संबंधमें मालुमात पूछती है। और अयोध्यासे एक कोस फासलेतक भ्रमणके लिये गयी है, ऐसे भावसे वह आनन्दसे रहती है, ऐसा दूतने कहा।

इस कथनमें नगरसे एक कोस दूरीतक स्त्रीके साथ भ्रमण करनेका उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि ऐसा रिवाज उस समय था। कुमा-

रिकाएं उद्यानोंमें खेलकूदके लिये जाती ही थीं। स्त्रियां भी जाती थीं। आज यह रिवाज रहा नहीं है।

यज्ञकर्ममें रामकी प्रवीणता

यजस्व, कुशलो ह्यसि २९ (अयोध्या स ५६)

'रामचन्द्रजी याजनकर्ममें कुशल थे।' पितृमेधादि कार्य थे स्वयं कर सकते थे। इतनी कुशलता और प्रवीणता वैदिक कर्मोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी थी। पुरोहितकी सहायताके विनाही वे सब धर्म-कर्म, यज्ञयाग, होम-हवन किया करते थे। सब धर्म-कर्म किस तरह करने चाहिये, उनके विधि-निषेध क्या हैं, संक्षेपसे कर्म किस तरह किये जाते हैं, यह सब उनको ज्ञात था।

इस समयके क्षत्रियोंको यह सब पढाया जाता था, रामचन्द्रजीने पितृश्राद्ध स्वयं किया था इस विषयमें देखिये—

पितृश्राद्ध

आनयेङ्गुदिपिण्याकं चीरमाहर चोत्तरम्।
जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः २०
सीता पुरस्ताद्व्रजतु त्वमेनामभितो व्रज।
अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा २१
(अयोध्या. स. १०४)

'सूखे हुए इंगुदी फलोका पिण्ड यहां ले आ। वह उत्तम वल्कल भी ले आ। मैं पिताकी उदकक्रिया करता हूं। सीतादेवी पहिले चले, लक्ष्मण उसके पीछेसे जावे और मैं सबसे पीछेसे आऊंगा। इस कार्यके लिये ऐसा ही जाना चाहिये।'

'सर्वे कनिष्ठप्रथमा इतरे तु स्त्रियोऽग्रतः'

'स्त्रियाँ सबसे प्रथम जायँ, छोटी उमरवाले उसके बाद चले, अन्य लोग आयुकी अनुसार पीछेसे जायँ।' इस शास्त्रवचनके अनुसार राम-

चन्द्रजीने किया । यहां इंगुदी फलोंके आटेका पिण्ड दिया है । यहां मांसका उल्लेख नहीं है। श्रीरामचन्द्रकी पर्णशालामें यदि मांस होता तो वह इस समय लिया होता। इससे प्रतीत होता है कि मांस-वचन बहुधा प्रक्षिप्त होंगे ।

श्रीरामचन्द्रजीके शास्त्रविधिके समाप्त करनेके पश्चात् कौसल्याने वह पिण्ड इङ्गुदीके आटेका है, ऐसा देखा और उसको बडा ही दुःख हुआ, उसने तब कहा— ' देखो भाई, देखो ! इतने बडे सम्राट्के लिये यह इंगुदीके आटेका पिंड दिया जाता है! क्या सम्राट्के लिये यह योग्य भोजन है ? वैभवसंपन्न रामचन्द्रपर अपने वैभवसंपन्न पिताके लिये ऐसा इंगुदी-पिण्ड अर्पण करनेका दारुण प्रसंग आया है, इससे अधिक दुःखदायी तो और क्या हो सकता है ? ' (अयोध्या. १०५।८-१७)

१३ दिनका और्ध्वदेहिक

और्ध्वदेहिक तेरह दिनतक चलता था। चौदहवें दिन मनुष्य इससे निवृत्त होकर अपने दैनिक कार्यमें लगता था —

> ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे ।
> समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यं अब्रुवन् ॥ १
> (अयोध्या. स. ७९)

चौदहवें दिन सवेरे राज्यके सब ओहदेदार आगये और सबने भरतसे कहा कि 'अब तुम राज्यका पालन करो।' उसपर भरतने कहा कि— 'बडे भाईकाही अधिकार राज्यपर बैठनेका है। इसलिये मैं वनमें जाऊंगा और श्रीरामचन्द्रको वापस ले आऊंगा । सब मिलकर उनकोही राजगद्दीपर बिठलायेंगे ।' (अयोध्या. ७९।६-१३)

भरतका यह भाषण सुनकर सबको आनन्द हुआ। और उन्होंने कहा— 'जिस कारण बडे भाईको ही राज्य देनेकी तुम्हारी इच्छा है, उस कारण तुम्हें कमलवासिनी लक्ष्मी प्राप्त होवे ।' इस तरह सबने भरतको आशीर्वाद दिया और भरतका यह भाषण सुनकर सबको अत्यंत आनन्द औं

हुआ। पश्चात् रामचन्द्रजीको वापस लानेके लिये वनमें जानेकी आज्ञा भरतने सबको दी। तब सब लोग वनगमनकी तैयारी करने लगे।

वनभोजन

नीवार नामक धान्य है, जो वनमें स्वयं उगता है। यह तृणधान्य है। यही वनवासियोंका भोजन है—

> भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम्।
> वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ५
>
> (अयोध्या. स. ६१)

'जायकेदार चटनियाँ और स्वादु पदार्थ खानेका अभ्यास सीतादेवीको अयोध्यामें था, वही सीता अब नीवारका भोजन किस तरह करती होगी?'

नीवारका आटा, सींगाडोंका आटा, इंगुदीके फलोंका आटा, यह अन्न शुष्क, निःसार और रसहीन है। यही वनमें मिलेगा। यह सीता कैसा खायेगी, ऐसा कहकर शोक हो रहा है।

मांसभक्षण

इस समय मांसभक्षण किया जाता था या नहीं, इसका विचार करनेके समय निम्नलिखित वचन देखने योग्य हैं–

> ऐणेयं मांसं आहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् २२
> कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः।
> मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण २३
> कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मरन्।
> ऐणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम् २५
> त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम्।
> स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्।
> अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि २६
> तन्तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम् २७

लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रं अथ राघवमब्रवीत्।
अयं सर्वः समस्तांगः श्रितः कृष्णमृगो मया २८
देवता देवसंकाश यजस्व कुशलो ह्यसि।
रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः २९
संग्रहेणाऽकरोत्सर्वान्मन्त्रान् सत्रावसानिकान्।
इष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः ३०
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च।
वास्तुशंसमनीयानि मंगलानि प्रवर्तयन् ३१
जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि।
पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ३२
वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च॥
आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः ३३
(अयोध्या. स. ५६)

इसका आशय यह है– श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि 'हे लक्ष्मण! हरिनका मांस ले आ, हम वास्तुशान्ति करेंगे। दीर्घकालतक घरमें रहनेवालोंको उचित है कि वे वास्तुशान्ति करें। मृगको मारकर शीघ्र ले आ। शास्त्रके अनुसार और विधिके अनुसार वास्तुशान्ति करना योग्य है। हरिनका मांस पकाकर तैयार कर, हम अब इस शालाकी शान्ति करेंगे। हे लक्ष्मण! तू त्वरा कर, यह ध्रुव दिवस है। लक्ष्मणने कृष्ण मृगको जलती आगमें डाल दिया। पश्चात् वह पककर तैयार हुआ, तब रक्तस्राव बंद हुआ, यह देखकर उसने श्रीरामचन्द्रसे वैसा कहा। अब देवताओंका यजन कर, तुम इस कार्यमें कुशल हो, ऐसा कहा।

श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया, जप किया, पश्चात् संक्षेपसे वास्तुशान्तिका संस्कार किया। सब देवताओंके उद्देश्यसे हविर्भाग दिया और पवित्रतापूर्वक उसने उस घरमें प्रवेश किया।

बलि, वैश्वदेव, रुद्रबलि और वैष्णव बलि करके उसने वास्तुशान्ति की। जप किया, नदीमें फिर स्नान किया। पापके नाशके लिये बलि दिया,"

वेदिस्थान, चैत्यस्थान, देवालय आदिके उद्देश्यसे तथा आश्रमोंके उद्देश्यसे उन्होंने बलि दिये।

इसमें मांसका उल्लेख है। पर यदि पाठक इस अवतरणका विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट दीखेगा कि इस स्थानपर निष्कारण पुनरुक्ति हुई है। श्लोक २२, २३ तथा २५ इनमें तीन स्थानोंपर मृग-मांसका उल्लेख है। और वह पुनरुक्तदोष स्पष्ट है। देखो–

ऐणेयं मांसं आहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् २२
ऐणेयं श्रपयस्वैतत् शालां यक्ष्यामहे वयम् २५
मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं ... २३

यह पुनरुक्ति वाल्मीकिकी है, ऐसा दीखता नहीं है। क्योंकि यह निरर्थक पुनरुक्ति है। स्नानका उल्लेख श्लोक २९ और ३२ में दो वार है जो प्रसंगहीन है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मणने बनायी पर्णकुटि वनमें थी वहां चैत्य, देवालय आदि स्थान थेही नहीं, इसलिये जो स्थान आस पास नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे बलि दिये, यह कथन प्रसंगहीन है।

श्लोक २० के पश्चात् ३४ वां श्लोक होगा ऐसा स्पष्ट दीखता है। अर्थात् बीचका मांस-प्रकरण स्पष्टही प्रक्षिप्त दीखता है।

मांस

शुद्धबाणहतांस्तत्र मेध्यान् कृष्णमृगान्दश।
राशीकृतान् शुष्यमाणानन्यान्कांश्चन काश्चन ३४
कियतां बलयश्चेति रामः सीतामथाब्रवीत्।
तयोरुपददद्भार्योर्मधु मांसं च तद् भृशम् ३६
(अयोध्या. स ९६)

'शुद्ध अर्थात् विष न लगाये बाणसे दस कृष्ण मृगोंको मारकर उसका एक ढेर लगाया और अन्य भी कुछ मृग रामचन्द्रने वहां देखे। उनको देखकर रामको आनंद हुआ। 'अब बलि देदो' ऐसा उसने सीतादेवीसे कहा। प्रथम भूतबलि करके पश्चात् मधु और मांस सीतादेवीने उनको यथेच्छ दिया।'

यह संपूर्ण अध्याय प्राक्षिप्त है, ऐसा सब टीकाकारोंका मत है। इस अध्याय का आगे पीछे कोई संबंध भी नहीं दीखता। मधु नामक मद्य तैयार करने के लिये जितने दिन लगते हैं, उतने दिन श्रीरामचन्द्रजीका निवास भी वहां नहीं हुआ था। ऐसा होते हुए यहां लिखा है कि सीतादेवीने मधु-मांस यथेच्छ उनको परोस दिया। यह वर्णन उक्त कारणसे प्रक्षिप्त है। कोई भी टीकाकार इस अध्यायको यहां नहीं मानता और सब इसको प्रक्षिप्त मानते हैं। कई पुस्तकोंमें यह है और कईयोंमें यह नहीं है। इसलिये यह प्रक्षिप्त है।

भरद्वाज मुनिने भरतके सब सैनिकोंको भोजन दिया

सेनायास्तु तवैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् ४

(अयोध्या. स. ९१)

भरद्वाज ऋषिने कहा कि—'हे भरत! तुम्हारे सब सैनिकोंको मैं भोजन देना चाहता हूं। उसका स्वीकार करो।' भरतने प्रथम नम्रतापूर्वक कहा कि 'इससे आश्रमवासियोंको बडे कष्ट होंगे,' पर ऋषिका बहुत आग्रह देखकर वह उस निमंत्रणको स्वीकार करनेके लिये तैयार हुआ। इस भोजनका वर्णन बडा संदेह करने योग्य है।

इस भोजनमें शराबियोंके लिये मद्य तैयार था, पायस पीनेवालोंके लिये पायस था, मांस खानेवालोंके लिये मांस था, एक एकके लिये सातसात स्त्रियां शरीरपर तेल लगानेके लिये थीं। (अयोध्या. ९१।५१-५४) यह वर्णन आश्रमजीवनके साथ सजनेवाला नहीं है। यहां बकरों और सूवरोंके भी मांस परोसे थे। (६७) मिट्टीके तपरपर भूने मांस भी थे। (७०) ये सब वर्णन मुनिभोजनके साथ तथा आश्रमजीवनके साथ मिलने-जुलनेवाले नहीं हैं।

लक्ष्मणका झोंपडा बनाना

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् ।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः २०

तां निष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम् ।
(अयोध्या. स. ५६)

रामचन्द्रकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने अनेक वृक्ष तोडकर लाये और उनकी एक उत्तम पर्णशाला बनायी । वह उत्तम रीतिसे बनायी, सजायी थी, अन्दर जलन न हो इसलिये उसपर घासका अच्छा आच्छादन किया था। यह देखनेमें बडी सुंदर दीखती थी। वह देखनेमें सुहानी, रहनेके लिये सुखदायी तथा शीतोष्णका कष्ट दूर करनेवाली थी।'

यहां लक्ष्मणने दूसरोंकी सहायता ली, ऐसा नहीं कहा है । इसलिये अकेले राजपुत्रनेही वह बनायी यह सिद्ध है। कमसे कम तीन कमरे उसमें होंगे ही । श्रीरामचन्द्र और सीतादेवीके लिये एक कमरा, लक्ष्मणके लिये पृथक् कमरा तो अवश्यही चाहिये । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय राजपुत्रोंको झोंपडा बनानेका और उसमें होनेवाले कष्ट सहन करनेकी शिक्षा भी मिलती थी । गुरुकुलमें अन्य अध्ययनके साथ यह भी पढाया जाता था ऐसा दीखता है । नहीं तो राजपुत्रको एकदम विना अभ्यासा झोंपडा बनाना कठीन ही प्रतीत होता है।

चित्रकूट पर्वत

चित्रकूटं इमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् १०
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते।
पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ११
बहुमूलफलं रम्यं संपन्नसरसोदकम १२
मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नाना द्रुमलतायुतः ।
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे १४
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिन् शिलोच्चये ।
(अयोध्या स. ५६)

'इस चित्रकूट पर्वतपर ये बडे ऊंचे और रमणीय शिखर हैं । यहां नाना प्रकारके रमणीय वृक्ष हैं । इस समतल पवित्र तथा आल्हाददायी

स्थानपर हम आनंदसे रहेंगे। यहां अनेक पक्षियोंके समूह रहते हैं। यहां कंदमूल और फल भी विपुल हैं। नाना प्रकारकी लता-वल्लियोंसे यह शोभता है। यहां हम उत्तम रीतिसे आजीविका कर सकते हैं। यहांका जल भी उत्तम है और यहां ऋषिमुनि भी बहुत रहते हैं। इसलिये यह पर्वत उत्तम है।'

यहां कन्दमूल फल उत्तम हैं, जल उत्तम है, रहनेके लिये उत्तम स्थान है, धर्मचर्चाके लिये यहां तपस्वी बहुत रहते हैं। इसलिये यहां रहनेसे हमें सुख होगा, यह श्रीरामचन्द्रजीके कहनेका तात्पर्य है।

पिशाचबाधा

पिशाच-बाधा होनेके समान जानकी वहां थी, ऐसा सूतका कथन है—

जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी।
भूतोपहतचित्तेव विष्ठिता विस्मृता स्थिता ३४

(अयोध्या. स. ५८)

'सीता तो पिशाचबाधा होनेके समान वेगसे श्वास लेती हुई वहां खडी थी, कुछ भी स्मरण नहीं ऐसी डरी हुई अवस्थामें वहां वह खडी थी।'

यहां 'भूत-उप-हत-चित्ता' यह पद है, इससे ऐसा पता चलता है कि उस समय मनुष्योंको भूतबाधा होती है, ऐसा लोगोंका विश्वास था। जब भूतबाधा होती है, उस समय जोरोंसे श्वासोच्छ्वास होता है, आगेपीछे का कुछ भी स्मरण नहीं रहता। मनुष्य सुस्तसा होकर अचेत गिर पडता है। इन लक्षणोंसे भूतबाधापर विश्वास था, ऐसा प्रतीत होता है।

ततो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः।
धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत् १

(अयोध्या. स. ६०)

'पिशाचबाधा होनेके समान कौसल्या कांपने लगी।' यहां भी पिशाचबाधा होनेका उल्लेख है। यहां कहा है कि पिशाचबाधा होनेपर शरीर कांपने लगता है।

मुहूर्त

त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम् २६
(अयोध्या. स ५६)

ध्रुव मुहूर्त और ध्रुव दिवसका उल्लेख यहां है। चल मुहूर्त और चल-दिन गृहप्रवेशके लिये योग्य नहीं है। चल मुहूर्तपर गृहप्रवेश किया जाय तो वह गृहप्रवेशकर्ता उस घरमें बहुत दिनतक नहीं रहता। ध्रुव मुहूर्तपर तथा ध्रुव दिनमें गृहप्रवेश करना योग्य है, जिससे उस घरमें सुखसे दीर्घ-कालतक वह मनुष्य रह सकता है। यह कल्पना इस समय प्रचलित थी, ऐसा यहां पता लगता है।

कुंकुमतिलक

स्त्रियां अपने सिरपर कुंकुमतिलक लगाती थी, ऐसा पता लगता है। देखो—

'इस वनमें एक बडा बंदर सीतादेवीने देखा। तब वह डर गयी और उसने रामको डरसे पकड लिया, तब रामने उस बानरको भय बताकर भगा दिया। इस गडबडीमें–

मनःशिलायास्तिलकः सीतायाः सोऽथ वक्षसि।
समदृश्यत संक्रान्तो रामस्य विपुलौजसः २४
(अयोध्या. सर्ग ९६)

'सीताके सिरपर लगाया मन शिलाका लाल तिलक रामचन्द्रकी छातीपर लगा, जब सीताने रामको आलिंगन दिया' उसे देखकर सीता हंसने लगी।

इससे स्त्रिया कभी कभी सुंदरता बढानेके लिये सिरपर लाल तिलक लगाती थीं, ऐसा प्रतीत होता है। नहीं तो सीतादेवीके सिरपर तिलक आता ही नहीं। प्रतिदिन सौभाग्य-चिह्न करके लगाती नहीं होंगीं। प्रतिदिन लगानेका वचन अभीतक मिला नहीं। पुरुष अपने शरीरपर रक्तचंदन लगाते थे। स्त्रियां कुंकुम अथवा दूसरा कुछ लगाती थीं या नहीं, इस विषय-

में अधिक खोज होनी चाहिये।

क्षत्रियोंको प्रायोपवेशन करनेका अधिकार नहीं है

किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे १६
ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान् रोद्धुमिहार्हति।
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने १७
(अयोध्या. सर्ग ११२)

रामचन्द्रजी बोले- 'हे भरत! मैंने कौनसा अपराध किया इसलिये तुम यहां इस तरह प्रायोपवेशन करके मरना चाहते हैं? इसका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको है। क्षत्रियोंको प्रायोपवेशनका अधिकार नहीं है।' इसलिये क्षत्रिय प्रायोपवेशन न करें।

भरतके साथ कुत्ते

केकय देशसे अपने मातामहका आशीर्वाद लेकर भरत चला, उसके साथ भेंटके रूपमें जो वस्तुएं दीं थीं, वे ये है—

तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान् कम्बलानजिनानि च।
सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् १९
अन्तःपुरेऽति संवृद्धान् व्याघ्रवीर्यबलोपमान्।
दंष्ट्रायुक्तान् महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ २०
रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च।
(अयोध्या सर्ग ७०)

'केकय राजाने भरतके साथ उत्तम हाथी, उत्तम ऊनी वस्त्र, सिंह व्याघ्रके चर्म, अन्तःपुरमें बढाये गये व्याघ्रके समान बलवान् कुत्ते, सोनेकी दो सहस्र मुद्रायें, सोलह सौ घोडे इतना नजराना भरतके साथ भेज दिया।'

इसमें भयानक कुत्ते और ऊनी वस्त्र ये सीमाप्रांतकी बहुमोल चीजें हैं। मण्डलचक्रवाले रथ भी थे। (२९) चार चक्रवाले रथोंको घुमानेके लिये मण्डलचक्र बीचमें लगे होते हैं। खच्चर और ऊंट भी इस देशकी

विशेषता है।

सेनाकी शिक्षा

तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्र गच्छ बलस्य योगाय बलप्रधानान्।
(अयोध्याकाण्ड, सर्ग ९२।३०)

'हे सुमंत्र! तूं शीघ्र चल और सेनाधिकारियोंसे कह दे कि सब सेनाको उत्तम सुव्यवस्थामें खडे करो।' यहां 'बलस्य योगः' अर्थात् 'सेनाको संयुक्त करके ठीक पंक्तिमें खडा करना' ऐसा लिखा है जो सैनिकोंकी व्यवस्थाका द्योतक है।

जाबालीका नास्तिक मत और उसका खंडन

अयोध्या ११०-१११ इन दो अध्यायोंमें जाबाली ऋषिने कुछ नास्तिक जैसा प्रतिपादन किया था। इसका खण्डन स्वयं रामचन्द्रने किया है। यह सब विषय इन अध्यायोंमें देखने योग्य है। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीरामचन्द्रजी वैदिक धर्मकी सुरक्षाके लिये कितना दक्ष थे। श्रीरामचन्द्रजीका संपूर्ण जीवनही आदर्श धार्मिक पुरुष जैसा है। सर्वत्र धर्मका जीवन इसके चरित्रमें है। इसीलिये इसे अवतार कहा है। 'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि।' (गीता) यह वचन यहां सार्थ हुआ है।

इस तरह अयोध्याकाण्डके उत्तरार्धका
निरीक्षण यहां समाप्त
हुआ है।

अयोध्याकांड
समाप्त

